गोपालसिंह नेपाली की कविता में युगीन यथार्थ

GOPAL SINGH NEPALI KII KAVITA MEN YUGEEN YATHARTH

CONTEMPORARY REALITY IN POETRY OF GOPAL SINGH NEPALI

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक — **शोधार्थी**

प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे — उज्ज्वल आलोक

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली, 110067

2017

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 20/07/2017

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph.D. thesis entitled "GOPAL SINGH NEPALI KII KAVITA MEN YUGEEN YATHARTH (CONTEMPORARY REALITY IN POETRY OF GOPAL SINGH NEPALI)" by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University.

Prof. Devendra Kumar Choubey
(Supervisor)

Ujjwal Alok
(Research Scholar)

Prof. Gobind Prasad
(Chair-person)

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217

वे आँखें जिनमें अनन्त स्वप्न थे मेरे लिए
नियति के दुश्चक्र में बन्द हो गईं सदा के लिए
भस्म होने से पहले चुरा लिए मैंने
उन आँखों के सपने अपनी आँखों में
और चल पड़ा उन्हें साकार करने...

अपने पिता को एक श्रद्धांजलि

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ संख्या
	भूमिका	1-6
पहला अध्याय	युगीन यथार्थ : अर्थ और अवधारणा	7-46
	1.1. प्रस्तावना	
	1.2. यथार्थ की अवधारणा और साहित्य	
	1.3. युगीन यथार्थ : अर्थ और सन्दर्भ	
	1.4. यथार्थ के रूप	
	1.5. साहित्य और यथार्थ का सम्बन्ध	
	1.6. साहित्य में यथार्थ का विनियोजन	
	1.7. साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति	
	1.8. काव्य यथार्थ और स्थूल यथार्थ	
	1.9. यथार्थ और यथार्थवाद	
दूसरा अध्याय	गोपाल सिंह नेपाली का समय और साहित्य	47-79
	2.1. जीवन परिचय	
	2.2. युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य	
	2.3. साहित्यिक काल की यात्रा	
	2.3.1. वैयक्तिक चेतना की काव्यधारा	
	2.3.2. प्रगतिवाद	
	2.3.3. प्रयोगशील कविता एवं प्रपद्यवाद	
	2.3.4. नई कविता	
तीसरा अध्याय	गोपाल सिंह नेपाली की कविता में सामाजिक यथार्थ	81-122
	3.1. प्रस्तावना	
	3.2. साहित्य और समाज का एक दूसरे पर प्रभाव	
	3.3. साहित्य समाज का नियामक	
	3.4. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन	
	3.5. सामाजिक परिवर्तन बनाम मानसिक परिवर्तन का	

आरम्भ
3.6. परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता और साहित्य
3.7. युगान्तर की चेतना एवं नवीनता की कल्पना
3.8. भारतीय समाज का स्वरूप
3.8.1. ग्रामीण जीवन का यथार्थ
3.8.2. समाज में स्त्री का स्थान
3.8.3. दलित मुक्ति का प्रश्न
3.9. निष्कर्ष

चौथा अध्याय गोपाल सिंह् नेपाली की कविता में राजनीतिक यथार्थ 123-186
4.1. प्रस्तावना
4.2. राजनीति अर्थ एवं अवधारणा
4.3. काव्य और राजनीतिक चेतना : अन्तःसम्बन्ध
4.4. रचनाकार की राजनीतिक प्रतिबद्धता और साहित्य
4.5. राजनीति और काव्य : अन्तःसम्बन्ध
4.6. समाज और राजनीति
4.7. गोपाल सिंह् ‘नेपाली’ और राजनीतिक यथार्थ
4.7.1. स्वतन्त्रतापूर्व का राजनीतिक यथार्थ
4.7.2. स्वाधीनता के पश्चात् का राजनीतिक यथार्थ
4.7.3. राष्ट्रभाषा का सवाल और हिन्दी
4.8. निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय गोपाल सिंह् नेपाली की कविता में सांस्कृतिक यथार्थ 187-234
5.1. प्रस्तावना
5.2. संस्कृति अर्थ एवं परिभाषा
5.3. संस्कृति और भौगोलिक परिवेश

5.4. संस्कृति और प्रकृति
5.5. संस्कृति, पर्व और त्यौहार
5.6. संस्कृति और लोक जीवन
5.7. संस्कृति और मानव मूल्य
5.8. संस्कृति और दर्शन
5.9. संस्कृति और राष्ट्रीयता
5.10. संस्कृति और साहित्य
5.11. निष्कर्ष

छठा अध्याय गोपाल सिंह नेपाली की कविता में आर्थिक यथार्थ 235-263

6.1. प्रस्तावना
6.2. भारत का आर्थिक परिवेश
6.3. औपनिवेशिक सत्ता की अर्थ-नीति
6.4. स्वतन्त्र भारत में साम्यवाद की कामना
6.5. भूमि समस्या और भूदान आन्दोलन
6.6. नेहरू काल की आर्थिक नीतियाँ
6.7. निष्कर्ष

उपसंहार 265-273

सन्दर्भ-ग्रन्थ तालिका 275-290

परिशिष्ट 291-340
गोपाल सिंह नेपाली के अप्रकाशित गीत

भूमिका

गोपाल सिंह 'नेपाली' छायावादोत्तर काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। छायावादोत्तर हिन्दी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति राष्ट्रीय चेतना और देश राग की प्रबलता है। नेपाली की कविता इसी धारा से सम्बद्ध है। नेपाली अपनी कविता में छायावादी बिम्बों का प्रयोग करने के बावजूद उसके वायवीयता से काफी हद तक मुक्त हैं। राष्ट्रीय मुक्ति के प्रति उनकी दृष्टि ठोस भाव-भूमि पर खड़ी है। उनकी कविता में निर्भीकता और जन आस्था पर दृढ़ विश्वास देखा जा सकता है। यथार्थ के प्रति गहरी सम्पृक्ति उनकी कविताओं को ठोस धरातल पर खड़ा करती है। इसी स्पष्ट दृष्टि के कारण उन्होंने युगीन परिदृश्य के उतार-चढ़ाव पर पैनी निगाह रखी और उसके अन्तर्विरोधों की पहचान करने की कोशिश की।

नेपाली की काव्य-यात्रा सन् 1927 से 1963 तक फैली हुई है। इस कालखण्ड में उनके काव्य-संग्रह*उमंग* (1934), *पंक्षी* (1934), *रागिनी* (1935), *पंचमी* (1942), *नीलिमा* (1944), *नवीन* (1944) और *हिमालय ने पुकारा* (1963) प्रकाशित हुए। इसके साथ ही उन्होंने सन् 1944 से फिल्मों के लिए गीत और पटकथा लेखन भी शुरू किया। उन्होंने लगभग 52 फिल्मों के लिए 300 से ज्यादा गीत लिखे। जिसमें उन्होंने प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य के साथ देश के युगीन यथार्थ को व्यापक रूप में अभिव्यक्त किया। उन्होंने अपने युग के हर छोटे-बड़े परिवर्तन को अपनी खुली आँख से देखा और उसको समग्रता के साथ अपनी कविता में अभिव्यंजित किया।

नेपाली की कविताओं में महात्मा गाँधी के 'सत्याग्रह', असहयोग, सविनय अवज्ञा और अहिंसा का समर्थन है और भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों की बलिदान की अनुगूँज भी है। उनकी कविता में किसान आन्दोलन की छाया और आजादी की घड़ी तो है ही आजादी के तुरन्त बाद सपनों में अंगड़ाई लेता भारत है, तो नेफा और लद्दाख का दर्द भी समाया हुआ है।

नेपाली अपनी कविताओं में राजनीतिक यथार्थ के साथ-साथ भारत के सामाजिक और आर्थिक यथार्थ को व्यापक सन्दर्भों में चित्रित करते हैं। स्त्री और दलित की पीड़ा पर उन्होंने अपनी कई कविताएँ लिखी हैं। उनका मानना है कि नए भारत का निर्माण सामाजिक भेद भाव और रूढ़ियों से मुक्ति के बाद ही होगा। सामाजिक विषमता भारत की मुक्ति की राह में बाधक है।

नेपाली की कविता देश-भक्ति, प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य के विभिन्न आयामों से मिलकर बनी है। ये सभी आयाम यथार्थ की जमीन पर खड़े हैं। इनकी कविता में व्यक्तिगत प्रेम भी सामाजिक प्रेम में परिणत हो जाता है। उसमें प्रकृति के गीत ग्राम-गीतों में बदल जाते हैं। यथार्थ की चेतना से सम्पृक्त होने के कारण ही नेपाली के प्रेम गीतों में वेदना और निराशा का निषेध मिलता है और उसकी जगह जनता के भविष्य के प्रति दृढ़ विश्वास का स्वर। यह विश्वास जन प्रेम के धागों से बुना गया है, जिसमें आशा, उमंग और उत्साह है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभाजित है। **पहले अध्याय** में शोध के सैद्धान्तिक पक्ष पर बातें की गईं हैं। युगीन यथार्थ की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसके अर्थ, परिभाषा व स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही काव्य का यथार्थ स्थूल यथार्थ से कितना भिन्न होता है, यह समझने का प्रयास किया गया है। यथार्थ कविता को प्रभावित करता है और कविता यथार्थ को प्रभावित करती है। अतः इस अध्याय में काव्य रचना में युगीन यथार्थ का किस रूप में संवाद होता है, इन प्रश्नों पर विचार किया गया है।

साहित्यिक परिदृश्य में नेपाली जी के जीवन तथा साहित्य-कर्म सम्बन्धी समग्र जानकारी का अभाव है। अतः **दूसरे अध्याय** में उनके जीवन और साहित्य का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। साथ ही उनकी कविताओं की रचना-प्रक्रिया को समझने के लिए तत्कालीन काव्य-परिदृश्य का विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय में भारतीय समाज की संरचनात्मक जटिलता को समझने का प्रयास है। इस जटिलता को नेपाली अपनी कविता में किस तरह व्यक्त करते हैं, यह देखने-समझने की

कोशिश की गई है। समाज की ये जटिलताएँ अक्सर मानवता की विरोधी बनकर देश के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। सामाजिक सम्बन्धों के विघटन की स्थिति में सर्जक का दायित्व और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। वह अपनी अनुभवशीलता, यथार्थ–दृष्टि और चेतनता के द्वारा युगीन समस्याओं को उघाड़ते हुए उनका समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश करता है। नेपाली ने भी सामाजिक यथार्थ को कविता की प्रसांगिकता और प्रामाणिकता के लिए आवश्यक माना है। इसलिए उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि से सामाजिक जीवन की विषमताओं और अन्तर्विरोधों की बहुरंगी परतों को अपनी रचना–प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्त किया है। अत: इस अध्याय में जनमानस की दशा, मनुष्य की सामाजिक स्थिति, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, समाज के सभी वर्गों की सामाजिक भूमिका तथा उनकी समस्यायों की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालने का भी प्रयास किया गया है।

काव्यानुभूति कोई जीवन निरपेक्ष और असंग शक्ति नहीं है। युगीन राजनीति से उसका अभिन्न जुड़ाव है। गोपाल सिंह 'नेपाली' के जीवन काल में भारतीय राजनीति ने कई करवटें ली। स्वयं 'नेपाली' जहाँ के थे, वह क्षेत्र गाँधी जी के सत्याग्रह भूमि (चम्पारण) के रूप में जाना जाता है। 'नेपाली' ने सत्याग्रह देखा, भारत छोड़ो आन्दोलन देखा, आजादी देखी, विभाजन देखा, भारत-चीन की लड़ाई देखी, इन सबका विश्लेषण किया और अपनी कविताओं में व्यक्त किया। उन्होंने सिर्फ भारत की स्वतन्त्रता के लिए ही गीत लिखकर युवाओं को प्रेरित नहीं किया, बल्कि अपने पड़ोसी देश नेपाल की जनता को भी राजतन्त्र से मुक्ति के प्रयास के लिए उकसाया। उन्होंने अपने देश और पड़ोसी देश की राजनीति पर अपनी पैनी नज़र रखी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए **चौथे अध्याय** में गोपाल सिंह 'नेपाली' के युगीन राजनीति का चित्रण, युद्ध के विभीषिका आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

नेपाली की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक परिदृश्य से मिलकर निर्मित हुई है। वह भारत के सांस्कृतिक बोध; चाहे वह कला का क्षेत्र हो या साहित्य का अथवा फ़िल्मी दुनिया का, अपनी कविताओं में विभिन्न रूपों में चित्रित करते हैं। इन कला रूपों के माध्यम से देश के सांस्कृतिक यथार्थ को समझने एवं चित्रित करने का प्रयास करते हैं।

नेपाली की सांस्कृतिक चेतना लोक-जीवन के तत्त्वों से मिलकर अपना रूप ग्रहण करती है। लोक-जीवन का राग-रंग उनकी कविता का स्वभाव है। लोक-जीवन की भूमि पर खड़े होकर ही वह सामन्ती एवं अभिजात्य मूल्यों का प्रतिरोध भी करते हैं। **पाँचवें अध्याय** में 'नेपाली' की कविताओं में अभिव्यक्त युगीन सांस्कृतिक मुद्दों व प्रश्नों पर विचार किया जाएगा।

ब्रिटिश उपनिवेश ने अपने तमाम कुनीतियों के माध्यम से भारत का आर्थिक दोहन किया। अंग्रेजी सरकार के शासन काल में किसान, मजदूर आदि की स्थिति बहुत ही दयनीय होती चली गई। 'नेपाली' ने अपनी कविताओं में उपनिवेशवाद के इस जन विरोधी आर्थिक नीतियों की समीक्षा की है।

स्वतन्त्रता मिलने के बाद सबको लगा की अब देश में समता आएगी, आर्थिक विषमता समाप्त हो जाएगी। ऐसा हुआ नहीं। नेपाली ने जिस स्वतन्त्र राष्ट्र की कल्पना की थी वह कल्पना ही रह गई। गोपाल सिंह 'नेपाली' ने भारत में व्याप्त आर्थिक विषमता, गाँव की आर्थिक दशा, ऊँच–नीच के भेद करने वाली अर्थनीति आदि पर अपनी कविता के माध्यम से प्रहार किया है। **छठे अध्याय** में उनके समय में व्याप्त आर्थिक विषमता और विपन्नता, आर्थिक शोषण आदि को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध के दौरान गोपाल सिंह नेपाली की रचनाओं मूल संस्करण प्राप्त करने की कोशिश की गई। मेरी इस कोशिश का पहला पड़ाव बिहार के बेतिया के निकट सरिसवा बाज़ार रहा। वहाँ डॉ. हजारी प्रसाद सिंह (हिन्दी व्याख्याता) के पास मैंने पहली बार नेपाली के सारे संग्रह देखे। दो दिन वहाँ रहकर उन संग्रहों को पढ़ने की कोशिश की। किन्तु उन पुस्तकों की

स्थिति इतनी जर्जर थी कि उनको ठीक से पढ़ना और उनकी फोटोकॉपी करवाना बेहद मुश्किल लगा। डॉ. सिंह ने बताया कि बेतिया के ही डॉ. सतीश राय के पास सारी सामग्री के बाद के संस्करण उपलब्ध हो सकते हैं। कई बार प्रयत्न करने पर भी सतीश राय से मुलाकात न हो सकी। बाद में मेरी बात नेपाली जी की भतीजी सविता नेपाली जी से हुई और उन्होंने आश्वस्त कराया कि वे मुझे सारी सामग्री उपलब्ध करा देंगी। लेकिन जब भी उनसे समय मिलता मेरा दुर्भाग्य बाधा उत्पन्न कर देता।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में 'पंक्षी' के अलावा नेपाली का कोई और संग्रह उपलब्ध नहीं था। दिल्ली के प्रकाशकों के पास 'गोपाल सिंह 'नेपाली' की प्रतिनिधि कविताएँ', 'गोपाल सिंह 'नेपाली' की चुनी हुई कविताएँ' एवं 'सत्तर कविताएँ' के अलावा दो आलोचनात्मक पुस्तकें 'गोपाल सिंह 'नेपाली' युग-द्रष्टा कवि' एवं 'गोपाल सिंह 'नेपाली' के गीतिकाव्य में संगीत तत्त्व' मिलीं। साथ ही नेपाली पर कई पत्रिकाओं के विशेषांक मिले। मैंने इस पुस्तकों के लेखकों और सम्पादकों से सम्पर्क किया तो नन्दकिशोर 'नन्दन' जी ने स्वयं की सम्पादित नेपाली जी के सारे संग्रह पटना से उपलब्ध करवाए। नेपाली जी के गीतों का जिक्र तो मिलता था, किन्तु वे लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थे। मैंने उन गीतों को सुनकर एक संकलन तैयार किया, जो परिशिष्ट के रूप में शोध-प्रबन्ध के अन्त में संलग्न हैं। यहाँ कुछ चुने हुए गीतों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। गीत में सुर, ताल व लय को ध्यान में रखकर एक ही पंक्ति की आवृति बार-बार होती है। यहाँ आवृति वाली पंक्तियों को सिर्फ एक बार ही लिखा गया है। कुछ शब्द जो वर्तमान समय में नए रूप में प्रचलित हैं उनकी वर्तनी नेपाली के काव्य-संकलन में प्रयोग किए गए शब्दों के रूप में रखी गई है।

भविष्य में शोधार्थी को सामग्री की समस्या न हो इसके लिए मैंने एक वेबसाइट का निर्माण किया, जहाँ नेपाली जी का उपलब्ध साहित्य अपलोड किया गया है, साथ ही उनसे सम्बन्धित अन्य सूचनाएँ भी प्रकाशित की गई हैं। नेपाली जी के पुत्र नकुल नेपाली जी से अनुमति मिलने पर यह सामग्री सबके लिए उपलब्ध कर दी जाएगी।

शोध के दौरान बहुतों की कृपा दृष्टि मेरे ऊपर बनी रही। इनमें सबसे पहला नाम गुरुवर प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे का है। उन्होंने शोध के विषय चयन से लेकर उसे अन्तिम रूप देने तक अमूल्य सुझाव दिया, जटिलताएँ सुलझाईं।

प्रो. रामबक्ष जाट और प्रो. देवशंकर नवीन का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय और सुझाव दिया और जिनके सहयोग के बिना यह शोध कार्य इस व्यवस्थित रूप में सम्भव नहीं था। इसके अलावा मैं भारतीय भाषा केन्द्र के अन्य शिक्षकों के प्रति भी हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरी दृष्टि को परिमार्जित किया।

जीवनसंगिनी सीमा ने सामग्री संचय, नेपाली के गीत-संकलन और 'वेब-डिजाईन' का निर्माण करने में मेरा पूरा सहयोग दिया। अकादमिक और पारिवारिक उलझनों मैं जब भी उलझा और झुलसा वह वर्षा की फुहार की तरह इनसे मुझे बचाती रही। उसको आभार देना खुद को आभार देने जैसा है।

कुछ अग्रज गुरु भी होते हैं। डॉ. सन्दीप जायसवाल का विशेष धन्यवाद, जिनके सहयोग से यह कठिन कार्य पूरा हुआ। सहयोग के लिए अभिषेक कुन्दन का भी आभार। भैया-भाभी का भी आभार जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग दिया। मित्रवत अग्रज योगेश तिवारी का साथ शुरू से अन्त तक बना रहा।

इस शोध-कार्य के दौरान कई उपलब्धियाँ मिलीं तो कई बार दुर्भाग्य ने परिस्थितियों को विषम बनाया। इन विषम परिस्थितियों ने जीना तो सिखाया लेकिन पिता के रूप में बड़ी कीमत लेकर। पापा को आभार नहीं उलाहना कि मेरे इस कार्य में व्यवधान न पड़े उन्होंने अपनी व्याधियाँ, तब तक छुपाई, जब तक वह असहनीय न हो गईं। इन विकट परिस्थितियों में भी प्यारी माँ ने अपना धैर्य नहीं खोया और मुझे हर चिन्ता से मुक्त रखते हुए शोध-कार्य को सुचारू ढंग से करने के लिए प्रेरित किया। माँ को प्रणाम।

पहला अध्याय

युगीन यथार्थ : अर्थ और अवधारणा

1.1. प्रस्तावना
1.2. यथार्थ की अवधारणा और साहित्य
1.3. युगीन यथार्थ : अर्थ और सन्दर्भ
1.4. यथार्थ के रूप
1.5. साहित्य और यथार्थ का सम्बन्ध
1.6. साहित्य में यथार्थ का विनियोजन
1.7. साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति
1.8. काव्य यथार्थ और स्थूल यथार्थ
1.9. यथार्थ और यथार्थवाद

पहला अध्याय

युगीन यथार्थ : अर्थ और अवधारणा

1.1. प्रस्तावना

साहित्य एक ऐसा दर्पण है, जिसमें मनुष्य के जीवन का वर्णन ही नहीं होता अपितु उसके आसपास के परिवेश का भी चित्रण किया जाता है। रचनाकार अपने जीवन काल में जिस यथार्थ को देखता है अपने आसपास जो कुछ सुनता-समझता है, उसकी गहरी छवि उसके अन्तर्मन में बसती चली जाती है। समय पाकर जब वही छवि 'क्यों' के रूप में व्यक्त होती है, तो साहित्य का रूप धारण करती हैं। हर रचनाकार अपनी संस्कृति, जीवन-दर्शन तथा भाव-भूमिकाओं को नजर में रखते हुए युगीन समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं में युगीन यथार्थ की ऐसी ही अभिव्यक्ति हुई है।

कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' ने बिहार के एक छोटे कस्बे बेतिया से मुम्बई तक का सफर किया। गीतकार के रूप में उन्होंने अपनी साहित्यिक सेवा दी। उनका रचनाकर्म सन् 1927 से 1963 तक फैला हुआ है। इस कालखण्ड में कवि ने *उमंग* (1934), *पंछी* (1934), *रागिनी* (1935), *पंचमी* (1942), *नीलिमा* (1944), *नवीन* (1944) और *हिमालय ने पुकारा* (1963) काव्य संग्रह के माध्यम से युगीन-यथार्थ को अभिव्यक्त किया। यह काल-खण्ड स्वाधीनता आन्दोलन से लेकर भारत की आजादी, विभाजन तथा चीन के साथ युद्ध

आदि घटनाओं का समय है। इन घटनाओं ने देश की राजनीति, सामाजिक-व्यवस्था, आर्थिक-व्यवस्था तथा संस्कृति को प्रभावित किया। उस प्रभाव ने हर रचनाशील मन को बेचैन किया, परिवर्तन को रेखांकित करने को बाध्य किया। कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं के हवाले से उस दौर के युगीन यथार्थ की कवि-दृष्टि जानने के लिए कुछ प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक होगा– यथार्थ क्या है? यथार्थ की अवधारणा क्या है? स्वरूप क्या है? साहित्य के साथ उसका सम्बन्ध क्या है? काव्य यथार्थ और स्थूल-यथार्थ में क्या भेद है? इसके साथ-साथ यह जानना भी आवश्यक है कि यथार्थ और यथार्थवाद का अन्तःसम्बन्ध क्या है?

1.2. यथार्थ की अवधारणा और साहित्य

यथार्थ अंग्रेजी के Reality शब्द के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त होता है। हालाँकि हिन्दी में यथार्थ के समानार्थी और भी शब्द हैं– सत्य, वास्तविकता, तथ्य एवं यथास्थिति आदि। अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोष में 'रियलिटी' इस शब्द का अर्थ 'वास्तविक', 'यथार्थ', 'स्वतन्त्र', 'सचाई', 'प्रमाणिक' व 'असली' है।[1] इनमें यथार्थ ही 'Reality' का समानार्थी हो सकता है। 'यथार्थ' दो पदों की सन्धि से निर्मित है– 'यथा'+'अर्थ'। 'यथा' अव्यय है जिसका अर्थ होता है– 'जैसा'। 'अर्थ' के प्रमुख हिन्दी समानार्थी शब्द 'वस्तु', तत्त्व, 'द्रव्य', 'पदार्थ' आदि हैं। अर्थात् यथार्थ का सामान्य 'अर्थ' हुआ– जैसा होना चाहिए ठीक वैसा। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. गुलाब राय ने यथार्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "यथार्थ वह जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, धूप-छाँव और सुख-दुःख मिश्रित रहता है। यह सामान्य भाव-भूमि के समतल रहता है और वर्तमान की वास्तविकता में सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तु है, जो उसकी पहुँच के बाहर हैं।

---

[1] पाठक आर. सी., *भार्गव स्टैंडर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी*, पृष्ठ 704

भविष्य उसके लिए कल्पना का खेल है। वह संसार के हाहाकार और करुण क्रन्दन का यथातथ्य वर्णन करता है। वह कठोर सत्य को कहने में नहीं हिचकिचाता। वह वास्तविकता के नाते संसार में पाप और बुराई का विजय घोष करने में संकुचित नहीं होता। वह संसार की कलुष-कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता वह स्वर्ण को भी कालिमामय मिट्टी के कणों से मिश्रित ही देखना चाहता है। वह उसे तपा-गला कर और उसमें चमक उत्पन्न कर लोगों को चकाचौंध में नहीं डालना चाहता।"[2]

यथार्थ तो वस्तु-स्थिति के अनुरूप होता है– जैसी वस्तु है, वैसी स्थिति का वर्णन करना, ही यथार्थ है। यथार्थ के अन्तर्गत असंगतियों, वैमनस्यों, कटुताओं आदि का चित्रण उनके स्वाभाविक रूप से किया जाता है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद ने हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों पर बात करते हुए लिखा है कि "जीवन की जटिलता, वैषम्य, संघर्ष आदि का सम्बन्ध निश्चय ही यथार्थ से है।"[3] प्रमाणित सत्य है कि यथार्थ की उपेक्षा किसी भी युग का रचनाकार नहीं करता, यथार्थ की अनदेखी कर कोई भी रचना श्रेष्ठ नहीं हो सकती। यही कारण है कि अमूर्त्त कला के के सन्दर्भ में चिन्तन करते हुए कवि शमशेर बहादुर सिंह ने यथार्थ की व्याख्या की है कि "सबसे बड़ा यथार्थ वह है जो हमारे अन्दर है, जो शब्दों में नहीं रखा जा सकता। शब्दों में कभी-कभी क्या, बल्कि अक्सर इसका उपहास-सा हो जाता है। शब्दों में आकर वह बदल जाता है, गलत-सा हो जाता है और अपना पूरा मतलब खो देता है।"[4] शमशेर बहादुर सिंह की इस परिभाषा के स्पष्ट है कि यथार्थ आत्माभिव्यक्ति होती है। इसलिए सिर्फ शब्दों के माध्यम से वास्तविकता का पता ठीक नहीं चल सकता है। हर

---

[2] शर्मा (डॉ.) रामविलास; *समालोचक*, लेख : उपन्यास में यथार्थ और आदर्श की सीमाएँ, पृष्ठ 153

[3] प्रसाद (डॉ.) विश्वनाथ; *आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में अभिव्यक्त इतिहास दर्शन*, पृष्ठ 119

[4] *विपसा* (अंक-148 से 156), भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश 2010

रचनाकार किसी भी घटना से चाहे वह ऐतिहासिक हो या सामाजिक कुछ विशिष्ट तथ्यों को चुनता है तथा उन्हें सही मायने में कला के साँचे में ढालता है। अज्ञेय की दृष्टि में यथार्थ के आग्रह का यह पक्ष विशेष कोटि के यथार्थ की ओर झुका है, उसे स्थूल-यथार्थ तो कह सकते हैं किन्तु कला का यथार्थ नहीं कर सकते।[5] कला का यथार्थ उतना ही नहीं होता। श्रेष्ठ कवि गजानन माधव मुक्तिबोध का यह मानना है कि जीवन-यथार्थ और काव्य-यथार्थ में अन्तर होता है। उनकी दृष्टि में सर्जक काव्य-यथार्थ को जीवन-यथार्थ की अनुकृति मान लेता है, तो वह सही नहीं है। जीवन-यथार्थ अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, किन्तु काव्य में उसका प्रतिबिम्बित रूप काव्य का यथार्थ नहीं।[6] *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिका* में यथार्थवादी लेखक उसे कहा गया है, जो सुन्दर वस्तुओं पर लिखना पसन्द नहीं करता बल्कि उसके बदले गन्दी, घिनौनी चीजों का वर्णन प्रस्तुत करता है और यथातथ्य चित्रण में विश्वास रखता है।[7] यह साहित्य की दर्पणवादी मानसिकता है, जो साहित्य से साहित्यिकता को चुराकर पत्रकारिता की ओर मोड़ देती है। मुक्तिबोध की दृष्टि में यह गलत है। उनका मानना है कि कविता में कल्पना भी होती है, कल्पना यथार्थ का अंग है, एक सच्चा यथार्थवादी लेखक जब कल्पित घटनाओं एवं पात्रों का उपयोग करता है तो ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य भले ही ना हो किन्तु वह यथार्थ के अनुरूप होता है। ऐसी कल्पना को यथार्थ के बाहर समझना ठीक नहीं है।[8] सुपरिचित आलोचक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने तारसप्तक के कवियों की समाज चेतना पर काम करते हुए स्पष्ट किया है कि “एक सर्जक जिसे यथार्थ मान बैठता है, हो सकता है, वह सम्पूर्ण यथार्थ न होकर उसका एक अंश मात्र हो, अथवा यथार्थ मात्र प्रतिबिम्बन या

---

[5] अज्ञेय, सच्चिदानन्द वात्स्यायन, *भवंती*, पृष्ठ 31

[6] मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *एक साहित्यिक की डायरी*, पृष्ठ 31

[7] https://www.britannica.com/art/realism-art

[8] प्रसाद (डॉ) राजेंद्र, *तारसप्तक के कवियों की समाज-चेतना*, पृष्ठ 130

यथातथ्य चित्रण हो, काव्य-यथार्थ नहीं। स्थूल अथवा जीवन-यथार्थ काव्य-यथार्थ का पर्याय नहीं। इसलिए दोनों के आपसी अन्तर को जानना आवश्यक है। सर्जक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह यथार्थ के अधिक व्यापक रूप को न भूले। भ्रमवश उसे किसी एक विशेष रूप अथवा अर्थ में संकुचित कर देना सही नहीं।"[9]

1.3. युगीन यथार्थ

'युगीन' शब्द को सामयिक शब्द का पर्याय माना जाता है। एक सच्चा रचनाकार युगीन (समसामयिक) यथार्थ की कभी उपेक्षा नहीं करता। मुक्तिबोध की दृष्टि में 'जो कवि समसामयिक यथार्थ की उपेक्षा करता है, वह सच्चा सर्जक नहीं है।'[10] किन्तु अज्ञेय का मानना है कि "ऐसी रचनाएँ जो कालिक यथार्थ (युगीन यथार्थ) से युक्त होती हैं उनमें 'तात्कालिक सम्पृक्ति' अथवा 'रेलेवेंस' सर्वाधिक जान पड़ती है, किन्तु वे जल्द ही पुरानी पड़ जाती है।"[11] डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार यह मानना गलत है कि सामयिक घटनाओं और सामाजिक परिवर्तनों पर लेखनी उठाने से 'कला की अमरता' खण्डित हो जाती है। उन्होंने लिखा है कि "आज वही सर्जक टिकाऊ साहित्य दे पाएगा जो सामयिक सामाजिक गतिविधि से गहरा सम्बन्ध रखता हो।"[12] नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है कि "कोई भी लेखक सामयिक स्थितियों से अलग होकर नहीं लिख सकता, क्योंकि लेखक की अनुभूति उसकी व्यक्तिगत, सामाजिक, परिवेशगत सीमाओं से एकदम बाहर नहीं हो सकती, वह स्वयं अपने जीवन से, अपने युग से और उससे उत्पन्न होने वाले रुझानों से सम्पूर्णता उभार नहीं सकता।"[13] यह बात सच है कि सिर्फ समसमायिक हो जाने मात्र से कोई कविता श्रेष्ठ नहीं हो जाती। नेमिचन्द्र जैन की दृष्टि में समसामयिकता का सम्बन्ध मूलतः "विषय वस्तु से इतना नहीं, जितना साहित्यकार

---

[9] वही, पृष्ठ 130

[10] मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध*, पृष्ठ 21

[11] अज्ञेय, सच्चिदानंद वात्स्यायन, *आधुनिक हिन्दी साहित्य*, पृष्ठ 112

[12] शर्मा, रामविलास, *भाषा साहित्य और संस्कृति*, पृष्ठ 141-142

[13] जैन नेमिचंद्र, *बदलते परिप्रेक्ष्य*, पृष्ठ 63

के ग्रहण शक्ति से है।”[14]

वही साहित्य महान है, जो शाश्वत सत्य को या यथार्थ को अभिव्यक्त करती हो। किन्तु यह भी सत्य है की कोई भी साहित्य अथवा रचना शाश्वत तब होगी जब वह युगीन सत्य को पूर्णता से समझ पाएगी। रामविलास शर्मा ने माना है कि साहित्य स्थायी तभी बनता है, जब सर्जक अपने को सामायिकता से नहीं काटता।

1.4. यथार्थ के रूप

रचनाकार अपनी रचना में जिस यथार्थ को अभिव्यक्त कर रहा होता है उसका विस्तार बहुत व्यापक होता है। उस यथार्थ में गतिशीलता होती है, विविधता एवं जटिलता होती है। ये विविधता अपने सम्पूर्ण गुण के साथ काव्य में अभिव्यक्त होती है। इसके साथ ही रचनाकार यथार्थ को ज्यों का त्यों नहीं उतरता। वह अपनी विचारधारा के अनुसार यथार्थ को ग्रहण करता है। और हर रचनाकार की विचारधारा व यथार्थ को देखने की दृष्टि उसके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिवेश के कारण बनती है। इसलिए अध्ययन की सुविधा हेतु यथार्थ के विभिन्न रूप से अवगत होना आवश्यक है।

- **सामाजिक यथार्थ**

सामाजिक यथार्थ समाजवादी यथार्थ का परिष्कृत और परिमार्जित रूप है। सामाजिक यथार्थ के मूल में समाज का बहुआयामी यथार्थ विन्यस्त है। इसमें रचनाकार आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थ का मूल्यांकन करता है। सामाजिक यथार्थ वस्तुतः समष्टि का यथार्थ है, जिसमें समाज में घटित सभी वास्तविक कार्य-व्यापार का सूक्ष्म और व्यापक अंकन होता है। समाज के उतार चढ़ाव का सच्चा रूप रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने रखने का प्रयत्न करता है। उसकी अभिव्यक्ति में समाज की सभी विसंगतियाँ और समस्त कार्य

---

[14] वही, पृष्ठ 65

व्यापारों की सचाई निहित होती है। हिन्दी शब्दकोष के अनुसार “सामाजिक यथार्थ व्यक्तिगत पक्ष के साथ-साथ सामाजिक पक्ष का भी उद्घाटन करने में विश्वास करता है। सामाजिक यथार्थ के भीतर वे शक्तियाँ आती हैं, जो मानव मस्तिष्क से बाहर हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का समुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है। ये शक्तियाँ मिलकर उस सामाजिक वातावरण का निर्माण करती हैं, जिसमें संस्कारों का सृजन होता है।”[15] सामाजिक यथार्थ में समाज के अच्छे बुरे दोनों पक्षों का तटस्थ दृष्टि से चित्रण किया जाता है। वह समाज की प्रत्येक आधारभूत इकाई से जुड़ा हुआ होता है। अध्ययन की सुविधा हेतु सामाजिक यथार्थ के सभी तत्त्वों (आर्थिक यथार्थ, सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक यथार्थ, सांस्कृतिक यथार्थ आदि) को अलग-अलग हिस्से में बांट कर देखा जा सकता है।

- **राजनीतिक यथार्थ**

समाज और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज को चलाने में राजनीतिक यथार्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान समय में राजनीति व्यक्ति के जीवन का अंग बन चुकी है। व्यक्ति एवं समाज से सम्बन्धित होने के कारण इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। डॉ. पुष्पलाल सिंह के अनुसार “आज का लेख राजनीति को अपने लेखन से अलग करके इसलिए नहीं देख सकता क्योंकि उसके जीवन यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए राजनीतिक जीवन के छल-छद्म को कथा साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है।”[16] राजनीतिक जीवन का यह छल-छद्म चूँकि साहित्य की सभी विधाओं में होता है, इसलिए कविता में भी होता है।

राजनीति जनता के हितों की रक्षा करती है और साहित्य में भी उसी का स्वर देती है।

---

[15] वर्मा, धीरेंद्र (सं.), *हिन्दी साहित्य कोश*, पृष्ठ 840

[16] सिंह, (डॉ.) *पुष्पलाल, समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ*, पृष्ठ 99,

साहित्य समाज से सम्बन्धित होने के कारण राजनीति से भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्ध रखता है। राजनीति किसी भी समाज को संचालित करने वाले शक्ति का परिचायक है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का लेखन का आरम्भ आजादी से पूर्व हुआ और आजादी के बाद तक उनकी लेखनी चलती रही। इसलिए उनके समय के राजनीतिक यथार्थ को दो रूपों में देखा जा सकता है- पहला स्वतन्त्रता से पूर्व की राजनीति और दूसरा स्वतान्त्र्योतरकालीन राजनीति। इस सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा आगे के अध्याय में होगी।

- **आर्थिक यथार्थ**

मानव का जीवन-स्तर अर्थ पर निर्भर करता है। भारतीय समाज और संस्कृति पर बात करते हुए रविन्द्रनाथ मुखर्जी ने लिखा है कि "अर्थ, शब्द, धन, सम्पत्ति मुद्रा का पर्यायवाची नहीं है, वह सुखों की सभी आवश्यकताओं का द्योतक है।"[17] मनुष्य इसी आवश्यकता के लिए संघर्ष करता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत में आने का उद्देश्य भी भारत का अर्थ-हरण था। जिसकी आलोचना भारतेन्दु काल से ही शुरू हो गई थी। आर्थिक व्यवस्था समाज में वर्गों का निर्धारण करती है। हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग पर बात करते हुए डॉ. मंजुलता सिंह ने रेखांकित किया है कि "वर्ग का निर्णय व्यक्ति या समूह के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों की भिन्नता पर आधारित होता है।"[18] मार्क्सवाद सम्पूर्ण मानव-सम्बन्ध को अर्थ के स्तर पर व्याख्यायित करता है। और यह आशा करता है कि लेखक अपनी रचना में अर्थ के इस असमान वितरण को चित्रित करे और साम्यवाद की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करे।

चूँकि भारत की अर्थ-व्यवस्था कृषि पर आधारित है, इसलिए हर यथार्थवादी रचनाकार अपनी रचनाओं में किसान-मजदूर आदि की समस्या का उद्घाटन करने का प्रयास करता है।

---

[17] मुखर्जी, रविन्द्रनाथ, *भारतीय समाज एवं संस्कृति*, पृष्ठ 118

[18] सिंह, (डॉ.) मंजुलता, *हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग*, पृष्ठ 15

अंग्रेजों द्वारा वसूल किए जानेवाले अनुचित लगान के खिलाफ आवाज उठी। प्रगतिवाद के दौर का लगभग साहित्य अर्थ के भेद को लेकर भारतीय अर्थ-तन्त्र की आलोचना से भरा हुआ है। आजादी के बाद जब सत्ता स्वशासित हुई तो जनहित में रचित पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा हुई। सजग रचनाकारों ने इन सब का मूल्यांकन अपने साहित्य में इस आर्थिक यथार्थ की अभिव्यक्त द्वारा की।

- **सांस्कृतिक यथार्थ**

“संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है।”[19] संस्कृति पर विचार करते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि “संस्कृति एक ऐसी चीज है, जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है। अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता में वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है।... स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं सभ्यता के सामान हैं। मगर पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति है।[20] हजारीप्रसाद द्विवेदी संस्कृति ने शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ‘मनुष्य के जीवन की साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति ही संस्कृति है।’[21] उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मनुष्य अपने जीवन को सरल एवं प्रवाहमय बनाने के लिए कुछ रीतियों और मान्यताओं का सहारा लेता है, मनुष्य की रीतियों-नीतियों को संस्कृति कहा जाता है। मंगलदेव शास्त्री के अनुसार “किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की

---

[19] https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF

[20] दिनकर, रामधारी सिंह; *संस्कृति भाषा और राष्ट्र*, पृष्ठ 11

[21] द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *अशोक के फूल*, पृष्ठ 64

समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।"[22] शास्त्रीजी के इस मत से स्पष्ट है कि संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध, समाज के साथ सम्बन्ध, देश के साथ सम्बन्ध, रीति-रिवाजों, भावों की कलाओं में उसकी अभिव्यक्ति आदि सभी आते हैं। संस्कृति के इस व्यापक परिधि में धार्मिक मान्यताएँ भी सम्मिलित रहती हैं।

चूँकि एक रचनाकार भी समाज का ही एक अंग है, इसलिए समाज में व्याप्त रीति-रिवाज, धार्मिक मान्यताएँ उसे प्रभावित करती हैं। उसकी मानसिक संरचना के निर्माण में भी संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। वह जो कुछ भी लिखता है, रचता है अपने युगीन संस्कृति को अभिव्यक्ति दे रहा होता है।

1.5. साहित्य और यथार्थ का सम्बन्ध

साहित्य और यथार्थ का गहरा सम्बन्ध है, परन्तु दार्शनिक यथार्थवाद से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। इन्द्रिय-ग्राह्य सत्य के चित्रण की विशेष प्रवृत्ति अथवा यथार्थ-चित्रण के प्रति आग्रह यथार्थवादी साहित्य में ही दिखाई पड़ता है। विशेषकर साहित्य की आधुनिक विधा 'उपन्यास' के उदय के मूल में यह प्रवृत्ति सक्रिय मानी जाती है। पाश्चात्य विद्वान डीफो, रिचर्डसन और फील्डिंग आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों का कथानक इतिहास, पुराण या प्राचीन साहित्य से न लेकर सीधे जीवन से लिया है। साहित्य मनुष्य की ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, और भाव शक्ति का अभिव्यंजन है। आचार्य भामह ने साहित्य की परिभाषा 'शब्दार्थोसहितोकाव्यं' के रूप में दी है।[23] इसमें शब्द और अर्थ से युक्ति युक्त होना साहित्य का अर्थ बताया गया है। साथ ही इसमें हित की कामना को भी ध्यान में रखा गया है। शब्द के साथ अर्थ का जुड़ा रहना हमारा ध्यान खींचता है। अर्थ से अभिप्राय: मानव की स्थिति और नियति दोनों से है। अर्थात् जिसमें मनुष्य की स्थिति और

---

[22] शास्त्री, मंगलदेव, *भारतीय संस्कृति का विकास*, पृष्ठ 24

[23] गुप्त, गणपतिचन्द्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त*, पृष्ठ 4

लक्ष्य दोनों की अभिव्यक्ति समन्वित रूप से हो सके। मानव की स्थिति बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय है। मानव सभ्यता दो अतियों के छोर में बँधी हुई है। एक छोर पर वह दृष्टिकोण है, जो दृश्यमान जगत को नश्वर या मिथ्या बताता है और आत्मोद्धार की बात करता है। यह पक्ष आध्यात्मिक, भावात्मक और आदर्शवादी है। दूसरे छोर पर वह दृष्टिकोण है, जो जगत को सत्य और यथार्थ समझता है तथा परलोक आत्मोद्धार एवं परमशक्ति आदि को नकार देता है। यह दृष्टिकोण यथार्थवादी और भौतिक दृष्टिकोण है। जीवन का सत्य इन दोनों अतियों में से किसी एक के द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता। योगीराज श्री अरविन्द ने इन दो अतियों के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। उनके विचार दर्शन को प्रस्तुत करते हुए एस.के मैत्र ने लिखा है कि "साहित्य में इस सन्तुलन की बहुधा अनदेखी की गई है। संस्कृत के विशाल वाङ्मय में अध्यात्म और आदर्श सर्वोपरि रहे हैं। यह प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा।"[24] आदिकाल से लेकर छायावाद तक इसकी छाया अविकल रूप से रही। आदिकाल में वीरगाथात्मकता के साथ-साथ विद्यापति की पदावली की समन्वित धारा चली। भक्ति काल में एक धारा ने विशुद्ध रूप से ईश्वरीय प्रेम का काव्य रचा, तो दूसरी धारा ने भक्ति में व्याप्त कर्मकाण्ड की आलोचना की। रीतिकाल में सामन्ती परिवेश में सामाजिक यथार्थ शृंगार में छिपकर अभिव्यक्त हुआ। भारतेन्दु मण्डल की कविताओं में पराधीन भारत की समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के काल में समाज-सुधारवादी काव्य की रचना की गई। छायावाद में एक ओर दार्शनिकता का आग्रह था, तो दूसरी ओर गाँधी का प्रभाव। छायावाद के बाद प्रगतिवाद आया, जिसने जीवन को भौतिकवादी यथार्थ के दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया, जिसका वैचारिक आधार मार्क्सवाद था। उसके उपरान्त हिन्दी साहित्य का दृष्टिकोण बदला और यथार्थ स्वरूप साहित्य यथार्थ बना।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का अधिकांश

---

[24] मैत्र, एस.के., अंजनी कुमार सिंह (अनु.), *अरविन्द दर्शन की भूमिका*, पृष्ठ 7

मानव के ठोस यथार्थ से विलग रहा। वीरगाथा काल में राज्य-विस्तार, स्त्री-हरण, यश प्राप्ति आदि आध्यात्मिक विषय नहीं था, परन्तु उनका सम्बन्ध यथार्थ से न होकर राजाओं और सामन्तों की महत्त्वाकांक्षाओं और भोगपूर्ण जीवन से था। इसे हम मानव जीवन का सही यथार्थ नहीं कह सकते। रीतिकाल में आकर राज्य-विस्तार के लिए होने वाले युद्ध कि रणभूमि का स्थान नारी सौन्दर्य की रणभूमि ने ले लिया। यह भी उस यथार्थ से सर्वथा भिन्न था, जिसकी कल्पना भारत और पश्चिम के यथार्थवादी विचारकों ने की है। स्वाधीनता के संघर्ष काल में रचा गया साहित्य भले ही भावात्मक रहा किन्तु उसमें यथार्थ भी उपस्थित रहा। हिन्दी साहित्य की महान परम्परा पर विचार करते हुए आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने जिन पाँच निरा परम्परा की स्थापना की, उनमें से यथार्थ एक है।

1.6. साहित्य में यथार्थ का विनियोजन

कला और साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद अपने निश्चित सैद्धांतिक रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकट हुआ। सन् 1855 में 'कोर्वे' ने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया। इन चित्रों में यथातथ्य निरूपण की शैली व्यवहृत हुई और उसके सम्बन्ध में 'रियलिज्म' शब्द का प्रयोग उसके निर्माता ने स्वयं किया। इसके कुछ समय पश्चात सन् 1856 में 'फ्लावेयर' का प्रसिद्ध उपन्यास *'मेडम वोवेरी'* प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले भी यह सृजनात्मक साहित्य का मेरुदण्ड रहा है। यथार्थ-चित्रण के प्रति आग्रह वस्तुतः आधुनिक साहित्य में ही दिखाई पड़ता है। साहित्य की आधुनिक विधा 'उपन्यास' के उदय के मूल में यह विशेषता खास तौर पर सक्रिय मानी जाती है। 'विद्वानों ने डीफो रिचर्डसन और फील्डिंग की औपन्यासिक कृतियों में यथार्थवादी प्रवृत्तियों की प्रमुखता को रेखांकित किया है।'[25] इनमें परम्परागत साहित्यिक रूढ़ियों को अस्वीकार कर सर्वथा नये मार्ग के अनुसंधान का प्रयास

[25] सत्यकाम, *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द*, पृष्ठ 15

दिखता है, जो यथार्थबोध पर आधारित है। इन्होंने अपने कथानक इतिहास पुराण या प्राचीन साहित्य से न लेकर सीधे जीवन से लिये। यह मौलिकता यथार्थवाद की खास पहचान है। मनुष्य समाज में रहता है और समाज में रहने वाले मनुष्यों के बीच नाना प्रकार के सूक्ष्म, जटिल और उलझे हुए सम्बन्ध होते हैं। मनुष्य और वह समाज जिसमें मनुष्य रहता है, दोनों परिवर्तनशील हैं। साथ ही मनुष्य, उसका समाज और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध देश-काल सापेक्ष भी है। यथार्थवाद चूँकि उस जीवन-सत्य का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करने का आग्रही होता है, जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है अत: वह भी देश-काल सापेक्ष होता है। यूरोप में दर्शन और साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ अठारहवीं शताब्दी में उभरी और प्रमुख रही। साहित्य के सभी विधाओं– काव्य, नाटक, उपन्यास कहानी में यथार्थ अपनी सम्पूर्ण क्षमता से दिखाई पड़ते हैं। कला और साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद वह प्रवृत्ति है, जिसमें वस्तुओं और व्यक्तियों के वास्तविक स्वरूप का, पारस्परिक सम्बन्धों का तथा उनके गुण-दोषों का सही वर्णन किया जाता है।

यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ सभी देशों के साहित्य में विभिन्न कालों में मिलती हैं। अपनी रचनाओं में यथार्थवादी रचनाकार किसी भी सामाजिक स्थिति के यथार्थ चित्र उपस्थित करते हैं। इस प्रयास ने पाठक के मन में उस आक्रेश को जन्म देना चाहते हैं, जिसके बिना किसी भी सुधार परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मध्यकाल से ही दिखाई देती हैं। कबीर को हिन्दी के प्रथम यथार्थवादी कवि माना जाता है। उन्होंने अपने काव्य में मध्ययुगीन समाज के खोखलापन का सशक्त चित्रण किया है। जीवन की विकृतियाँ एवं कुरूपताएँ सर्वत्र उनके आक्रोश का लक्ष्य बनी हैं। तुलसीदस के यहाँ भी यथार्थवाद की प्रवृत्ति बहुत हद तक दिखाई देती है। उनके रचना संसार में सामाजिक जीवन की कटुताओं की समीक्षा और रामराज्य के यूटोपिया का चित्र दृष्टिगोचर होता है। उनकी रचनाओं में विशेषकर *'रामचरितमानस'* के उत्तरकाण्ड तथा *'विनय पत्रिका'* के पदों में सामाजिक यथार्थ की प्रकृष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

आधुनिक अर्थ में यथार्थवाद का प्रथम विकास हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के माध्यम से हुआ। द्विवेदी युगीन आदर्शप्रियता तथा छायावादी काल्पनिक जगत के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई, उसने प्रगतिवादी साहित्य-सृजन में यथार्थवाद को एक अपरिहार्य अंग बना दिया। जिसके चलते कविता कहानी उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में आधुनिक जीवन के गहरे संघर्षों, विद्रूपों, अन्तद्वन्द्वों तथा कुरूपताओं का अंकन हुआ। इस युग के साहित्य-सृजन का दार्शनिक आधार मार्क्सवाद था। मार्क्स ने सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ की ओर संकेत किया और फ्रायड ने वैयक्तिक जीवन की गर्हित कुण्ठाओं की ओर ध्यान दिलाया। कुछ तो समय की आवश्यकता ने और कुछ इन दो चिन्तकों की विचारधारा ने यथार्थवाद को युग की अनिवार्य प्रवृत्ति बना दिया। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद की मौलिक शक्ति विराट सम्भावना के साथ ही विकसित हुई थी। प्रगतिवाद के समानांतर अन्य धारा भी चल रही थी, जो बिना किसी एक विचारधारा में बँधे, सहज रूप से अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त कर रहे थे।

प्रगतिवाद के उपरान्त प्रयोगवाद को भी यथार्थवाद का दायरा मिला। एक प्रकार से प्रयोगवाद में यथार्थवाद की प्रवृत्ति कुछ और गहरी हुई। जीवन की तुच्छ से तुच्छ परिस्थिति को भी साहित्य में चित्रित करने योग्य समझा गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने यथार्थवाद को साहित्य में और अधिक उपादेय बनाया और इस प्रकार प्रयोगवाद ने इस मौलिक प्रवृत्ति को अपनी आधारशिला के रूप में स्वीकार किया। वैसे प्रयोगवादी यथार्थवाद के साथ एक व्यापक तथा उदार मानवता की भावना भी संयुक्त थी, जो आगे नई कविता के आन्दोलन के साथ और अधिक विकसित हुई। वस्तुत: हिन्दी का आधुनिक यथार्थवाद साम्प्रदायिक न रहकर मानवतावादी प्रवृत्तियों के संयोग से साहित्य के क्षेत्र में अधिक कलात्मक तथा सामाजिक बन सका है।

1.7. साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति का स्वरूप

साहित्य में यथार्थ सीधे-सीधे ही प्रस्तुत हो, यह अनिवार्य नहीं। एक ही यथार्थ को

अभिव्यक्त करने के अलग अलग तरीके होते हैं। कोई रचनाकार विश्वयुद्ध को 'कुरुक्षेत्र' में देखता है। भारत-चीन युद्ध को 'परशुराम की प्रतीक्षा' में देखता है, तो कोई रचना का अर्थ सीधे-सीधे यह कहता है कि 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा है।'

कुछ रचनाकार यथार्थ को सहज रूप से अभिव्यक्त कर देता है। उसे अपनी बात कहने के लिए किसी मिथक या ऐतिहासिक कथाओं का सहारा नहीं लेना पड़ता है। सामाजिक यथार्थ हो या राजनीतिक या फिर मनोवैज्ञानिक, सबको वह बड़ी सहजता से अभिव्यक्त कर देता है। उदाहरणस्वरूप कबीर की कविता देखी जा सकती है। जबकि कुछ रचनाकार युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए ऐतिहासिक या मिथकीय पात्रों, घटनाओं का चयन करते हैं। तुलसीदास की प्रसिद्ध कृति *'रामचरितमानस'* इसका उदाहरण है। कुछ रचनाकार सत्य को कला, कौशल और शब्दाडम्बर के आवरण में इस कदर ढक देते हैं कि उनकी रचनाओं में सत्य का आभास मात्र होता है। छायावाद में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

हर रचनाकार प्रस्तुत सत्य को ज्यों का त्यों नहीं चित्रित करता, बल्कि अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार वस्तु-जगत् के दृश्यों को नये सिरे से सजाता है। ऐसा करने में वह अपनी अनुभूतियों तथा व्यक्तिगत रुचियों का सहारा लेता है। यही कारण है कि एक ही वस्तु का चित्रण विभिन्न लेखक भिन्न-भिन्न ढंग से करते हैं। इस प्रकार वस्तु-जगत् के सत्य और भाव-जगत् के सत्य में अन्तर दिखलाई पड़ता है। साहित्य का सत्य वस्तु-जगत् के सत्य से सदैव कुछ न कुछ भिन्न रहेगा। यथार्थवादी साहित्य को वस्तु-जगत् का तद्वत् चित्र मान लें तो भी चित्र और मूल में स्पष्ट अन्तर रहता ही है। साहित्य कोई फोटोग्राफी नहीं कि वह किसी भी वस्तु का निर्जीव चित्र उपस्थित कर दे। वह संसार के मानव सम्बन्धी यथार्थ चित्रों को कल्पना के रंग से सुन्दर बनाकर प्रस्तुत करता है। रांगेय राघव के अनुसार "साहित्य का सत्य कल्पना को बिल्कुल नहीं छोड़ देता वह यथार्थ के आधार पर जितना ही दृढ़ होता है, उतना

ही गहराइयों तक पहुँचता है।”[26] यहाँ कल्पना दो प्रकार की दिखाई पड़ती है। पहली कोरी कल्पना (जिसमें माथा-पच्ची की जाती है) और दूसरी वह जो यथार्थ को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने के लिए कुछ ताना-बाना बुनती है।

“साहित्य ने सामाजिक जीवन के गतिशील अन्तर्विरोधों को प्रतिबिम्बित करना छोड़ दिया, वह एक अमूर्त्त 'सत्य' का दृष्टांत बन गया। इस दृष्टि की सौन्दर्यशास्त्रीय परिणतियाँ आज स्पष्ट हैं। जहाँ यह 'सत्य' झूठ या अर्द्धसत्य न होकर सत्य ही था वहाँ भी दृष्टांत के रूप में साहित्य की धारणा अच्छी रचना में बाधक बनी।”[27]

1.8. काव्य-यथार्थ और स्थूल-यथार्थ

काव्य का यथार्थ स्थूल-यथार्थ से भिन्न होता है; क्योंकि कवि यथार्थ का फोटोग्राफिक चित्रण नहीं करता, बल्कि यथार्थ के समानान्तर एक और यथार्थ रचने का प्रयास करता है, जिसमें स्थूल-यथार्थ की समस्याओं का निदान-सूत्र छिपा होता है। कवि के माध्यम से यथार्थ कविता को प्रभावित करता है और कविता के माध्यम से कवि यथार्थ को प्रभावित करता है।

काव्य के यथार्थ को लेकर कई सारी भ्रांतियाँ भी हैं। जिस पर कई विद्वानों ने चर्चा की है। अज्ञेय ने *तार सप्तक* के माध्यम से काव्य में क्षण की महत्ता स्थापित की तो कुछ कवियों का ध्यान उस यथार्थ की ओर गया जो पारिभाषिक रूप से स्थूल-यथार्थ है। यह झुकाव युक्तिसंगत भी है। अज्ञेय ने जिसे स्थूल-यथार्थ कहा, उसे मुक्तिबोध ने जीवन-यथार्थ कहा। उनकी दृष्टि में भी ‘सर्जक काव्य-यथार्थ को जीवन-यथार्थ की अनुकृति मान लेते हैं, वे सही नहीं हैं।’[28] काव्य-यथार्थ और स्थूल-यथार्थ का भेद ही असल में साहित्य और पत्रकारिता को

---

[26] राघव, रांगेय, *आलोचना*, पृष्ठ 12

[27] लुकाच, जार्ज, अनुवादक, कर्णसिंह चौहान, *समकालीन यथार्थवाद*, पृष्ठ 113

[28] मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *एक साहित्यिक की डायरी*, पृष्ठ 31

अगल करता है। समाचार-पत्रों में स्थूल-यथार्थ व्यक्त होता है, जो घटना घटी उसकी हू-ब-हू प्रस्तुति होती है। वही यथार्थ जब कविता में आता है, तो उस घटना के प्रति मनुष्य की संवेदना, उसका चिन्तन, प्रभाव... सभी अभिव्यक्त होने लगता है। एक ही घटना अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग यथार्थ लिए हुए होती है। जैसे एक आतंकवादी घटना में आतंकवादी के लिए यथार्थ अलग होगा किन्तु जो निर्दोष मारा गया, उसके परिवार वालों के लिए अलग और प्रशासन के लिए अलग। एक लेखक इस घटना को देखता है तो उस खास क्षण में उन संवेदनाओं को पकड़ने का प्रयास करता है। समाज, राष्ट्र तथा मनुष्य के हित में सुसंगत प्रश्नों से टकराना यहाँ आवश्यक है तभी कला अथवा काव्य के यथार्थ का वास्तविक रूप तय होता है।

1.9. यथार्थ और यथार्थवाद

साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में बात करते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने स्पष्ट किया की आधुनिकता की अवधारणा का सम्बन्ध सामाजिक एवं राजनीतिक है। इसी आधुनिकता की चर्चा जब कला या साहित्य में होती है तो वहाँ आधुनिकतावाद होता है।[29] इसी तरह साहित्य में यथार्थ प्रायः यथार्थवाद के रूप में प्रयुक्त होता है। यथार्थ जीवन की वास्तविकता है। इसी वास्तविकता को यथार्थवाद के द्वारा अनावृत किया जाता है। वास्तव में यथार्थ एक दृष्टि है और यथार्थवाद उस दृष्टि को अभिव्यक्त करने वाली एक विशेष शैली। इस तरह यथार्थवाद, यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिम्ब हुआ। इसलिए साहित्य में प्रायः इन दोनों में भेद कर पाना मुश्किल होता है। त्रिभुवन सिंह ने लिखा है कि “जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है पर उसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। यथार्थ और यथार्थवाद के बीच एक निश्चित भेदक रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। यथार्थवाद यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त कुछ और नहीं है।”[30] इस कथन से स्पष्ट है कि साहित्य में यथार्थ और यथार्थवाद में अन्तर

---

[29] http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18

[30] सिंह, त्रिभुवन, *साहित्यिक निबन्ध*, पृष्ठ 24

नहीं किया जा सकता क्योंकि यथार्थवाद के माध्यम ही यथार्थ की अभिव्यक्ति से सशक्त रूप में होती है। यथार्थवाद केवल यथार्थ का आवरण है।

यथार्थवाद का उदय सर्वप्रथम फ्रांस में हुआ था। ज्ञान विज्ञान की प्रगति, औद्योगिक क्रान्ति, पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के उदय, फोटोग्राफी कला के अविष्कार, मुद्रण-यन्त्र के अविष्कार, संचार-क्रान्ति, शहरीकरण की प्रक्रिया आदि ने समग्रता में साहित्य लेखन को विशेष रूप से प्रभावित किया। फलस्वरूप साहित्य में यथार्थ के अंकन पर जोर दिया जाने लगा। यथार्थ की कसौटी पर रचना-कर्म को परखने की प्रवृत्ति बढ़ी और उसी रचना को महत्त्व मिला, जिसमें यथार्थ के प्रति विशेष आग्रह दिखा। शिवकुमार मिश्र ने यथार्थवाद का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना। उन्होंने लिखा कि "अपने समय के क्रान्तिकारी वैज्ञानिक आविष्कारों औद्योगिक प्रगति एवं दर्शन की प्रखर निष्पत्तियों से प्रेरित और अनुप्राणित एक सर्वांगपूर्ण जीवन-दृष्टि तथा सृष्टि के रूप में यथार्थवाद का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ।"[31]

विकिपीडिया के अनुसार सन् 1826 में प्रकाशित फ्रांस की साहित्यिक पत्रिका *'Mercure Francais Du Xixe Siecle'* में यथार्थवाद शब्द का प्रथम उल्लेख मिलता है।[32] इसमें यथार्थवाद का प्रयोग प्रकृति के हूबहू चित्रण तथा साहित्यिक कृति में सत्य के उद्घाटन के अर्थ में किया गया है। सन् 1857 में प्रकाशित स्याम्फ्लेफर (Champfleury) के *'Le-realism'* (The Realism) शीर्षक लेख को यथार्थवाद का घोषणा-पत्र माना जाता है।[33] इस घोषणा-पत्र के अनुसार रचनाकार को अपनी अभिव्यक्ति के प्रति पूर्णतः ईमानदार होना चाहिए। इसमें रचनाकार से कहा गया है कि उसे अपनी रचना में वही चित्र अंकित करना चाहिए, जिसका वह प्रत्यक्षदर्शी है। उसका मानना है कि एक सच्चा रचनाकार कभी भी

---

31 मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 7

32 https://en.wikipedia.org/wiki/Mercure_du_XIXe_si%C3%A8cle

33 https://www.britannica.com/art/realism-art#ref248693

यथार्थ-निरपेक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि यथार्थ के आलोक में प्रत्येक वस्तु को परखना उसकी लेखकीय प्रवृत्ति बन जाती है। इसके साथ-साथ यह भी ध्यातव्य है कि यथार्थ हमेशा सत्य के निकट नहीं होता।

हिन्दी साहित्य कोश में दर्ज परिभाषा के अनुसार– "यथार्थवाद, साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति है, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए।"[34] भारतीय एवं पाश्चात्य धारा के कई प्रख्यात विचारकों ने अपने-अपने ढंग से यथार्थवाद की अवधारणा को स्पष्ट किया है। एंगेल्स, हावर्ड फास्ट, जॉर्ज लुकाच जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने यथार्थ के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। एंगेल्स ने मिस मार्गरेट हॉट सेन को एक पत्र में लिखा है कि "मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरण और ब्यौरों के सत्य के प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सचाई के साथ चित्रित करें।"[35] स्पष्ट है की एंगेल्स के अनुसार सचाई को अभिव्यक्त करते समय रचनाकार को ईमानदार, वस्तुपरक और दृष्टि-सम्पन्न होना चाहिए। सचाई व्यक्त करते समय वस्तुतः युगीन स्थितियों पर भी गौर करना आवश्यक होता है, क्योंकि यथार्थ का रूप हमेशा एक जैसा नहीं होता। उसकी प्रामाणिकता युगीन सन्दर्भ में ही स्पष्ट हो सकती है। हावर्ड फास्ट ने यथार्थवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "साहित्य में रचना-प्रक्रिया हमेशा एक संश्लेषण है, प्रतिलिपि नहीं। लेखक सूची मात्र नहीं बनाता, उसे चुनाव करना होता है। यथार्थवाद ही वह साहित्यिक संश्लेषण है, जो चुनाव और सृजन के द्वारा यथार्थ के बारे में पाठक की समझ को बढ़ाता है।"[36] स्पष्ट है कि हावर्ड फास्ट सृजन के लिए लेखक की कल्पना शक्ति को सृजन महत्त्वपूर्ण मानते हैं। लेखक अपने आस-पास बहुत कुछ देखता, महसूस करता है; किन्तु उस देखे हुए

---

[34] वर्मा, धीरेन्द्र (सं.), *हिन्दी साहित्य कोश*, भाग-1, पृष्ठ 510

[35] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 25 पर उद्धृत

[36] फास्ट, हार्वर्ड, विजय सुषमा (अनु.), *साहित्य और यथार्थ*, पृष्ठ 17

को, उस एहसास को, अनुभव को हू-ब-हू प्रस्तुत नहीं करता; क्योंकि साहित्य की रचना कोई फोटोग्राफी नहीं है। वह उस देखे हुए सत्य में अपनी चेतना मिश्रित करता है, कल्पना करता है, फिर प्रस्तुत करता है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि "सम्पूर्ण मानव सृजनशीलता जीवन के यथार्थ और चेतना के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध से विकसित होती है। साहित्य का मूल उपादान मानव जगत का यथार्थ है। इस यथार्थ का अर्थ मानवीय अनुभव का सम्पूर्ण यथार्थ है, जिसमें केवल वस्तु जगत ही नहीं बल्कि यथार्थ की गतिशील प्रक्रिया की व्यंजना होती है।"[37] सच्चा लेखक यथार्थ के अंकन में सामाजिक परिप्रेक्ष्य का ध्यान अवश्य रखता है। लेखक अपनी प्रतिभा द्वारा अपने विवेक द्वारा वस्तु सत्य और कल्पना के समन्वित रूप से पाठ को यथार्थ के सही और सामाजिक रूप से परिचित कराता है। जॉर्ज लुकाच के अनुसार 'सच्चा तथा महान यथार्थवाद मनुष्य या समाज के मात्र सीमित पक्षों को दिखाने की अपेक्षा उन्हें सम्पूर्णता और समग्र इकाइयों के रूप में चित्रित करता है।"[38] जॉर्ज लुकाच की मान्यता है की यथार्थवाद की सार्थकता अपने परिवेश के सभी अंगों, चाहे वह व्यष्टि हो या समष्टि, को व्यापक रूप में चित्रित करने में है। सत्य को जानने के लिए गहराई में उतरना आवश्यक है; क्योंकि सत्य कभी भी छिछला नहीं होता। शिवकुमार मिश्र का इस सन्दर्भ में कहना है कि रचनाकार न तो समाजशास्त्री होता है, न संवाददाता, और न ही अर्थशास्त्री; जो तथ्य और आंकड़ों को संगृहित कर उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दे। यथार्थवादी लेखक अपनी रचना में सत्य और कल्पना का उचित कलात्मक सम्मिश्रण करता है। उसकी सृजनात्मक कृति में उसका अनुभव, उसकी अन्तर्दृष्टि और संवेदना निहित रहती है। उन्होंने लिखा है कि "यथार्थवादी लेखक सत्य को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है, परन्तु उसे फोटोग्राफी मात्र नहीं बना देता। यथार्थवादी रचनाकार अर्थ इस अनन्त रूपात्मक जगत

---

[37] पाण्डेय, मैनेजर, *साहित्य की इतिहास दृष्टि*, पृष्ठ 22

[38] कौर, (डॉ.) कुलदीप, *बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ*, पृष्ठ 22 पर उद्धृत

तथा उसके समूह के विस्तार को पैनी नजर से देखता है, व्यापक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार की स्थितियों तथा चरित्रों से साक्षात्कार करता है। अनुभवों की एक मूल्यवान समष्टि का स्वामी बनता है, किन्तु सारी बातों को ' फोटोग्राफिक' शैली में ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता। सारी घटनाओं तथा पात्रों को, समाजिक जीवन से प्राप्त यथार्थ अनुभव की खराद पर चढाता है, उन्हें तरसता है, नुकीला बनाता है और अपनी कृति के अन्तर्गत उनकी कलात्मक नियोजन करता है।"[39] उनके अनुसार 'सच्चे तथा महान यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन में यत्र-तत्र बिखरे, स्फुट अंशों को परखने और मूर्त्त करने का नहीं होता, वरन् उनकी दृष्टि इसके सम्पूर्ण रूप को उभारने की ओर होती है। वह उन्हें इनकी सम्पूर्णता में देखने पर बल देता है। खण्ड जीवन तथा खण्ड मनुष्य उसकी दृष्टि की परिधि में नहीं आते।'[40] उनके लिए सम्पूर्णता का अर्थ यह है कि एक रचनाकार जीवन के अच्छे बुरे सभी पक्षों का भूत भविष्य और वर्तमान के सन्दर्भ में पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ अंकन करे। अजब सिंह के अनुसार 'चेतना को सम्पूर्णता में लेना ही यथार्थ है। अगर कोई रचनाकार ऐसा नहीं करता तो निश्चय ही यथार्थ के एक पक्ष की ओर से आँखें बन्द कर लेता है। साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जीवन की ऊँची-नीची सारी अनुभूतियों को सामने रखे और उन्हें समन्वित करे। अनुभूति के सम्बन्ध में साहित्यिक आनन्द निहित है। उसी में साहित्य की सार्थकता होती है उससे हटकर पक्ष विशेष तक मात्र सीमित रहना सत्य हो सकता है किन्तु वह आंशिक सत्य होता है।'[41] स्पष्ट है कि रचनाकार को रचना करते समय अपनी दृष्टि व्यापक बनानी चाहिए, न कि संकुचित दृष्टि से सत्य का अवलोकन करना चाहिए।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के सन्दर्भ में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग किया है। *आदर्शोन्मुखी*

---

[39] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद,* पृष्ठ 31

[40] वही, पृष्ठ 27

[41] सिंह, (डॉ.) अजब, *यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन*, पृष्ठ 82

यथार्थवाद शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा कि "यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारे विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है।"[42] जबकि साहित्य में सत्य का यथातथ्य अंकन उसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति सम्भव नहीं होती; क्योंकि साहित्य-सृजन एक भावात्मक प्रक्रिया है। हालाँकि वे रचना के लिए यथार्थवाद की महत्ता को अस्वीकार नहीं करते, किन्तु आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को साहित्य के पक्ष में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार "इसमें संदेह नहीं समाज की कुप्रथा की ओर ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि इसके बिना बहुत सम्भव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उससे कहीं काला दिखाएँ जितना वास्तव में वह है।"[43] प्रो. सत्यकाम के अनुसार जीवन का यथातथ्य चित्रण यथार्थवाद है। उन्होंने लिखा है कि "यथार्थवाद साहित्य में सचाई और ईमानदारी के साथ अनुभव की प्रामाणिकता और गहरी समझ के साथ जीवन का यथार्थ अंकन है।"[44] वे अनुभव की प्रमाणिकता पर जोर देते हैं।

अनुभव की प्रक्रिया जितनी सूक्ष्म और गहरी होगी, यथार्थ का अंकन उतना ही वास्तविक होगा। लापरवाह अनुभव के सहारे न तो यथार्थ का मौलिक चित्रण होगा, न ही व चित्रण सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से हितकारी होगा। इसलिए रचनाकार के लिए रचना करते समय आवश्यक है कि वह यथार्थ और नग्न यथार्थ के भेद को समझे।

चूँकि साहित्य कोई यान्त्रिक किया नहीं है इसलिए इसकी रचना के समय चेतन और अचेतन का सन्तुलन बनाना अनिवार्य होता है। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि एक ही घटना का यथार्थ अलग-अलग व्यक्तियों, अलग-अलग समाजों, अलग-अलग परिस्थितियों तथा अलग-अलग काल में बदलता रहता है। उदाहरण स्वरूप 1857 की क्रान्ति को देखा जा सकता है। इस क्रान्ति से सम्बन्धित कई पक्ष हैं। इसलिए हर पक्ष का

---

[42] प्रेमचन्द, *कुछ विचार*, पृष्ठ 49

[43] वही, 49

[44] सत्यकाम, *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द*, पृष्ठ 40

यथार्थ अलग-अलग है। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी जिसका मुख्य उद्देश्य साम्राज्य विस्तार था उसके लिए यह सैनिक विद्रोह था। इसलिए सीले ने कहा कि 1857 का संघर्ष 'एक पूर्णतया देशभक्ति रहित और स्वार्थी सैनिक विद्रोह था। जिसमें न कोई स्थानीय नेतृत्व था और न ही इसे सर्व-साधारण का समर्थन प्राप्त था।[45] कुछ भारतीय चिन्तक जो यह मानते थे कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान अंग्रेजों के द्वारा भारत में आया, उन्होंने कलकत्ता में एक बड़ा प्रदर्शन कर बलवाइयों की अपमानजनक निन्दा की तथा सरकार के समर्थन में नारे लगाए।[46] एल. ई. रिज ने धर्मान्धों का ईसाइयों के विरुद्ध युद्ध बताकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कमजोर साबित किया। वहीं सावरकर ने अपनी किताब *'1857 में भारतीय स्वातन्त्र्य समर'* क्रान्ति का चरित्र राष्ट्रीय बताया। किन्तु डॉ. एस. एन. सेन तथा डॉ. आर. सी. मजूमदार को इसके राष्ट्रीय चरित्र पर शक हुआ। मार्क्स ने इसे भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम घोषित किया। कुछ आलोचक इसे 'संगठित प्रतिरोध का जन ऐतिहासिक सन्दर्भ' के रूप में देखते हैं।

उपर्युक्त घटना से स्पष्ट है कि अलग-अलग कोणों से देखा गया यथार्थ सत्य है, किन्तु समग्रता में यह अधूरा सत्य है। हर पक्ष, उतना ही यथार्थ देखता है या देखना चाहता है, जितने की उसे आवश्यकता है। लेकिन एक सजग रचनाकार दूसरे पक्ष को कल्पना के द्वारा देखने की कोशिश करता है और उस दूसरे पक्ष को देखने के बाद यथार्थ को समग्रता में प्रस्तुत करने की कोशिश करता है। रचनाकार अनुभूत सत्य को शब्द देकर रचना करता है। सही है कि जो जैसा है, उसको ठीक उसी रूप में अभिव्यक्त करना यथार्थ है, किन्तु साहित्य में यथार्थ इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता; क्योंकि इससे विकृतियाँ आ जाएँगी। साहित्य में यथार्थ का अर्थ कोरा यथार्थ नहीं होता। रचना में रचनाकार की निजी दृष्टि, यथार्थ को पकड़ने की क्षमता, सृजनात्मक कौशल तथा उसकी वैचारिकता... सब समाहित रहती है।

कहा जा सकता है कि यथार्थ सत्य को अनावृत करने की एक प्रक्रिया है, जिसमें रचनाकार अपने वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समाजहित में सत्य प्रस्तुत करता है। इस क्रम में वह कुशलता का

---

[45] ग्रोवर, बी. एल., *आधुनिक भारत का इतिहास :एक नवीन मूल्यांकन*, पृष्ठ 276

[46] बन्धोपाध्याय, शेखर, *प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास*, पृष्ठ 227

विवेकपूर्वक उपयोग करता है और सत्य को शुचिता के आवरण में इस तरह रेखांकित करता है कि भावक असत्य के मर्म से बखूबी परिचित भी हो जाए; और साथ ही यथार्थ के नाम पर अनर्गल प्रलाप को सत्य जैसा महत्त्व भी न मिले; और न ही समाज में कुदृष्टि का प्रचार प्रसार हो। यथार्थ समग्र जीवन की वास्तविकता का अंकन है।

❖ यथार्थवाद के विभिन्न रूप

यथार्थ आधुनिक युग के साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। जीवन-सत्य से जुड़कर ही कोई साहित्य ग्राह्य होता है। उसके सामाजिक सरोकार का दायरा बढ़ता है। स्थापना के बाद यथार्थवाद को कई रूपों में विभाजित किया गया है–

1) प्राकृतिक यथार्थवाद
2) अति यथार्थवाद
3) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद
4) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद
5) ऐतिहासिक यथार्थवाद
6) आलोचनात्मक यथार्थवाद
7) समाजवादी यथार्थवाद
8) जादुई यथार्थवाद

➢ प्राकृतिक यथार्थवाद

प्राकृतिक यथार्थवाद दर्शन का एक शब्द है। इसके लिए अंग्रेजी में ‘Naturalism’ शब्द का व्यवहार होता है। प्राकृतिक यथार्थवाद, यथार्थ को फोटोग्राफिक शैली में चित्रित करने पर जोर देता है। इसमें लेखक अपनी निजी संवेदना एवं दृष्टि को महत्त्व दिए बिना ज्यों का त्यों तथ्य प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक यथार्थवाद यथार्थ को नग्न रूप में अभिव्यक्त करने का पक्षधर है। प्रो. सत्यकाम ने लिखा है कि “वह यथार्थ को दस्तावेज के रूप में दे देता है, जहाँ प्राकृतिक एवं जीवन-विषयक तथ्यों का, जिन्हें हम नंगी आँखों से देख सकते हैं और उँगलियों से छू सकते हैं, समस्त ब्योरों का वर्णन होता है।”[47] प्राकृतिक यथार्थवाद को

---

[47] सत्यकाम, *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द*, पृष्ठ 45

प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने का श्रेय पाश्चात्य रचनाकारों में फ्रांस के विख्यात उपन्यासकार एमिल जोला को जाता है। *'द एक्सपेरिमेंटल नोवेल'* शीर्षक अपने लम्बे निबन्ध में उन्होंने इस विषय पर गहराई से चिन्तन किया है और कला के सन्दर्भ में इसकी प्रकृति एवं स्वरूप का निर्धारण किया है। जोला के अतिरिक्त ला बेयर, गोगल, एप्सन आदि की रचनाओं में इस तरह की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इन रचनाकारों ने अपने समय के बुर्जुआ समाज-व्यवस्था के नंगे यथार्थ को पूरी तरह अनावृत किया है। शिवकुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक *यथार्थवाद* में प्रकृतिवाद के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "प्रकृतिवाद का विधेयात्मक पक्ष केवल वहाँ दिखाई पड़ता है, जहाँ बावजूद अपने चिन्तन की दुर्बल भूमिकाओं के, प्रकृतिवादी रचनाकारों ने अपने समय की बुर्जुआ-व्यवस्था के नंगेपन को उभारा है, उसकी तहे दिल से भर्त्सना की है, उसे मुलजिमों के कटघरे में खड़ा किया है।"[48]

कई आलोचक प्राकृतिक यथार्थ को यथार्थवाद से पृथक मानते हैं। सुभाष कुमार का मानना है कि "प्रकृतवाद यथातथ्य और वास्तविक का मात्र फोटोग्राफी चित्रण करता है, अतः यह यथार्थवाद से बिल्कुल अलग है। हाँ यथार्थवाद शिल्प के स्तर पर प्रकृतिवादी पद्धति का उपयोग अवश्य करता है। लेकिन प्रकृतवाद यथातथ्य और वास्तविक अंकन को ही लक्ष्य बना लेता है, जबकि यथार्थवाद उस अंकन के अभिव्यक्ति का माध्यम भर है और भूत-वर्तमान-भविष्य के सारे आसंगों से होकर उसका कथ्य प्रकृतवाद से बहुत आगे निकल जाता है।'[49] शिवकुमार मिश्र ने भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि "वस्तुतः मनुष्य के प्रति एक जीवनशास्त्रीय (बायोलॉजिकल) दृष्टिकोण अपनाने के कारण ही प्रकृतिवादी लेखक के

---

[48] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 92

[49] कुमार, सुवास, *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम*, पृष्ठ 29

लिए मनुष्य की स्वतन्त्रता, इच्छा जैसी किसी बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।"[50]

स्पष्ट है की प्रकृतवाद मानव स्वभाव और उसकी नियति को वंशानुक्रम और वातावरण के आधार पर निर्मित मानता है। वह मनुष्य को प्रकृति का समीपी मानकर उसमें आगे प्रवृत्ति के दर्शन कर, उसके नैतिक आचरण और विवेक को निरर्थक सिद्ध करता है। वस्तुतः प्रकृतवाद की प्रवृति यथार्थवाद से सर्वथा भिन्न है। इसलिए उसे यथार्थवाद से पृथक करके देखा जाता है। यथार्थवाद में रचनाकार की दृष्टि भी समाहित रहती है, क्योंकि इसके बिना साहित्य सर्जना सम्भव नहीं है। जब तक लेखक की संवेदना रचना कर उनके साथ नहीं जुड़ेगी, तब तक साहित्य की समाजिक सत्ता निर्मित नहीं हो पाएगी।

- **अतियथार्थवाद**

अतियथार्थवाद का आरम्भ फ्रांस में हुआ। अंग्रेजी में इसके लिए 'सुर-रियलिज्म' शब्द का प्रयोग किया जाता है। आंद्रे ब्रेता अतियथार्थवादी आन्दोलन के प्रणेता थे। उन्होंने सर्वप्रथम अतियथार्थवादी आन्दोलन के उद्देश्य और सिद्धान्तों को अपने दो घोषणा-पत्रों में स्पष्ट किया। अतियथार्थवाद की उत्पत्ति स्वच्छन्दवादी विरोध की परिणति से हुई। इसके विकास में प्रथम विश्व युद्ध के बाद की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा। अजब सिंह ने अतियथार्थवाद की विशेषताओं पर दृष्टि डालते हुए लिखा है कि "सहजानुभूति के प्रति तीव्र आस्था, विवेक के प्रति आशंका, व्यक्तिवाद के प्रति झुकाव, आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति, अचेतन मनःस्थिति का अंकन, सिर्फ विधान के प्रति विमुखता अतियथार्थवाद का प्रमुख वैशिष्ट्य है।"[51] अतियथार्थवाद को परिभाषित करते हुए त्रिभुवन सिंह ने लिखा है कि "साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यन्त ही नग्न रूप धारण कर लेती है, तो उसे

---

[50] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 87

[51] सिंह, (डॉ.) अजब, *यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन*, पृष्ठ 25

अतियथार्थवाद कहते हैं।"[52]

वास्तव में अतियथार्थवाद में समाज के उचित सत्य को बिना किसी आवरण के ही प्रकट कर दिया जाता है। नैतिकता यहाँ कोई महत्त्व नहीं रखती, इसलिए निषिद्ध सत्य को प्रकट करने में रचनाकार को कोई झिझक नहीं होती। इसमें समाज के प्रति आस्था या विश्वास दिखाई नहीं पड़ता। अतियथार्थवाद में अच्छे और बुरे का भेद किए बिना तथ्य को ज्यों का त्यों प्रकट कर दिया जाता है। इसमें चित्रित यथार्थ पूरी तरह से कल्पना प्रसूत होता है। इसमें स्वप्न और अचेतन मन की प्रमुखता रहती है। रचनाकार अपनी रचनाओं में जिस संसार के सत्य को प्रकट करता है, वह स्वप्न में देखे गए संसार की तस्वीर होती है। यहाँ सामाजिक विद्रोही भी भौतिक धरातल पर न होकर मानसिक धरातल तक ही सीमित रहता है। अतियथार्थवाद को यथार्थवाद से पृथक करते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि "अतियथार्थवाद के नाम से कला एवं साहित्य रचना को प्रभावित करने वाला एक अन्य आन्दोलन भी इस बीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ, जो आज पृष्ठभूमि में चला गया है। किन्तु अपने उद्भव काल में उसने अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकारों को अपनी ओर आकर्षित किया था। मूलतः अन्तश्चेतना से सम्बन्धित होने के कारण अतियथार्थवाद का भी वैज्ञानिक और वस्तुगत सत्य पर आधारित 'यथार्थवाद' से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सब या तो खण्ड यथार्थ-दृष्टि के प्रतिनिधि आन्दोलन या प्रवृतियाँ हैं या इनमें वस्तुगत यथार्थ को विरूप करने का प्रयास किया गया है।"[53]

देखा जाए तो अतियथार्थवाद समाज के सही एवं संतुलित विकास में एक बाधक तत्त्व है। सुवास कुमार ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "जिसने (अतियथार्थवाद) चेतन वास्तविक जगत की बजाय स्वप्न जगत को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया। इस तरह अतियथार्थवाद हमें भौतिक

---

[52] सिंह, त्रिभुवन (सं.), *साहित्यिक निबन्ध,* पृष्ठ 31

[53] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 51

जगत के तथ्यात्मक वास्तविकताओं से काटकर दूर ले जा रहा था।"[54] सुवास कुमार के अनुसार इस प्रकार का यथार्थ-चित्रण किसी भी तरह से समाज के हित में नहीं था, इसलिए इस प्रकार के यथार्थ अंकन का पुरजोर विरोध हुआ।

स्पष्ट है कि अतियथार्थवाद की कोई सार्थक उपलब्धि नहीं दिखाई पड़ती। जिस यथार्थ-वर्णन में तथ्यात्मक और जीवन की वास्तविकता का अन्तर नहीं रहता, वह यथार्थ सिर्फ भ्रम पैदा कर सकता है। यथार्थ कोरे सत्य के प्रदर्शन की दृष्टि मात्र नहीं है, वह समाज और मनुष्य के सम्बन्धों की विवेचना करता है। समाज और व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक सम्बन्धों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। हिन्दी की नकेनवादी काव्यधारा कुछ विचारकों की दृष्टि में अतियथार्थवाद से प्रभावित दिखती है।

➢ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

आदर्श की ओर उन्मुख यथार्थ को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है। इसमें यथार्थ के साथ-साथ आदर्श भी समाहित रहता है। आदर्श नहीं होने के बावजूद, इसमें जीवन-सत्य का सम्पूर्ण चित्र उकेरा जाता है। यहाँ आदर्श व्यक्ति को दिशा निर्देशित करता है। विषम परिस्थितियों में यह हताश और निराश व्यक्ति के अन्दर आशा और विश्वास का संचार कर समाज के सही विकास में अपनी भूमिका निभाता है। आशा और विश्वास मानव के लिए वह तत्त्व है जिसके द्वारा वह बड़ी से बड़ी लड़ाई जीतने का साहस कर पाता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद साहित्य में साकारात्मक दृष्टि के उन्मेष में सहायक होता है। यहाँ पात्रों के कुत्सित पक्षों का आदर्श के माध्यम से शुद्धिकरण किया जाता है। प्रारम्भ में पात्र अपनी चारित्रिक खामियों के कारण समाज और परिवार द्वारा निष्काषित होकर प्रायश्चित करते हैं, तत्पश्चात उनका व्यक्तित्व और कृतित्व निखर कर समाज के लिए एक उदाहरण बन जाता है। यह सामान्य-सी बात है कि कोई व्यक्ति सर्वथा दोषमुक्त नहीं होता, मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हुए भी दुर्बलताओं का शिकार हो जाता है। यह उसका दोष नहीं, बल्कि उसका स्वाभाविक चरित्र है। यही स्वाभाविकता उसे मनुष्य बनाती है और देवों से

---

[54] कुमार, सुवास, *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम*, पृष्ठ 19

अलग करती है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में भी व्यक्ति के चरित्र की पुनर्रचना होती है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचनाकार अपनी रचनाओं में सामाजिक विसंगतियाँ को उभार कर उससे उबरने का समाधान प्रस्तुत करता है। इसमें आदर्श और यथार्थ का संतुलित समन्वय होता है। हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासकार ने सर्वप्रथम आदर्शोन्मुख यथार्थवाद शब्द का प्रयोग किया, जिसके बारे में पूर्व में चर्चा हो चुकी। त्रिभुवन सिंह ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के सन्दर्भ में लिखा है कि 'आदर्शोन्मुख यथार्थ मानव की दयनीय एवं कुरूपता से भरे विषम परिस्थितियों की वास्तविक कठोरता में चमक जगाने वाला वह काल्पनिक आलोक है, जिसके द्वारा जीवन से निराश, परिस्थितियों की मार से घबराए हुए तथा रास्ते में हताश मानव के अन्दर आशा और विश्वास का संचार हो जाता है।'[55] उनके अनुसार आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एक काल्पनिक प्रकाश है, जिसके सहारे व्यक्ति कुरूप एवं वीभत्स वास्तविकताओं को आशावादी नजरिए से देखता है और आकाश नहीं होता।

➢ मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पाश्चात्य विचारक फ्राइड, एल्डर के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें मानव-मन के आन्तरिक सत्य को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक ढंग से मानव के मन में छिपे हुए गूढ़ रहस्य को अनावृत करता है। इसकी दृष्टि वस्तु केन्द्रित न होकर व्यक्ति केन्द्रित होती है। इस सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि "मनोविश्लेषणवादी का सम्बन्ध वस्तु-जगत के यथार्थ से ना होकर व्यक्ति-मन के यथार्थ से होता है और उसकी दृष्टि व्यक्ति पर दृष्टि होती है, वस्तुपरक नहीं।"[56] वस्तुपरक दृष्टि न होने के कारण आरम्भ में यथार्थ के इस रूप की काफी अवहेलना हुई। इसे प्रकृतवाद और अतियथार्थवाद की तरह यथार्थवादी आन्दोलन से पृथक कर दिया गया। शिवकुमार मिश्र ने इसे नकारते हुए लिखा है कि "वह (मनोवैज्ञानिक

---

[55] सिंह, त्रिभुवन, *हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद*, पृष्ठ 235

[56] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 26

यथार्थवादी रचनाकार) तो मनुष्य मन के कथित पर खास बिन्दुओं और खास प्रवृत्तियों को ही, जो उसकी अपनी विचारधारा के चौखट में फिट बैठती है, अपने अध्ययन का विषय बनाता है। व्यक्ति की निजता को उसके सामाजिक सन्दर्भ में ही पर की जा सकती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र अध्ययन उसके समाजिक सन्दर्भ से काट कर नहीं किया जा सकता। मनोविश्लेषणवादी इस तथ्य को नजर-अंदाज कर जाता है।"[57] शिवकुमार मिश्र के इस कथन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद वैयक्तिकता को महत्त्व देती है। सामाजिक सन्दर्भ यहाँ गौण हो जाता है। उनके अनुसार साहित्य का अभिप्रेत हमेशा सामाजिक प्राणी रहा है इसलिए उसकी अवहेलना कर व्यक्ति के संकुचित यथार्थ को चित्रित करना एकांगी दृष्टि का परिचायक है। यथार्थ के इस रूप को कई हिन्दी रचनाकारों ने अपनाया आगे इलाचन्द्र जोशी आदि के साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का अंकन मिलता है। इन रचनाकारों ने मनुष्य की अतृप्त भावनाओं तथा कुण्ठाओं के चित्र रखो अपना विषय बनाया है।

➢ ऐतिहासिक यथार्थवाद

इतिहास की घटनाओं पर आधारित होने के कारण इसे ऐतिहासिक यथार्थवाद का नाम दिया गया है। इसमें इतिहास की घटना या व्यक्ति को आधार बनाकर सृजन किया जाता है। इस प्रकार के यथार्थ वर्णन में रचनाकार को ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए रचना सृजन करना होता है। ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने पर ऐतिहासिक यथार्थ की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है और रचनाकार युगीन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में असफल हो जाता है। किन्तु कुशल ऐतिहासिक यथार्थवादी रचनाकार इस शक्ति का उपयोग कर यथार्थ को बिना किसी ऐतिहासिक परिवर्तन के संप्रेषणीय और युगानुकुल बना देता है। जैसे गोपाल सिंह 'नेपाली' के समकालीन कवि रामधारी सिंह दिनकर ने युगीन परिस्थिति को *कुरुक्षेत्र* एवं *रश्मिरथी* में अभिव्यक्त किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपन्यासों के सन्दर्भ में ऐतिहासिक यथार्थवाद के चित्रण में अपनाई जाने वाली सावधानियों की ओर इशारा किया है कि 'किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर

---

[57] वही, पृष्ठ 26

के सामने हुक्का रखा जाएगा, गुप्तकाल में गुलाबी और फिरोजी रंग की साड़ियाँ, मेज पर गुलदस्ते झाड़फानूस लगाए जाएँगे। सभा के बीच खड़े होकर व्याख्यान दिए जाएँगे और उन पर करतल ध्वनि होगी, बात-बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द तथा सार्वजनीन कार्यों में भाग लेना, ऐसे फिकरे पाए जाएँगे तो काफी हँसने वाले, नाक-भौं सिकुड़ने वाले मिलेंगे।'[58] शुक्लजी का आशय यही है कि ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण में यदि रचनाकार युगीन स्थिति और प्रवृत्ति का ध्यान नहीं रखेगा तो कृति निष्प्रभ हो जाएगी। त्रिभुवन सिंह ने ऐतिहासिक यथार्थवाद के एक अन्य पहलू की ओर ध्यान ले जाने की कोशिश की कि "ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्दर बीते हुए कल की सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण उपस्थित किया जाता है। परन्तु इतिहास और ऐतिहासिक यथार्थवाद एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किए गए शब्द नहीं है, बल्कि दोनों में अन्तर होता है। इतिहास में तिथियों घटनाओं तथा परिणाम का ठीक-ठीक वर्णन उपस्थित रहता है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्तर्गत स्थितियों और घटनाओं की यथार्थता पर अधिक जोर नहीं दिया जाता, बल्कि उससे अधिक उस समय की सामाजिक एवं राष्ट्रीय तथा धार्मिक परिस्थितियों को उभार कर रखने के प्रति आग्रह दिखलाया जाता है।"[59] कई बार साहित्य की रचना का उद्देश्य इतिहास को याद करना नहीं होता, युगीन यथार्थ को इतिहास में आरोपित कर प्रस्तुत करना होता है, इसलिए इसमें तिथियों घटनाओं और परिणाम के बारे में लेखक सजग रहने के बावजूद उसमें फेरबदल करते रहता है। हाँ, यह बात सत्य है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद में यथातथ्य वर्णन के प्रति आग्रह भले कम हो समसामायिक परिवेश, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन और बोल-चाल के प्रति आग्रह कम होने से इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाएगी।

➢ आलोचनात्मक यथार्थवाद

प्रकृतवाद की तरह आलोचनात्मक यथार्थवाद का सम्बन्ध दर्शन से है। परन्तु दर्शन-शास्त्र

---

[58] शुक्ल, रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृष्ठ, 239

[59] सिंह, त्रिभुवन, *हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद*, पृष्ठ 68

और साहित्य-शास्त्र में व्यवहार किया जाने वाला आलोचनात्मक यथार्थवाद में अन्तर होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में सात अमेरिकी दार्शनिकों ने संयुक्त प्रयास से *Critical Realism* नामक पुस्तक प्रकाशित किया। जिसमें उन्होंने आलोचनात्मक यथार्थवाद को यथार्थवाद के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। आलोचनात्मक यथार्थवाद को अधिकतर उपन्यास साहित्य से जोड़कर देखा जाता है। वह यथार्थ का एक प्रमुख रूप है। प्रतिष्ठित विद्वान अन्सर्ट फिशर जहाँ इसे स्वच्छन्दतावाद का आरम्भिक चरण मानकर, इसमें रोमांटिक किस्म की प्रतिक्रियाएँ देखते हैं, वहीं मार्क्सवादी रचनाकार इसे 'बुर्जुआ यथार्थवाद' से सम्बोधित करते हैं। पूँजीवादी समाज के शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार आदि विकृतियों के प्रति व्यंग और आलोचना होने के कारण इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद से अभिहित किया गया। इसमें सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों के प्रति रचनाकार का आलोचनात्मक दृष्टिकोण रहता है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों ने सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को गहराई से परखते हुए बुर्जुआ सोच और व्यवस्था की आलोचनात्मक ढंग से पड़ताल की है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों में पूँजीवादी समाज-व्यवस्था अपने मौलिक रूप में चित्रित हुआ है। वर्तमान व्यवस्था के मानवीय रूप और खोखले आदर्श के प्रति अनास्था, विरोध, विद्रोह और अस्वीकार आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों की केन्द्रीय विशेषता थी। जॉर्ज लुकाच में अपनी कृति *'Meaning of Contemprory Realism'* मैं आलोचनात्मक यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद के सन्धि-स्थल के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रो. सत्यकाम ने आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्राकृतिक यथार्थवाद के अन्तर की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "आलोचनात्मक यथार्थवाद, यथार्थवाद का वह रूप है, जो इन्द्रियग्राह्य बाधा को आधार मानकर व्यक्ति और समाज की वास्तविकताओं का उद्घाटन और विश्लेषण सौन्दर्यशास्त्रीय अनुभवों के रूप में करता है। वह जीवन की सचाइयों का तटस्थ अवलोकन भी करता है, परन्तु 'प्रकृतवाद' की तरह अपने को इतने ही तक सीमित नहीं कर लेता। वह केवल समाज और व्यक्ति के जीवन के निम्न, ऋणात्मक, निन्दनीय और गर्हित पक्षों को ही अपने चित्रण का विषय नहीं बनाता, वरन् जीवन के उज्ज्वल और उद्घात

पक्षों पर भी बल देता है। उसकी दृष्टि और पद्धति आलोचनात्मक होती है तथा वह केवल सतह पर तैरते यथार्थ का चित्र न कर उसकी गहराइयों में प्रवेश करता है और यथार्थ की भीतरी परतों को भेदकर समाजिक सत्य का उद्घाटन करता है।"[60] जबकि सुवास कुमार आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों के बारे में राय देते हैं कि पूँजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों को उजागर करने की दृष्टि से आलोचनात्मक यथार्थवाद बड़ा ही कारगर साबित हुआ है। सुवास कुमार ने यह भी लिखा है कि 'आलोचनात्मक यथार्थवाद ने प्रकृतिवाद की सीमाओं को अच्छी तरह प्रकट कर दिया, अभिजात्य साहित्य-दृष्टि को बेनकाब करते हुए, उसके रूपवादी खोखलेपन की जगह जनपक्षधरता और सामाजिक प्रतिबद्धता को स्थापित किया।'[61]

आलोचनात्मक यथार्थवाद में यथार्थवाद के रचनात्मक विकास में भले ही महती भूमिका अदा की हो, परन्तु इसमें वैज्ञानिक-दृष्टि का सर्वथा अभाव दिखता है। वैज्ञानिक-दृष्टि के अभाव में ये रचनाकार न तो पूँजीवाद के घिनौने दमनकारी षड्यन्त्र को समझ सके, न एकजुट होकर मानव विरोधी पूँजीवादी शक्तियों को पूरी तरह धराशायी कर सकने में समर्थ हुए। शिवकुमार मिश्र के अनुसार "पूँजीवाद की असंगतियाँ तथा मानवीय हरकतों से विक्षुब्ध लेखक चूँकि भावुक और संवेदनशील थे, अतः वह पूँजीवाद के इस रचनात्मक चरित्र को नहीं देख सके। इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव ही इसका मूलवर्ती कारण है, जिसके तहत न केवल उन्हें जीवन भर संत्रास तथा तनाव में जीना पड़ा, अपनी कला सर्जना की बलि भी चढ़ानी पड़ी।"[62] आलोचक ने जिसे रचनात्मक चरित्र कहा है, वह पूँजीवाद की स्वार्थ प्रेरित दमनकारी प्रवृत्ति है। बच्चन सिंह ने आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमा बताते हुए लिखा है कि "आलोचनात्मक यथार्थवाद युगीन जीवन के अन्तर्विरोधों को

---

[60] सत्यकाम, *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द*, पृष्ठ 7

[61] कुमार, सुवास, *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम*, पृष्ठ 30

[62] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, पृष्ठ 60

आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करता है, किन्तु उनमें निहित किसी रचनात्मक संभावना को संकेतित नहीं करता।"[63] अतः आलोचनात्मक यथार्थवाद के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि भले ही आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव हो किन्तु युगीन यथार्थ को संवेदनशीलता, निष्ठा और सचाई के साथ चित्रित करने में यह पूरी तरह समर्थ है। इसकी जनोन्मुखी भावना इसके यथार्थ चेतना को सार्थक बनाती है। हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील कवि के साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद का दर्शन किया जा सकता है।

- **समाजवादी यथार्थवाद**

'मैक्सिम गोर्की' समाजवादी यथार्थवाद के पुरोधा को माना जाता है। सन् 1934 में कोई पहली कांग्रेस बैठक में उन्होंने इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट किया था। समाजवादी यथार्थवाद के मूल में समाजवाद का चिन्तन है, जो पूँजीवादी समाज-व्यवस्था की अराजकता को खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध है। समाजवादी यथार्थवाद पूँजीवादी संस्कृति या बुर्जुआ संस्कृति का विरोध करता है। और उसके स्थान पर आमजन को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है। वह समाज में व्याप्त शोषण के मूल में पूँजीवादी समाज-व्यवस्था को ही देखता है। बुर्जुआ संस्कृति पूँजी पोषित संस्कृति है। जिसमें सर्वहारा वर्ग हो पूँजी की ताकत से दबाया और कुचला जाता है। समाजवाद का मुख्य ध्येय पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के विरुद्ध समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना कर वर्ग संघर्ष को समाप्त करना है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था की विसंगतियों से आक्रान्त समाज के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए रचनाकार क्रान्ति को महत्त्व देते हैं। समाजवादी यथार्थ के केन्द में मार्क्स, एंगल्स और लेनिन द्वारा प्रतिष्ठित वैज्ञानिक समाजवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विकासवादी सिद्धान्त है। शिवकुमार मिश्र ने समाजवादी यथार्थ को यथार्थवाद की नई मंजिल मानते हुए लिखा है कि "समाजवादी यथार्थवाद यथार्थवादी कला-आन्दोलन के विकास की नव्यतम मंजिल है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था की विरूपता

---

[63] सिंह, बच्चन, *आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द*, पृष्ठ 24

से आक्रांत, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अन्तर्मन से धिक्कारने के बावजूद भविष्य की रचनात्मक शक्तियों को देख पाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि-असमर्थता के कारण ही, जो पूँजीवादी-व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए एक नए और मंगलमय भविष्य को उदघाटित कर सके, समाजवादी समाज की स्थापना के साथ ही, एक नए प्रकार की यथार्थ-दृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गई। इस नई यथार्थ-दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उनके प्रस्तुतकर्ताओं ने दावा किया। वह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों की एकांगी तथा अपूर्ण यथार्थ-दृष्टि की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी सम्पूर्णता में देखने और प्रस्तुत करने वाली है, वरन् वह एक रचनात्मक दृष्टि भी है, जिससे भविष्य के नए और यथार्थवादी कला सृजन की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ भी संलग्न हैं।"[64] शिवकुमार मिश्र के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था की अमानवीयता से आक्रांत व्यक्ति और समाज के यथार्थ को निर्मलता से उभारने के लिए एक भविष्योन्मुख और रचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता उस युग की महती आवश्यकता बनी हुई थी। जनविरोधी पूँजीवादी व्यवस्था को धाराशायी करने के लिए क्रान्ति की जरूरत थी। इस जरूरत को समाजवादी यथार्थवादी रचनाकारों ने पूरा किया। वास्तव में समाजवादी यथार्थवादी आलोचनात्मक यथार्थ का युगानुकुल विकास है, इसमें आलोचनात्मक यथार्थ के रोमानी आवेग के स्थान पर आक्रामकता है। इसमें व्यक्ति और समाज के अपूर्ण और एकांगी यथार्थ को समग्रता में देखा जाता है। अजब सिंह ने समाजवादी यथार्थवाद के बारे में लिखा है कि "समाजवादी यथार्थवाद को लेखक संसार के परिवर्तन की सम्पूर्णता में देखते हैं। समाजवादी यथार्थवाद संघर्ष का परिणाम है। सचाई के लिए हर समाज में हमेशा संघर्ष करना होता है। केवल संघर्ष के रूप बदल जाते हैं। यथार्थ संघर्ष के माध्यम से ही समाजवादी यथार्थवादी लेखक अपना रास्ता बनाता है। इसीलिए समाजवादी यथार्थवादी साहित्यकार के पास कहने,

---

[64] मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद,* पृष्ठ 66

सुनने एवं संवाद करने की एक शैली होती है।”[65] स्पष्ट है कि अजब सिंह ने समाजवादी यथार्थवाद को संप्रेषण की एक सार्थक शैली माना है। उनके अनुसार समाज में नवीन उपलब्धियों के लिए संघर्ष अनिवार्य होता है और समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार इसी संघर्ष का हिस्सा बनकर समाज-व्यवस्था की बुराइयों पर प्रहार कर एक नए जन सापेक्ष परिवेश के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध रहता है। समाज का सम्पूर्ण दुख-सुख, दर्द-राहत, आशा-निराशा, उत्थान-पतन को इसमें अन्तर्निहित देखते हुए रेखा वसंत पाटिल ने लिखा है कि “समाजवादी यथार्थ में लेखक का उद्देश्य समाज की यथार्थ स्थिति का यथार्थ चित्रण करना होता है। यह समाज की उन जटिलताओं और विषमताओं को भी पकड़ता है जिनके कारण वर्ग-संघर्ष जन्म लेता है। इसमें सम्पूर्ण समाज का दुख-सुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन रहता है।”[66] समाजवादी यथार्थवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें भविष्य का पूर्वानुमान किया जाता है। वह वस्तुगत यथार्थ को इतिहास के परिपेक्ष्य में पूरी व्यापकता के साथ देख कर समझ कर, आसन्न भविष्य की रूपरेखा खींच देता है। समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार का आग्रह वस्तुगत यथार्थ को केवल सतही तौर पर चित्रित करना नहीं होता, बल्कि वह यथार्थ के रेशे-रेशे को पुकारता हुआ एक बेहतर समाज की परिकल्पना को मूर्त्त करता है। उस भविष्य-दृष्टि को सामने लाता है, जो आशा और आस्थावादी मूल्यों को अपने में समेटे हुए हैं।

स्पष्ट है कि समाजवादी यथार्थवाद अन्य यथार्थवाद की तुलना में जनता के सबसे सन्निकट है। इसका मूल अभिप्रेत पूँजीवादी शक्ति से आक्रांत जनता को उनकी पीड़ा से मुक्ति दिलवाना है। समाजवादी यथार्थवाद ने वर्तमान शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था में बदलाव की मांग कर समाज में परिवर्तन लाने में कारगर भूमिका निभाई है। समाजवादी यथार्थवाद में एक नए समतामूलक समाज की आकांक्षा निहित होती है। भविष्य की आशा संजोए समाजवादी यथार्थवाद जनता के हित के लिए पूरी तरह से समर्पित दिखाई देता है।

---

[65] सिंह, (डॉ.) अजब, *यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन*, पृष्ठ 34

[66] पाटिल, रेखा वसन्त, *समान्तर कहानी में यथार्थबोध*, पृष्ठ 133

हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा समाजवादी यथार्थ की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। गोपाल सिंह 'नेपाली' की बहुत सारी रचनाएँ समाजवादी यथार्थ के अन्तर्गत देखी जा सकती हैं।

➢ जादुई यथार्थवाद

जादुई यथार्थवाद के लिए अंग्रेजी में 'Magic Realism' शब्द का प्रयोग किया जाता है। फ्रांज़ रोह ने बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में जर्मन चित्रकारों का विश्लेषण करते हुए इस शब्द का पहली बार प्रयोग किया। दक्षिण अमेरिका के कई उपन्यासकारों ने सन् 1950 से 1970 के मध्य ऐसे उपन्यासों का सृजन किया, जो अपने परम्परागत रूप में सर्वथा भिन्न थी। इन उपन्यासों में अतीत-वर्तमान, इतिहास-मिथक, यथार्थ-भ्रम, वास्तविकता-फैण्टसी, अभिजात संस्कृति-जन संस्कृति का कलात्मक सम्मिलन किया गया था। दिक्कत यह थी कि इस तरह के यथार्थ को यथार्थ के किस श्रेणी में रखा जाए, क्योंकि यथार्थ की प्रचलित श्रेणी इसके प्रतिकूल थी। ऐसी स्थिति में इस तरह के यथार्थ के लिए जादुई यथार्थ शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। जादुई यथार्थवाद जादुई सन्दर्भ का पर्याय नहीं है। जादुई यथार्थवाद के अन्तर्गत रचनाकार अपनी कला और फैंटेसी के माध्यम से ऐसे यथार्थ को व्यक्त करता है जो अलग, अनोखा, अद्भुत या विलक्षण है। जीवन की सचाइयों को इसमें मिथक और परिकथा के सहारे शब्दबद्ध किया जाता है। इस के सन्दर्भ में सुवास कुमार ने लिखा है कि "पुराने रिवाज और विश्वास तथा नवीन वैज्ञानिक तर्कवाद दोनों परस्पर एक-दूसरे पर हावी होते रहते हैं और इस प्रकार के सह-अस्तित्व में जादुई यथार्थवाद जन्म लेता है। जादुई यथार्थवाद में कृषक समुदाय, ग्राम-समाज अथवा कभी लोगों के जीवन से ग्रहण किया हुआ कथा का कच्चा माल होता है ऐसे सामुदायिक जीवन के मिथकों को चित्रित करने की एक जटिल पद्धति का नाम है, जादुई यथार्थवाद।"[67] वर्तमान समय में सम्पत्ति का असमान वितरण इतना बढ़ गया है कि एक ओर जहाँ कुछ लोग भयंकर अभाव में जी रहे हैं, वहीं

---

[67] कुमार, सुवास, *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम*, पृष्ठ 93

दूसरी ओर अरबों का घोटाला सामने आ रहा है। अमीरी और गरीबी के बीच की खाई इतनी गहरी होती जा रही है कि एक ओर किसान आत्महत्या कर रहा है, दूसरी ओर प्रबन्धक पूँजीपति बैंकों का पैसा मार कर देशान्तर चला जाता है। संचार माध्यमों के कारण बाजारवाद का वर्चस्व बढ़ रहा है, मॉल कल्चर बढ़ रहा है, ब्राण्ड कांशसनेस बढ़ रहा है। गाँव में जहाँ आज भी हाथ-रिक्शा, बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी जैसी सवारी हैं, वहीं शहरों में मोटरगाड़ी और हवाईजहाज। समाज में आज चतुर्दिक विलक्षणता दिखाई दे रही है। इसी कारण जादुई यथार्थवाद वर्तमान समय में चर्चा के केन्द में है। हिन्दी कवि मुक्तिबोध की रचनाओं को जादुई यथार्थवाद के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जादुई यथार्थवाद आज के जीवन के अनुकूल है। जब समाज में चारों ओर का परिवेश भयानक है, अविश्वास, अनास्था, भय, असुरक्षा आदि भावनाएँ बलवन्त होते जा रही हैं, तब जादुई यथार्थवाद की फैण्टेसी का सहारा लेकर एक रचनाकार यथार्थ को समग्रता में प्रस्तुत कर सकता है।

यथार्थवाद के उपर्युक्त सभी भेदों में आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद ही अधिक प्रचलित रहा है। ये दो रूप अधिकांश विद्वानों तथा समीक्षकों द्वारा स्वीकृत भी हुए हैं। यथार्थवाद के इन दोनों रूपों की कसौटी पर साहित्य की जमकर आलोचना हुई है। इन दोनों रूपों में भी समाजवादी यथार्थवाद ही सबसे अधिक प्रचलित और आलोचकों द्वारा स्वीकृत है। समाजवादी यथार्थवाद जहाँ समाजवादी दृष्टि सम्पन्न है, वही आलोचनात्मक यथार्थवाद इससे निरपेक्ष है। आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का भी अभाव मिलता है, साथ ही आलोचनात्मक यथार्थवाद में भविष्योन्मुखी-दृष्टि का भी अभाव दिखता है, जबकि समाजवाद में ये दोनों दृष्टियाँ सन्निहित हैं। समाजवादी यथार्थवाद में प्राकृतिक यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद की विशेषताएँ समाविष्ट रहती हैं।

यथार्थवाद की इन समीक्षाओं की कसौटी पर आगे के अध्यायों में गोपाल सिंह नेपाली की रचनाओं का विधिवत विवेचन सम्भव हो सकेगा।

दूसरा अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' का समय और साहित्य

2.1. जीवन परिचय

2.2. युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य

2.3. साहित्यिक काल की यात्रा

- 2.3.1. वैयक्तिक चेतना की काव्यधारा
- 2.3.2. प्रगतिवाद
- 2.3.3. प्रयोगशील कविता एवं प्रपद्यवाद
- 2.3.4. नई कविता

दूसरा अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' का समय और साहित्य

2.1. जीवन परिवेश

गोपाल सिंह 'नेपाली' का जन्म 11 अगस्त 1911 को बिहार के एक वर्तमान जिले पश्चिम चम्पारण के बेतिया में हुआ था। जन्माष्टमी के दिन जन्म होने के कारण इन्हें गोपाल नाम दिया गया। इनके पिता रेलबहादुर सिंह भारतीय सेना एक सैनिक थे। आगे चलकर सराहनीय सेवा तथा बहादुरी फलस्वरूप उनकी पदोन्नति 1/9 गोरखा रायफल्स के हवालदार मेजर के रूप में हुई। माता सरस्वती देवी भी कुमाऊं के एक क्षत्रिय सैनिक की पुत्री थीं। पिता की नौकरी के कारण इनकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा पेशावर में, अफगानिस्तान, देहरादून आदि अलग-अलग सैनिक केन्द्रों पर हुई। सन् 1919 में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब गोपाल सिंह 'नेपाली' की माँ अपने भाइयों के साथ वर्मा जा रही थीं तो रास्ते में बिछुड़ गईं और खो गईं। इस तरह 'नेपाली' मात्र आठ वर्ष की आयु में मातृसुख से वंचित हो गए। सन् 1923 में 'नेपाली' के पिता ने बेतिया के पास हरपुरवा बगहीं गाँव के टेकबहादुर सिंह की बहन से दूसरा विवाह किया और सन् 1924 में सेवानिवृत्त होकर बेतिया में बस गए। यहाँ वे बेतिया राज के सहायक मैनेजर मिस्टर ई. डब्लू. वाईल्ड के बंगले के प्रहरी बने और अपने परिवार के साथ राज-परिसर में स्थित

शीश-महल की निचली कोठरी में रहने लगे। यहाँ आने के बाद आगे की शिक्षा के लिए 'नेपाली' का नामांकन बेतिया राज उच्चविद्यालय में कराया गया। जहाँ उन्हें गुरु के रूप में महावीर सिंह 'वीरन' तथा मंगल प्रसाद पाण्डेय मिले। दोनों गुरुओं की साहित्य में गहरी रूचि थी। 'नेपाली' की प्रतिभा को देखते हुए दोनों गुरुओं ने उन्हें काव्य-सृजन के लिए सम्यक परामर्श दिया और प्रोत्साहित भी किया। डॉ. सतीश कुमार राय ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "वीरन जी के साहचर्य में 'नेपाली' की काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और 1929 ई. से ही वे काव्य-रचना करने लगे। उनकी पहली रचना 'भारत-गगन के जगमग-सितारे' बाल मासिक पत्रिका *'बालक'* के नवम्बर 1930 ई. के अंक में प्रकाशित हुई।... 1931 ई. में मोतिहारी से प्रकाशित *'विकाश'* पत्रिका के कई अंकों में इनकी बाल-कविताएँ प्रकाशित हुईं।"[1]

गोपाल सिंह 'नेपाली' को गणित में कमजोर होने के कारण तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के अनुसार दसवीं की परीक्षा नहीं देने दी गई। फलस्वरूप शिक्षा-व्यवस्था से उनका मन उचट गया। स्कूली पढाई छोड़कर वे साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य में संलग्न हो गए। सन् 1931 में 'नेपाली' पहली बार अखिल भारतीय स्तर के साहित्य सम्मेलन में सम्मिलित हुए, जहाँ उनकी मुकालात शिवपूजन सहाय, रामबृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह 'दिनकर' और बनारसी दास चतुर्वेदी से हुई। वहाँ से वापस बेतिया आकर 'नेपाली' ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर **'कविवासर'** नामक साहित्यिक संस्था की स्थापना की। इसी संस्था के साथ 'नेपाली' ने सन् 1932 में एक हस्तलिखित पत्रिका *'प्रभात'* तथा टाइप की हुई *'द मुरली'*

---

[1] राय, (डॉ.) सतीश कुमार, *गोपाल सिंह 'नेपाली'*, पृष्ठ 12

अंग्रेजी पत्रिका का सम्पादन किया।[2]

सन् 1932 में 'नेपाली' ने द्विवेदी-मेला में काव्य पाठ कर श्रोताओं का मन मोह लिया। इस आयोजन में उनकी मुलाकात प्रेमचन्द से हुई। प्रेमचन्द ने 'नेपाली' की कविता से प्रभावित होकर पूछा कि "बरखुरदार कविताई क्या माँ के पेट से सीख कर आए हो।"[3] इस आयोजन में उनकी मुकालात दुलारे लाल भार्गव से भी हुई, जिन्होंने 'नेपाली' को *सुधा* पत्रिका के सम्पादन विभाग में सहयोग के लिए बुला लिया। *सुधा* के सम्पादन-विभाग में 'नेपाली' की मुलाकात सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला से हुई। यहीं रहते हुए उन्होंने अपने काव्य-संग्रह *'पंक्षी'* को अन्तिम रूप प्रदान किया। हालाँकि *'पंक्षी'* से पहले *'उमंग'* का प्रकाशन हुआ। *'पंक्षी'* का प्रकाशन गंगा पुस्तकमाला लखनऊ से 144वें पुष्प के रूप में प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका निराला ने लिखी।

सन् 1934 में 'नेपाली' ऋषभचरण जैन के सम्पादन में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले विविध-विषय विभूषित सिनेमा प्रधान साप्ताहिक *'चित्रपट'* के सहायक सम्पादक बने। ऋषभचरण जैन के सौजन्य से इनका पहला काव्य-संग्रह *'उमंग'* अप्रैल 1934 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की भूमिका प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखी।[4]

सन् 1935 में 'नेपाली' ने *'रतलाम टाइम्स'* का सम्पादन का कार्यभार सम्भाला। बाद में इस पत्रिका का नाम *'पुण्यतिथि'* हो गया था। रतलाम में रहते हुए उन्होंने अपने अगले काव्य-संग्रह *'रागनी'* को आकर दिया, जिसका प्रकाशन युगान्तर प्रकाशन समिति, पटना द्वारा सन्

---

[2] राय, (डॉ.) सतीश कुमार, *गोपाल सिंह 'नेपाली'*, पृष्ठ 12-13

[3] वही, पृष्ठ 13

[4] वही, पृष्ठ 13

1935 में हुआ। लगभग ढाई वर्ष रतलाम में अपनी सेवा देने के बाद 'नेपाली' पटना से प्रकाशित पत्र *'योगी'* का संयुक्त सम्पादन ब्रजशंकर वर्मा के साथ मिलकर करने लगे। इसमें इनका बाबा बौड़मदास के छद्म नाम से लिखा गया *'गोलघर के मुण्डेर से'* शीर्षक स्तम्भ काफी लोकप्रिय हुआ।[5]

सन् 1939 में अठाईस वर्ष के उम्र में 'नेपाली' का विवाह नेपाल के राज पुरोहित पण्डित विक्रमराज की सुपुत्री मखना मइया (वीणा रानी) के साथ हुआ। विवाह पश्चात् 'नेपाली' अपनी पत्नी के साथ बेतिया में रहने लगे और बेतिया-राज के प्रेस में व्यवस्थापक के रूप में कार्य करने लगे। नेपाली के मित्र विमल राजस्थानी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि "1930 के आस-पास वे स्थायी रूप से बेतिया राज के निजी प्रेस के व्यवस्थापक पद पर आ गए और 1943 तक यहीं बने रहे। अपनी-बहुत मिलते-जुलते दो लोक-गगन भी नील, नयन भी नील, तन का दिया, प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रातभर, तुम कल्पना करो नवीन, कल्पना करो तथा उस पार कहीं बिजली चमकी होगी जो झलक उठा है मेरा भी आंगन आदि बहुप्रशंसित कविताएँ उन्होंने इसी बीच लिखी।"[6] बेतिया में रहते हुए उन्होंने *'नीलिमा'*, *'पंचमी'* एवं *'नवीन'* की कविताएँ लिखी।

प्रेस के व्यवस्थापक के रूप में उन्हें 60 रूपए तो मिलते थे, किन्तु उनका कुनबा इतना बड़ा था कि जैसे-तैसे जीवन-यापन कर रहे थे। रागनी की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "गरीबी बड़ी प्यारी चीज होती है। वह भी लड़कपन या बुढ़ापे में नहीं, भरी जवानी में। लड़कपन में यह संगिनी मिली, तो बाल-हठ कुण्ठित हो जाता है, बुढ़ापे में आई तो सर्द आहें जारी होती

---

[5] वही, पृष्ठ 13

[6] डॉ. बलराम (सं.), *गोपाल सिंह 'नेपाली' : जीवन और साहित्य*, पृष्ठ 130

हैं, पर कहीं यौवनकाल में मिल गई, तो भरे हुए सीने की कठोर परीक्षा रहती है। इसलिए मामला शीघ्र समाप्त नहीं होता। इसी राह के हम मुसाफिर हैं।"[7] प्रेस में काम करते हुए, उन पर भ्रष्टाचार का आरोप लगा और 40 रूपये का जुर्माना भी। इस मामले को स्वयं कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने बेतिया आकर निपटाया। सन् 1944 में कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' को बम्बई में आयोजित 'महाकवि कालिदास शताब्दी-महोत्सव' में शामिल होने के लिए पाँच सौ रूपये सहित विशेष निमन्त्रण मिला। महोत्सव में 'नेपाली' के काव्य-पाठ को सुनकर फिल्म निर्माता शशिधर मुखर्जी और निर्देशक पी. एल. सन्तोषी ने अपनी कम्पनी में उन्हें डेढ़ हजार मासिक वेतन पर गीतकार के रूप में अनुबन्ध पर रख लिया। 'नेपाली' के फ़िल्मी गीत भी काफी लोकप्रिय हुए। सन् 1945 में 'बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन' की ओर से 'नेपाली' को उनकी पहली फिल्म 'मजदूर' के गीत के लिए सर्वश्रेष्ठ गीतकार का अवार्ड दिया गया। सन् 1948 में 'नेपाली' ने **'हिमालय फिल्म्स'** नामक संस्था का निर्माण किया और 'नजराना', 'सनसनी', 'खुशबू' आदि कई प्रसिद्ध फ़िल्में बनाईं। उन्होंने दर्जनों फिल्मों में 300 से अधिक गीत लिखे। उनके फ़िल्मी गीतों में उनका सहज व गँवई कवि दिखता है। सन् 1950 में दिल्ली के एक कवि सम्मेलन में 'नेपाली' से मुलाकात के बाद प्रभाकर माचवे ने लिखा कि "'नेपाली' जी का बम्बईया फ़िल्मी संस्करण केवल ऊपर से ही हुआ था, वह अन्दर से अभी भी रतलाम वाले गँवई-भोले और भावुक कवि थे।"[8]

फिल्म जगत में जुड़ने के बाद सन् 1962 तक 'नेपाली' का काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका, किन्तु उनकी कविताएँ प्रायः *'धर्मयुग', 'हिन्दुस्तान', 'आगरा'* व *'ज्योत्स्ना'* आदि पत्र-

---

[7] नेपाली, गोपाल सिंह, *रागिनी*, स्वर-संधान

[8] नन्दन, नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली युगद्रष्टा कवि*, पृष्ठ 154 पर उद्धृत

पत्रिकाओं में छपती रही। फिल्म इण्डस्ट्री भी उन्हें लम्बे समय तक रास नहीं आई। उनकी संस्था फिल्म-निर्माण में सफलता हासिल नहीं कर पाई और वे आर्थिक रूप से जर्जर हो गए। अन्त समय में उन्होंने मायानगरी का मोह त्याग दिया। सन् 1959 में भारत-चीन युद्ध की सम्भावना देखते हुए वन मैन आर्मी की तरह घूम-घूम कर राष्ट्र को उद्बोधित करते रहे। इस दौर में उनका कविता-संग्रह *'हिमालय ने पुकारा'* प्रकाशित हुआ। 17 अप्रैल 1963 को 'नेपाली' का देहान्त भागलपुर प्लेटफार्म पर हृदयगति रुक जाने से हुआ।

2.2. युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य

गोपाल सिंह 'नेपाली' का जन्म एक ऐसे देश में हुआ था, जो अपनी मुक्ति के लिए लगातार संघर्ष कर रहा था। हालाँकि भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध संग्राम लगभग अंग्रेजी शासन के आरम्भ से ही होता रहा, '1857' में यह विद्रोह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। '1857' के विद्रोह के बाद उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में कई प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन आए, जिनसे लोगों में एक नई राष्ट्रीय एवं राजनीतिक चेतना विकसित हुई।[9] '1857' के विद्रोह के बाद अंग्रेजी शासकों ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' जोधपुर में अपनी नीतियों के कारण राजे-रजवाड़ों के खिलाफ थी, क्योंकि वह इन्हें जीतकर पूरे भारत पर अधिकार करना चाहती थी।'[10] इसलिए कम्पनी में जमींदारों, बिचौलियों, भारतीय व्यापारियों को अपने शासन का सामाजिक आधार बनाया। '1857' के विद्रोह के बाद डलहौजी की इस नीति में बदलाव कर अंग्रेजी शासकों ने भारतीय सामन्तों को अपने शासन का सामाजिक आधार बनाया और देशी रियासतों को बनाए रखने की नीति अपनाई। प्रतिनिधियों को प्रशासनिक दायित्व दिए गए तथा उन्हें

---

[9] शुक्ला, (सम्पा.) रामलखन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, पृष्ठ 526

[10] वही, पृष्ठ 256

सुरक्षा एवं सुविधा मुहैया करवाई। लेकिन इसके पीछे उद्देश्य था– जमींदारी और रैयतवारी भूमि-व्यवस्था अपनाकर भारत के आत्मनिर्भर ग्राम-व्यवस्था को पूरी तरह ध्वस्त करना।

यह सच है कि '1857' के सशस्त्र विद्रोह से पूर्व भी किसानों और मजदूरों ने बहुत सारे आन्दोलन किए, लेकिन उनका आधार क्षेत्रीय था, जिन की रंगत भी स्थानीय होती थी। 'इन आन्दोलनों को मोटे तौर पर तीन रूप में बाँटकर देखा जाता है– नागरिक विद्रोह, आदिवासी विद्रोह और किसान आन्दोलन।'[11] "ये स्थानीय विद्रोह आमतौर पर किसी खास मुद्दे और स्थानीय असन्तोष के कारण उपस्थित थे। हालाँकि इनका दायरा सीमित हुआ करता था, लेकिन इन विद्रोहों में सैकड़ों से लेकर हजारों तक सशस्त्र विद्रोही शामिल हुआ करते थे।"[12] इन आन्दोलनों के समानान्तर धार्मिक पुनरुत्थानवादी समाज-सुधार आन्दोलन चलाने वाले संगठन भी बने। इनमें नवजागरण की चेतना किसी न किसी रूप में मौजूद थी। राजा राममोहन राय ने 1828 में लिखा था, "मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि धर्म के वर्तमान ढाँचे ने हिन्दुओं को इस बुरी तरह जकड़ रखा है कि उनके राजनीतिक हितों के बारे में कुछ किया ही नहीं जा सकता। जाति-भेद और जातीय अभिमान ने उन्हें अनगिनत वर्गों और उपवर्गों में बाँट दिया है, जिससे उनमें देश-प्रेम की भावना ही पूरी तरह खत्म हो गई है, सैंकड़ों तरह के धार्मिक रीति-रिवाज, धार्मिक समारोहों और शुद्धीकरण के नियम ने उन्हें इस कदर बाँध रखा है कि वह कोई जोखिम का काम हाथ में लेने लायक रह ही नहीं गए हैं।... अब यह जरूरी हो गया है कि हिन्दू धर्म के स्वरूप में कुछ परिवर्तन लाए जाएँ।"[13] नवजागरण की इस चेतना के साथ नेपाली ने भी समाज में व्याप्त कुरूतियों पर आघात कर परिवर्तन का आह्वान किया और नवीन युग की कल्पना की|

---

[11] चन्द्र, बिपिन, *भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष*, पृष्ठ 10

[12] वही, पृष्ठ 10

[13] वही, पृष्ठ 46

नवजागरण काल की एक और बड़ी उपलब्धि ऐसे संगठनों की स्थापना थी, जिनका स्वरूप वर्गीय और धर्मनिरपेक्ष था। ‘कलकत्ता ट्रेड एसोसिएशन’ (1830), ‘बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स’ (1834), ‘लैण्ड होल्डर्स सोसाइटी’ (1838) और इण्डियन प्लांटर्स एसोसिएशन (1839) आदि इनमें प्रमुख थे।

सन् 1850 से 1870 के मध्य बहुत सारे ऐसे संगठन की स्थापना हुई, जो आमजन की समस्याओं को अखिल भारतीय स्तर पर राजनीतिक रूप से उठाने लगे। ऐसे संगठनों में ‘ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन’ (1851), ‘बॉम्बे एसोसिएशन’ (1825), लन्दन स्थित ‘इण्डिया एसोसिएशन’ की बम्बई शाखा (1869) आदि प्रमुख थे। ‘1857’ की क्रान्ति के बाद इन पर अंकुश अवश्य लगाया गया, लेकिन 1870 के बाद इस प्रकार के संगठनों की बाढ़ आ गई। इनमें ‘पूना सार्वजनिक सभा’ (1870), ‘इण्डियन एसोसिएशन’ (1876), ‘मद्रास महाजन सभा’ (1884), ‘डक्कन एजुकेशन सोसाइटी’ (1885) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन आन्दोलनों का चरित्र राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष था। इनके माध्यम से एक ओर भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों का असन्तोष व्यक्त हो रहा था, तो दूसरी ओर भारत की राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह भी व्यंजित हो रहा था। इस दौर के संगठनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को केवल अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों पर ही सीमित न रखकर उसे भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों के बीच व्यापकता प्रदान की। अतः उनके माध्यम से समूची भारतीय जनता का असन्तोष भी व्यक्त हो रहा था।

“दिसम्बर, 1983 में ‘इण्डियन एसोसिएशन’ के प्रयत्नों से इण्डियन नेशनल कांफ्रेंस का पहला सम्मेलन कोलकाता में हुआ। जिसमें विभिन्न क्षेत्रों से आए लोगों ने भाग लिया। यह सभी नेताओं को एक मंच पर लाने और संयुक्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय संगठन की स्थापना

का पहला कदम था।"[14] धीरे-धीरे इन संस्थाओं का चरित्र राष्ट्रीयता को धारण करने लगा|

इस संगठनों के द्वारा सन् 1885 तक आते-आते राष्ट्रीय आन्दोलन और अधिक शक्तिशाली हो गया। दादा भाई नौरोजी, रानाडे तथा सुन्दरनाथ बनर्जी, जैसे नेता एक देशव्यापी संगठन बनाने की आवश्यकता महसूस करने लगे। उदारवादी बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग से दिसम्बर, 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई।[15] हालाँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ाने के लिए नहीं, वरन् उसे कुण्ठ करने के उद्देश्य से हुई थी। सन् 1970 में हरबंश साहनी ने *भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और विकास* में लिखा है कि "भारतीयों का असन्तोष इस समय ऐसे चौराहे पर खड़ा था, जबकि वह राष्ट्रीय मुक्ति का वही रास्ता अपना सकता था, जिसे अमेरिका और इटली ने अपनाया था। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को इस रास्ते पर जाने से रोकने के लिए ब्रिटिश शासकों ने हस्तक्षेप करना जरूरी समझा और हस्तक्षेप करके इण्डियन नेशनल कांग्रेस को जन्म दिया।[16] स्पष्ट है यह संगठन राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वभाविक विकास का प्रणाम न होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में ब्रिटिश शासकों के हस्तक्षेप का परिणाम था। जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी स्वरूप पर अंकुश लगाना और कुछ शिक्षित तथा वफादार लोगों को राष्ट्रवादियों से अलग करके शासन-सत्ता का आधार मजबूत करना था।

धीरे-धीरे भारतीय राजनीति दो दलों में बंट गई-- नरम-दल और गरम-दल| इन दलों के विभाजन की विशेषता को रेखांकित करते हुए हरबंस साहनी ने लिखा है कि "उदारवादी सामाजिक समानता की माँग इस आधार पर करते थे कि वह ब्रिटिश सरकार की प्रजा हैं, लेकिन उग्रवादियों का कहना था कि सामाजिक समानता और राजनीतिक स्वतन्त्रता उनका

---

[14] शुक्ल, (सम्पा.) रामलखन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, पृष्ठ 477

[15] वही, पृष्ठ 477

[16] साहनी, हरबंश, *भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और विकास*

जन्म सिद्ध अधिकार है। उदारवादियों ने इंग्लैण्ड के निवासियों से अपील की और अपने विश्वास का आधार ब्रिटिश इतिहास और अंग्रेजी राजनीतिक विचारधारा को बनाया, लेकिन उग्रवादियों ने भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण की और धार्मिक देशभक्ति को बढ़ावा दिया।"[17]

यह सच है कि सन् 1907 से 1915 तक भारतीय राजनीति में नरम-दल वालों का प्रभाव अधिक रहा और राष्ट्रवादी अपनी गतिविधियों के कारण अधिकांश जेल में रहे। बंग-भंग आन्दोलन, स्वदेशी बायकाट आन्दोलन के साथ ही देश में किसान-मजदूर आन्दोलनों की बाढ़ के कारण कांग्रेस देश की राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से पूरी तरह कट गई। राष्ट्रवादियों ने देश के विभिन्न हिस्सों में साधारण जनता के बीच काम कर उनका विश्वास जीता। सन् 1915 तक आते-आते कांग्रेसियों को लगा की उनकी लोकप्रियता घटती जा रही है। इसलिए उन्होंने राष्ट्रवादियों को अपने अन्दर लाने की कोशिश की। सन् 1916 के लखनऊ अधिवेशन में पुनः राष्ट्रवादी शामिल हुए। इस अधिवेशन की में अध्यक्ष के रूप में तिलक के नेतृत्व में कांग्रेस और लीग के बीच समझौता।

सन् 1920-21 के बाद अखिल भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का वर्चस्व लगातार बढ़ने लगा अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद कांग्रेस राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व कर रही थी। गाँधी जी अपने असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को गति दे रहे थे। महात्मा गाँधी ने अपने असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के लिए हर शहर और गाँव में कांग्रेस की शाखाएँ खोलने का निर्णय लिया। इसी क्रम में वह 1917 में चम्पारण गए, जहाँ 'नेपाली' ने पहली बार गाँधी जी का दर्शन किया।

देश के किसानों, मजदूरों और मध्यवर्ग के व्यापक हिस्से में कुछ कर गुजरने की भावना दिनों-दिन बढ़ने लगी। फलस्वरूप कुछ हिस्सों में हिंसात्मक घटनाएँ भी घटी। इन

---

[17] शुक्ल, (सम्पा.) रामलखन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, पृष्ठ 418

परिस्थितियों को ध्यान में रखकर गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह पर बार-बार अंकुश लगाया। किसान और मजदूरों से आन्दोलन को वापस लेने की माँग की। स्थिति के गम्भीर होने पर 15 फरवरी 1922 के चौरा-चौरी काण्ड के बाद हर तरह के आन्दोलन बन्द कर देने का आदेश दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस करने के कारण गाँधीजी का तीव्र विरोध हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप पार्टी के अन्दर स्वराज पार्टी की स्थापना हुई। कुछ दिनों में स्वराज पार्टी अपनी नीतियों के कारण जनता से दूर हो गई। दूसरी तरफ सरदार पटेल के नेतृत्व में गाँधीजी ने बारदोली सत्याग्रह में शानदार सफलता हासिल की। सन् 1928 के अधिवेशन में गाँधी जी के समक्ष नेहरू जी और सुभाष चन्द्र बोस ने 'डोमिनियन-स्टेट' की माँग का विरोध किया। सन् 1929 के लाहौर अधिवेशन में नेहरू ने स्पष्ट किया कि 'हमारे लिए स्वाधीनता का माने है, ब्रिटिश आधिपत्य और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्ण स्वतन्त्रता।' अधिवेशन की कार्यवाही समाप्त होने पर 31 दिसम्बर, 1929 की आधी रात में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का झंडा फहराया गया। 26 जनवरी 1930 को सारे हिन्दुस्तान में स्वाधीनता दिवस मनाने का निर्णय लिया गया। राष्ट्रवादी एक ओर क्रान्तिकारी आन्दोलन और देश के विभिन्न भागों से उठने वाले किसान-मजदूर आन्दोलन को अब तक राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के साथ जोड़ चुके थे। दूसरी तरफ गाँधी के नेतृत्व में असहयोग का दूसरा रास्ता अपनाया हुआ था।

देश की स्थिति को देखते हुए, गाँधीजी और भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन के बीच 5 मार्च 1931 को एक समझौता हुआ, जिसे गाँधी-इरविन समझौता कहा जाता है। इस समझौते में सरकार की ओर से लार्ड इरविन इस बात पर सहमत हुए कि–

- हिंसात्मक अपराधियों के अतिरिक्त सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए जाएँगे।
- अपहरण की सम्पत्ति वापस कर दी जाएगी।
- विभिन्न प्रकार के जुर्मानों की वसूली को स्थगित कर दिया जाएगा।

- सरकारी सेवाओं से त्यागपत्र दे चुके भारतीयों के मसले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार-विमर्श किया जाएगा।
- समुद्रतट की एक निश्चित सीमा के भीतर नमक तैयार करने की अनुमति दी जाएगी।
- मदिरा, अफीम और विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सम्मुख शान्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की आज्ञा दी जाएगी।
- आपातकालीन अध्यादेशों को वापस ले लिया जाएगा।

वायसराय ने गाँधीजी की निम्न दो माँगे अस्वीकार कर दी–

- पुलिस ज्यादतियों की जाँच करायी जाए।
- भगत सिंह तथा उनके साथियों की फाँसी की सजा माफ कर दी जाए।

गाँधीजी ने आश्वासन दिया कि-

- सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जाएगा। तथा
- कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इस शर्त पर भाग लेगी कि सम्मेलन में संवैधानिक प्रश्नों के मुद्दे पर विचार करते समय परिसंघ, भारतीय उत्तरदायित्व तथा भारतीय हितों के संरक्षण एवं सुरक्षा के लिए अपरिहार्य मुद्दों पर विचार किया जाएगा। (इसके अन्तर्गत रक्षा, विदेशी मामले, अल्पंसख्यकों की स्थिति तथा भारत की वित्तीय साख जैसे मुद्दे शामिल होंगे।

गाँधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित किए जाने के निर्णय से निःसंदेह युवा भी निराश हो चुके थे। उन्होंने बड़ी तत्परता एवं गर्मजोशी से आन्दोलन में सहभागिता निभायी, किन्तु उन्हें निराशा ही हाथ लगी।

इसी बीच सरदार भगत सिंह, राजगुरु एवं सुखदेव को फाँसी दी गई थी। यद्यपि गाँधीजी ने इन्हें बचाने की कोशिश की थी, किन्तु भारतीय गाँधीजी से तीव्र नाराज थे। गाँधीजी से अपेक्षा थी कि वे समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। गाँधीजी को अपनी कराची यात्रा के

दौरान जनता के तीव्र रोष का सामना करना पड़ा। उनके खिलाफ प्रदर्शन किए गए तथा उन्हें काले झण्डे दिखाये गए। पंजाब नौजवान सभा ने भगत सिंह एवं उनके कामरेड साथियों को फाँसी की सजा से न बचा पाने के लिए गाँधीजी की तीव्र आलोचना की।

गाँधीजी 29 अगस्त, 1931 को दिल्ली समझौते के प्रावधान के अन्तर्गत द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लन्दन रवाना हुए। इस गोलमेज सम्मेलन से गाँधीजी को कुछ विशेष प्राप्त होने की उम्मीद नहीं थी, क्योंकि ब्रिटेन में चर्चिल के नेतृत्व में दक्षिण पन्थी खेमे ने भारत में और सुदृढ़ ब्रिटिश शासन की माँग की।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में मुख्यतया रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक एवं ब्रिटिश राजभक्तों के प्रतिनिधि थे, जिनका हर मोर्चे पर गाँधी जी को परास्त किया जाए।

मुसलमानों, ईसाईयों, आंग्ल-भारतीयों एवं दलितों आदि आपस में मिलकर 'अल्पसंख्यक गठजोड़' के रूप में संगठित हो गए और पृथक प्रतिनिधित्व की माँग प्रारम्भ करने लगे। ये सभी अल्पसंख्यकों के मुद्दे पर शीघ्र ही सम्मेलन में गतिरोध पैदा हो गया, किन्तु गाँधीजी ने साम्प्रदायिक आधार पर किसी भी संवैधानिक प्रस्ताव का अन्त तक विरोध किया।

सन् 1931 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः प्रारम्भ किए जाने की घोषणा की गई। इसके पश्चात भारत के वर्तमान वायसराय विलिंगडन ने 31 दिसम्बर, 1931 को गाँधीजी से मिलने से इंकार कर दिया और 4 जनवरी, 1932 को गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। प्रशासन को असीमित और मनमानी शक्तियाँ देने वाले अनेक अध्यादेश जारी किए गए तथा 'नागरिक-सैनिक कानून' की शुरुआत हो गई। सभी स्तरों पर कई राजनीतिक संगठनों को प्रतिबन्धित कर दिया गया, राजनीतिक कार्यकर्ताओं को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया गया, नागरिक अधिकारों को समाप्त कर दिया गया, सम्पत्तियाँ कुर्क कर ली गईं तथा गाँधीजी के आश्रमों पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया गया। अंग्रेजी सरकार के इस दमन का शिकार महिलाएँ भी हुईं। प्रेस के खिलाफ भी कार्रवाई की गई तथा राष्ट्रवादी

साहित्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।[18]

जनता ने बड़ी दिलेरी से इस दमन का मुकाबला किया। यद्यपि जनता असंगठित तथा अपरिपक्व थी, किन्तु उसकी प्रतिक्रिया व्यापक थी। इसी बीच राजनीतिक हालत को समझते हुए, गाँधीजी ने अप्रैल 1934 में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' वापस लेने का निर्णय लिया। इस निर्णय के परिणाम स्वरूप जनता में निराशा का भाव जगा, नेहरूजी उदास हुए और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस खुले मंच से गाँधीजी को असफल नेता बताने लगे। [19]

16 अगस्त, 1932 को ब्रिटेन के वर्तमान प्रधानमन्त्री ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' की घोषणा की। उपनिवेशवादी शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का एक और प्रमाण साम्प्रदायिक निर्णय था। जिसके अन्तर्गत–

- मुसलमानों, सिखों एवं यूरोपियों को पृथक साम्प्रदायिक मताधिकार प्रदान किया गया।
- आंग्ल-भारतीयों, भारतीय-ईसाइयों तथा स्त्रियों को भी पृथक साम्प्रदायिक मताधिकार प्रदान किया गया।
- प्रान्तीय विधानमण्डल में साम्प्रदायिक आधार पर स्थानों का वितरण किया गया।
- सभी प्रान्तों को विभिन्न सम्प्रदायों के निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया।
- अन्य शेष मतदाता, जिन्हें पृथक निर्वाचन क्षेत्रों में मताधिकार प्राप्त नहीं हो सका था, उन्हें सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान का अधिकार प्रदान किया गया।
- बम्बई प्रान्त में सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में से सात स्थान मराठों के लिए आरक्षित कर दिए गए।

---

[18] चन्द्र, बिपिन, *भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष,* पृष्ठ 226

[19] वही, पृष्ठ, 227

- विशेष निर्वाचन क्षेत्रों में दलित-जाति के मतदाताओं के लिए दोहरी व्यवस्था की गई। उन्हें सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों तथा विशेष निर्वाचन क्षेत्रों दोनों जगह मतदान का अधिकार दिया गया।
- सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में दलित जातियों के निर्वाचन का अधिकार बना रहा।
- दलित-जातियों के लिए विशेष निर्वाचन की यह व्यवस्था बीस वर्षों के लिए की गई।
- दलितों को अल्पसंख्यक के रूप में मान्यता दी गई।

साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा, दलितों को सामान्य हिन्दुओं से पृथक कर एक अल्पसंख्यक वर्ग के रूप मे मान्यता देने तथा पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान करने का सभी राष्ट्रवादियों ने तीव्र विरोध किया।

गाँधीजी ने इस निर्णय को राष्ट्रीय एकता एवं भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रहार के रूप में देखा। उनका मत था कि यह हिन्दुओं एवं दलित वर्ग दोनों के लिए खतरनाक है। उनका कहना था कि दलित वर्ग की सामाजिक हालत सुधारने के लिए इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गई है। एक बार यदि पिछड़े एवं दलित वर्ग को पृथक समुदाय का दर्जा प्रदान कर दिया गया, तो अश्पृश्यता को दूर करने का मुद्दा पिछड़ा जाएगा और हिन्दू समाज में सुधार की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाएगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि पृथक निर्वाचक मण्डल का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि यह अछूतों के सदैव अछूत बने रहने की बात सुनिश्चित करता है।

गाँधीजी ने माँग की कि दलित वर्ग के प्रतिनिधियों का निर्वाचन आत्म-निर्वाचन मण्डल के माध्यम से वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। तथापि उन्होंने दलित वर्ग के लिए बड़ी संख्या में सीटें आरक्षित करने की माँग का विरोध नहीं किया। अपनी माँगों को स्वीकार किए जाने के लिए 20 सितंबर, 1932 से गाँधी जी आमरण अनशन पर बैठ गए। कई राजनीतिज्ञों ने गाँधीजी के अनशन को राजनीतिक आन्दोलन की सही दिशा से भटकना कहा। इस बीच विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के नेता, जिनमें एम. सी. रजा,

मदनमोहन मालवीय तथा बी. आर. अम्बेडकर सम्मिलित थे, सक्रिय हो गए। अन्ततः एक समझौता हुआ, जिसे पूना समझौता या पूना-पैक्ट के नाम से जाना जाता है।

इस समझौते के अनुसार–

- दलित वर्ग के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल समाप्त कर दिया गया तथा व्यवस्थापिका सभा में अछूतों के स्थान हिन्दुओं के अन्तर्गत ही सुरक्षित रखे गए। लेकिन प्रान्तीय विधानमण्डलों में दलितों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या 47 से बढ़कर 147 कर दी गई।
- मद्रास में 30, बंगाल में 30, मध्य प्रान्त एवं संयुक्त प्रान्त में 20-20, बिहार एवं उड़ीसा में 18-18, बम्बई एवं सिन्ध में 15-15, पंजाब में 8 तथा असम में 7 स्थान दलितों के लिए सुरक्षित किए गए।
- केन्द्रीय विधानमण्डल में दलित वर्ग को प्रतिनिधित्व देने के लिए संयुक्त व्यवस्था को मान्यता दी गई।
- दलित वर्ग को सार्वजनिक सेवाओं तथा स्थानीय संस्थाओं में उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर उचित प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई।
- सरकार ने पूना समझौते को साम्प्रदायिक निर्णय का संशोधित रूप मानकर उसे स्वीकार कर लिया।

साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा भारतीयों को विभाजित करने तथा पूना पैक्ट के द्वारा हिन्दुओं से दलितों को पृथक करने की व्यवस्थाओं ने गाँधीजी को बुरी तरह आहत कर दिया था। फिर भी गाँधीजी ने पूना-समझौते के प्रावधानों का पूरी तरह पालन किए जाने का वचन दिया। अपने वचन को पूरा करने के उद्देश्य से गाँधीजी ने अपने अन्य कार्यों को छोड़ दिया तथा पूर्णरूपेण 'अश्पृश्यता निवारण अभियान' में जुट गए। उन्होंने अपना अभियान यरवदा जेल से ही प्रारम्भ कर दिया था। अगस्त, 1933 में जेल से रिहा होने के उपरान्त उनके आन्दोलन में और तेजी आ गई।

अपनी कारावास की अवधि में ही उन्होंने सितम्बर 1932 में 'अखिल भारतीय अश्पृश्यता विरोधी लीग' का गठन किया तथा जनवरी 1933 में उन्होंने *हरिजन* नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जेल से रिहाई के उपरान्त वे सत्याग्रह आश्रम वर्धा आ गए। गाँधीजी ने सन् 1930 में साबरमती आश्रम ही छोड़ दिया था और प्रतिज्ञा की थी कि स्वराज्य मिलने के पश्चात ही वे साबरमती आश्रम वापस लौटेंगे। 7 नवम्बर, 1933 को वर्धा से गाँधीजी ने अपनी 'हरिजन यात्रा' प्रारम्भ की। नवम्बर 1933 से जुलाई 1934 तक गाँधीजी ने पूरे देश की यात्रा की। अपनी यात्रा के द्वारा गाँधीजी ने स्वयं द्वारा स्थापित संगठन 'हरिजन सेवक संघ' के लिए जगह-जगह पर कोष एकत्रित करने का कार्य भी किया। गाँधीजी की इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य था– हर रूप में अश्पृश्यता को समाप्त करना। उन्होंने कांग्रेस कार्यकर्ताओं से आग्रह किया कि गाँवों का भ्रमण करते हुए हरिजनों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान का कार्य करें। दलितों को 'हरिजन' नाम सर्वप्रथम गाँधीजी ने ही दिया था। हरिजन उत्थान के इस अभियान में गाँधीजी 8 मई व 16 अगस्त 1933 को दो-बार लम्बे अनशन पर बैठे। उनके अनशन का उद्देश्य, अपने प्रयासों की गम्भीरता एवं अहमियत से अपने समर्थकों को अवगत कराना था। अनशन की रणनीति ने राष्ट्रवादी खेमे को बहुत प्रभावित किया।

अपने हरिजन आन्दोलन के दौरान गाँधीजी को हर कदम पर सामाजिक प्रतिक्रियावादियों तथा कट्टरपन्थियों के विरोध का सामना करना पड़ा। उनके खिलाफ प्रदर्शन किए गए तथा हिन्दूवाद पर कुठाराघात करने का आरोप लगाया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा संगठन का विरोध करने के निमित्त सरकार ने इन प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का भरपूर साथ दिया। अगस्त 1934 में लेजिस्लेटिव एसेंबली में 'मन्दिर प्रवेश विधेयक' को गिराकर, सरकार ने इन्हें अनुग्रहित करने का प्रयत्न किया। बंगाल में कट्टरपन्थी हिन्दू विचारकों ने पूना-समझौते द्वारा हरिजनों को हिन्दू अल्पसंख्यक का दर्जा दिए जाने की अवधारणा को पूर्णतयाः खारिज कर दिया।

इसी बीच अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ इस युग को आन्दोलित कर रही थीं। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर फासिज्म का उदय, म्यूनिख-समझौता, स्पेन में जनतन्त्र की सुरक्षा के लिए देश-विदेश के लेखकों एवं बुद्धिजीवियों का मोर्चा पर लड़ना, विश्व युद्ध की विनाशकारी छाया आदि घटनाएँ स्वाभाविक रूप से सम्पूर्ण विश्व को एक नई दृष्टि प्रदान कर रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सैनिकों को लड़ने के लिए भेज दिया। इस युद्ध में गोपाल सिंह 'नेपाली' के पिता भी जर्मनी गए थे। इस युद्ध में अपार धनराशि खर्च हुई और इसका बोझ भारतीय जनता पर डाल दिया गया। सन् 1942-43 तक आते-आते आवश्यक चीजें भी महंगी होने लगी। मुनाफाखोरी बढ़ने लगी और चारों तरफ भुखमरी फैलने लगी। इसी बीच सन् 1945 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। लाखों लोग भूखे तड़प-तड़प कर मर गए।

दूसरे विश्वयुद्ध में इंग्लैण्ड को बुरी तरह उलझता देख नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज को "दिल्ली चलो" का नारा दिया, दूसरी तरफ महात्मा गाँधी ने क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ अपना 8 अगस्त, 1942 की शाम 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का आह्वान किया। हालाँकि फ़ौरन ही गाँधी जी को गिरफ़्तार कर लिया गया था, लेकिन देश-भर के युवा कार्यकर्ता आन्दोलन जारी रखे।

कई जिलों जैसे पश्चिम में सतारा और पूर्व में मेदिनीपुर में स्वतन्त्र सरकार, प्रतिसरकार की स्थापना कर दी गई थी। अंग्रेजों ने आन्दोलन के प्रति काफ़ी सख्त रवैया अपनाया, लेकिन इस विद्रोह को दबाने में सरकार को साल भर से ज्यादा समय लग गया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस जनान्दोलन में 940 लोग मारे गए, 1630 घायल हुए, 18000 नजरबन्द हुए

तथा 60229 गिरफ्तार हुए।[20]

भारत छोड़ो आन्दोलन सही मायने में एक जनान्दोलन था, जिसमें लाखों आम हिन्दुस्तानी शामिल थे। इस आन्दोलन ने युवाओं को बड़ी संख्या में अपनी ओर आकर्षित किया। जिस दौरान कांग्रेस के नेता जेल में थे, उसी समय जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के उनके साथी अपना प्रभाव क्षेत्र फ़ैलाने में लगे रहे तथा पंजाब और सिन्ध में अपनी पहचान बनाने में कामयाब हुए, जहाँ उनका कोई खास वजूद नहीं था।

जब विश्वयुद्ध समाप्ति की ओर था, तो जून, 1944 में गाँधी जी को रिहा कर दिया गया। जेल से निकलने के बाद उन्होंने कांग्रेस और लीग के बीच फ़ासले को पाटने के लिए जिन्ना के साथ कई बार बात की। सन् 1945 में ब्रिटेन की नई सरकार, जो लेबर पार्टी की थी, भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में थी। उसी समय वायसराय लॉर्ड वावेल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बीच कई बैठकों का आयोजन किया। सन् 1946 की शुरुआत में प्रान्तीय विधान मण्डलों के लिए नए सिरे से चुनाव कराए गए जिसमें सामान्य श्रेणी में कांग्रेस को भारी सफ़लता मिली तथा मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों पर मुस्लिम लीग को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। इसी वर्ष कैबिनेट मिशन भारत आया, जिसने कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक ऐसी संघीय व्यवस्था पर राज़ी करने का प्रयास किया, जिसमें भारत के भीतर विभिन्न प्रान्तों को सीमित स्वायत्तता दी जा सकती थी, किन्तु कैबिनेट मिशन का यह प्रयास भी विफ़ल रहा। वार्ता की असफलता के बाद जिन्ना ने पाकिस्तान की स्थापना के लिए लीग की माँग के समर्थन में एक प्रत्यक्ष कार्यवाही-दिवस का आह्वान किया और इसके लिए 16 अगस्त, 1946 का दिन तय किया।

फ़रवरी, 1947 में लॉर्ड माउण्टबेटन ने सुलह के लिए प्रयास किया, किन्तु उनका प्रयास विफ़ल हो गया। अन्त में लॉर्ड माउण्टबेटन ने ऐलान कर दिया कि ब्रिटिश भारत को

---

[20] पामदत्त, रजनी, *आज का भारत*, पृष्ठ 577

स्वतन्त्रता दे दी जाएगी लेकिन उसका विभाजन भी होगा। औपचारिक सत्ता हस्तान्तरण के लिए 15 अगस्त का दिन तय किया गया। बटवारे से पहले गाँधी जी और नेहरू के आग्रह पर कांग्रेस ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर एक प्रस्ताव पारित कर दिया। कांग्रेस द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं करना चाहती थी, लेकिन उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध बँटवारे पर मंजूरी देनी पड़ी। कांग्रेस का यह विश्वास था कि भारत बहुत सारे धर्मों और बहुत सारी नस्लों का देश है और उसे ऐसे ही बनाए रखा जाना चाहिए। पाकिस्तान में जो कुछ भी हो, परन्तु भारत एक लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बने, जहाँ सभी नागरिकों को पूर्ण अधिकार प्राप्त रहे तथा धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के सभी को राज्य की ओर से संरक्षण का अधिकार रहे। कांग्रेस ने आश्वासन दिया कि वह अल्पसंख्यकों के नागरिक अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण के विरुद्ध हर मुमकिन रक्षा करेगी।

आजादी तो मिली, लेकिन विभाजन के शर्त पर। इस विभाजन के कारण हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों के फलस्वरूप भयंकर खून खराबा हुआ, लाखों लोगों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ा, सम्पत्तियाँ लूटी गईं, स्त्रियों पर अत्याचार किए गए। एक ऐसे साम्प्रदायिक बीज का बीजारोपण हो चुका था, जिसका विकास आज तक हो रहा है।

आजादी के बाद नेहरु जी ने प्रधानमन्त्री के तौर पर सत्ता सम्भाली और देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई। देश अभी विकास कर ही रहा था, अपनी राजनीति सम्भाल ही रहा था कि पड़ोसी देश पाकिस्तान ने युद्ध छेड़ दिया। इसकी विस्तृत चर्चा आगे के अध्याय में की जाएगी। पाकिस्तान के साथ युद्ध समाप्त ही नहीं हुआ था कि चीन जिसे भारत अपना भाई बताता था ने विश्वासघात किया और भारत और चीन का युद्ध हुआ। भारत और चीन के मध्य सीमांकन का निश्चित निर्धारण ब्रिटिश काल से अब तक नहीं हुआ था। लेकिन मैकमोहन रेखा के दक्षिण के हिस्से को तथा अक्साई चीन को भारत का माना जाता था। अक्साई चीन में चीन ने एक रोड बनवा दिया। सन् 1959 में जब भारत को इसका पता चला तो भारत ने आपत्ति जताई। इसी वर्ष दलाई लामा भारत में शरणार्थी बनकर आए, जिसका नेहरू ने स्वागत किया और चीन ने विरोध। इसके बाद दोनों देशों के

बीच सम्बन्धों में तनाव आना शुरू हो गया। सन् 1959 में चीनी सैनिक भारतीय क्षेत्र में पेट्रोलिंग करने चले आते थे और भारतीय सैनिकों से झड़प भी होने लगी थी। ऐसी परिस्थितियों को देखते हुए नेहरू जी ने The Forward Policy (1960) अपनाई और भारतीय सैनिकों को सीमा पर विशेषकर अक्साई चीन तथा मैकमोहन रेखा के पास चौकी बनाने का निर्देश दिया। चीन ने इस पालिसी को आधार बनाकर सन् 1962 में भारत पर हमला कर दिया और महज 4 दिनों में ही नेफा पर कब्ज़ा कर लिया। इस युद्ध में भारत की हार हुई और इसके लिए नेहरू की कमजोर नीतियों को जिम्मेदार ठहराया गया।

2.3. साहित्यिक काल की यात्रा

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षितिज पर गोपाल सिंह 'नेपाली' का आगमन उस समय एक दैदीप्यमान नक्षत्र के समान हुआ था, जब छायावादी काव्य अपनी सीमित विषय वस्तु, अतिशय कल्पनाशीलता, यथार्थ विमुखता एवं रूढ़ीबद्ध हो चुकी भाषा शैली के कारण सृजनात्मक दीप्ति ही नहीं, अपनी सार्थकता और प्रासंगिकता भी खोने लगा था।[21]

हिन्दी में छायावाद एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसका आविर्भाव द्विवेदी युगीन काव्य-धारा की स्थूल बौद्धिकता, इतिवृत्तात्मकता तथा कोरी नैतिकता की प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। सभी काव्य-धाराओं की तरह छायावादी काव्य सिर्फ पूर्व की काव्य-धारा की प्रतिक्रिया मात्र नहीं थी, बल्कि उसका जन्म भी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण हुआ था। "छायावाद ने जिस तरह समाज व साहित्य को पुराने रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट कल्पना, प्रकृति साहचर्य, मानव प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन आदि के प्रसार द्वारा छायावाद हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप विन्यास को पुराने संकीर्ण

---

[21] नन्दन, नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली युगद्रष्टा कवि*, पृष्ठ 14

रूढ़ियों से मुक्त कर के उसने नवीन अभिव्यंजना प्रणाली के लिए द्वार खोल दिए।”[22]

यह सच है कि छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के जरिए सांस्कृतिक परिवेश में यथार्थ उद्घाटित तो किया, लेकिन आधारभूमि मुख्य रूप से कल्पना से भरी हुई, आदर्शात्मक, भावनात्मक एवं रहस्यात्मक ही अधिक रही। छायावादी कविता पर व्यक्तिवादिता हावी होती चली जा रही थी, जिसके फलस्वरूप कविता समान जनता से कटती चले जा रही थी। वस्तुतः “छायावाद के बीच मौलिकता और नवीनता के नाम पर जो असमान्य की खोज हुई, उसने उसे सामान्य जनता से बहुत दूर कर दिया।”[23] इस प्रकार सामान्य जनता तथा उसकी समस्याओं से दूर, युगीन समाज की आवश्यकता की पूर्ति में असमर्थ, कल्पना और व्यक्तिवादिता के नशे में चूर, रहस्य एवं आध्यात्मिक की खोल ओढ़े, सामान्य जनता से कटी छायावादी कविता को युग की जागरुक चेतना स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। फलतः छायावादी कविता अपने अवसान की ओर अग्रसर हो गई।

अपने अन्तिम समय में छायावादी कविता की कल्पना एवं उसकी रोमानियत अपनी अतिवादिता के चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई थी। जीवन एवं समाज की वास्तविकताओं से उसका सम्बन्ध विच्छेद-सा हो गया था। कविता यथार्थजीवी की जगह कल्पनाजीवी हो गई थी। कवि वस्तुस्थिति का पूर्ण रूप में प्रकट न कर, रहस्य व कल्पना का आवरण पहनाकर उसे उद्घाटित करता था। उसमें भी स्व-अनुभूतियों एवं भावनाओं को ही प्रधानता देता था। इस प्रकार छायावादी कविता की ताजगी रंगीली और कल्पना का अतिरेक सन्तुलित चित्रण के अभाव की पूर्ति न कर सका। कवियों की नवीनता और मौलिकता भी बहुत दूर न जा सकी, क्योंकि छायावादी कवि प्रधानता अपनी ही भावनाओं और अनुभूतियों में तंवर है और इनमें से अधिकांश भावनाएँ और अनुभूतियाँ न तो बहुत गहरी थी, न सत्य से

---

[22] सिंह, नामवर, *छायावाद*, पृष्ठ 154,

[23] शुक्ला, केसरी नारायण, *आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत*, पृष्ठ 133

सम्बन्धित।"[24] महादेवी वर्मा ने भी स्वीकार किया कि "छायावाद का पराभव एक तो इस कारण हुआ कि छायावादी कवियों की आध्यात्मिक अनुभूति अपूर्ण और दुर्बोध थी और दूसरे उसमें मानव जीवन को उचित गौरव न देकर उसके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के स्थान पर भावनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया गया।"[25]

छायावाद युग की बाह्य परिस्थितियाँ भी विडम्बनापूर्ण थीं– एक ओर पराधीनता की बेड़ियाँ कसती जा रही थीं, तो दूसरी ओर क्रान्ति की आवाज तेज होती जा रही थी। परिस्थितियाँ तेजी से करवट बदल रही थी। लेकिन छायावादी कविता इन सबसे मुखातिब होने में असक्षम हो रही थी। स्वयं छायावादी कवियों सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानन्दन पन्त को यह आभास हो गया कि छायावादी कविता इस नए यथार्थ से सम्पृक्त होने में सक्षम नहीं हो पा रही है। इसलिए कवि पन्त ने सन् 1936 में युगान्त की घोषणा की। निराला 'बेला', 'नए पत्ते', 'कुकुरमुत्ता', 'गरम पकौड़े', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी', 'मास्को डायलॉग', 'स्फटिक शिला' की कविताएँ लिखकर छायावादी भावबोध से आगे बढ़ने लगे, तो पन्त सन् 1936 में *युगान्त* की घोषणा कर *युगवाणी* और ग्रामीणों द्वारा जन जीवन के सत्य की खोज की ओर उन्मुख हुए। हालाँकि गोपाल सिंह 'नेपाली' को इसका आभास पहले ही हो चुका था। इसलिए उन्होंने अपने पहले काव्य-संग्रह '*उमंग*' (1934) में छायावाद के उस 'विराग का फन्द' काटकर सोई उमंग को जगाने का प्रयास किया और '*युगान्तर*' का इन्तजार करना आरम्भ किया। 'नेपाली' ने लिखा है कि "बचपन की बात मैं नहीं करता, पर जब होश आया तो ब्रजभाषा की 'कोमल-कान्त-पदावली' घूँघट काढ़े सामने खड़ी थी। एक-आध को मैंने पसन्द किया, गाया भी। पदावली अभी मेरे निश्चय की बाट जोह रही थी कि पीछे से समय ने सीटी दी। मैं मुड़ा, उसकी ओजपूर्ण बातें सुनीं। न कोई मोह, न कुछ लालच; कर्तव्य की ज्योति से उद्भाषित प्रशस्त जीवन मार्ग मैं बड़ा आकृष्ट

---

[24] शुक्ला, केसरी नारायण, *आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत*

[25] वर्मा, महादेवी, *आधुनिक कवि (एक)*, पृष्ठ 22-23

हुआ। इस नवीन आलोक से मुझे बड़ी ख़ुशी हुई।”[26]

युगीन नई चेतना के साथ छायावादी कविता कई धाराओं में फूटी। गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कविता को समझने के लिए युगीन काव्यधारा का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है।

2.3.1. वैयक्तिक चेतना की काव्यधारा

छायावादी कविता की प्रतिक्रिया स्वरूप मार्क्सवादी चेतना की सामाजिक यथार्थ, फ्राइड के मनोविश्लेषण एवं राष्ट्रीय संचेतना के कई रूपों का जन्म हुआ। फिर भी व्यक्तिवादी कविता या वैयक्तिक चेतना की काव्यधारा छायावादी कविता का विकास चिह्न है, क्योंकि वैयक्तिक यथार्थ की स्पष्टता जो छायावादी कविता में प्रशान्त रही वही वैयक्तिक चेतना में स्पष्ट हुई। वैयक्तिक चेतना की कविता उत्तर-छायावादी हिन्दी कविता का प्रथम सोपान है। हरिवंश राय बच्चन, भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, आरसी प्रसाद सिंह आदि कवियों ने रोमांस और स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति की चरम अभिव्यक्ति दी। इन कवियों ने हाला, मधुशाला, साकीबाला आदि शब्दों का खूब प्रयोग किया, जिसके चलते इन्हें हालावादी भी कहा जाता है। कुछ आलोचक ‘हालावाद’ को फारसी साहित्य से प्रभावित मानते हैं। डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल के अनुसार फारसी के तीन प्रमुख कवि मौलाना ‘रूमी’ ‘हाफिज’ और ‘उमर खय्याम’ अपने हाला सम्बन्धित प्रतीक विधानों द्वारा परोक्षसत्ता की चर्चा करते हैं।[27]

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ भी वैयक्तिक चेतना के कवि हैं, किन्तु उन्होंने बच्चन आदि की तरह हाला, प्याला और मधुशाला आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि जिस समय उन्होंने लेखन शुरू किया, उमर खय्याम की हाला सामने रखी थी - “अब उमर खय्याम की हाला प्याले में भरी सामने रखी थी। मैंने बड़े गौर से देखा। प्याले में उडेली हुई वह सुरा जो छलक रही थी ज्यों शीशे के पारदर्शी आवरण के अन्दर स्वयं मादकता जमके

[26] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, भूमिका

[27] शुक्ल, (डॉ.) प्रेम नारायण, *हिन्दी साहित्य में विविधवाद*, पृष्ठ 469,

बैठी हुई हो। पर मुझे उस समय कुछ कड़वाहट-सी मालूम हुई और जीभ ने कहा पीने पर मुँह किंचित विकृत करना पड़ेगा। मैंने स्वीकार न किया, टाल दिया। इतने में बगल में उर्दू के विषाद गीत सुनाई दिए। वे करुण थे, उनमें रस था। मुझे बड़े पसन्द आए। मैं भी बैठ के गाने लगा–

पहलुए यार से उठने को उठे तो लेकिन
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह।

पर स्वर की असमानता से पकड़ लिया गया। कितने ही कोशिशें की पर रुदन की दुरूह कला के सामने मैंने हार मान लिया।"[28]

हालाँकि 'नेपाली' को इसमें कडवाहट नजर आई, किन्तु इस काव्य-धारा का अपना एक वैभव था। यह काव्य-धारा व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी समाजोन्मुख थी। यह धारा प्राचीन धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं, औपचारिकताओं का विरोध करती थी, इसके अन्दर जीवन-दर्शन का एक बोध था, मानवतावादी विचार थे, प्रणय और शृंगार की भावना प्रमुख थी, राष्ट्रीयता का स्वर भी था। छायावादोत्तर हिन्दी कविता पर बात करते हुए डॉ. रमाकान्त शर्मा लिखते हैं कि "इन कवियों की चेतना वैयक्तिक थी, परन्तु सामाजिक नवनिर्माण की भावना भी उनकी कृतियों में मिलती है। ईश्वर तथा धार्मिक विश्वासों के प्रति घृणा, प्रतिक्रियावादी शक्तियों और सामाजिक वृत्तियों के प्रति विद्रोह की भावना बड़ी स्वस्थता से व्यक्त हुई है। इन कवियों ने सृजनशील जीवन, ग्रामीण वातावरण, प्रकृति आदि को नया परिवेश दिया। मार्क्स के साम्यवाद के प्रति इनकी आस्था स्पष्ट शब्दों में व्यक्त हुई है, इस प्रकार प्रगतिवादी काव्य-धारा के मूल विचारों का शुभारम्भ इसी काल की कृतियों में स्पष्ट दिखाई देता है।"[29] लेकिन डॉ. नगेन्द्र ने इस कविता का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि

---

[28] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, भूमिका

[29] शर्मा, (डॉ.) रमाकान्त, *छायावादोत्तर हिन्दी कविता*, पृष्ठ 122

'छायावाद के कवियों ने जिन सूक्ष्म कला-प्रक्रियाओं का अनवरत अभ्यास कर हिन्दी काव्य को एक अभूतपूर्व कला-शिल्प का वरदान दिया, ये कवि उसकी कोई भी श्री-वृद्धि नहीं कर सके।'[30] बावजूद इसके वे इस काव्यधारा को प्रगतिवाद की अग्रजा मानते हुए उन्होंने लिखा है कि "इसमें आदर्शवादी विचारधारा का प्रखर व्यक्तिवाद और भौतिकवादी वामपक्षीय विचारधारा का स्थूल और मूर्त, अर्थात् भौतिक जगत के प्रति आग्रह तथा परम्परा और अध्यात्म के सूक्ष्म आदर्शों के प्रति अनास्था है। वास्तव में छायावाद के मूल स्रोत से आविर्भूत इसी धारा ने प्रगतिवाद के लिए पथ प्रशस्त किया।" (पृष्ठ 67, वही)

2.3.2. प्रगतिवाद

छायावाद के अवसान के समय सन् 1936 के आसपास हिन्दी में जो कविता सामाजिक चेतना को लेकर आगे बढती है, उसे प्रगतिवादी कविता कहा जाता है। प्रगतिवादी साहित्य अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है। ऐसे तो हर युग का साहित्य प्रगतिशील होता है। भक्तिकाल जैसे अध्यात्मिक युग में कबीर, तुलसीदास तथा अन्य सन्तों ने युगीन रूढ मान्यताओं, बाह्य-आडम्बरों के प्रति अपना उग्र विरोध प्रकट किया है। किन्तु आज जिस अर्थ में प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह भौतिकवाद, यथार्थवाद, साम्यवाद का समानधर्मी बन गया है। इसके अलावा यह प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा से वैज्ञानिक चिन्तन पाकर सामाजिक-यथार्थ की भावना से अनुप्राणित हो गया।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद हमारे देश की सामाजिक व राजनीतिक जीवन की नवीन दिशाओं का उन्मेष हुआ। ललित मोहन अवस्थी ने इसके तीन प्रभाव को इस क्रम में प्रस्तुत किया-

1. देश में भारतीय औद्योगिक पूँजीवाद का विकास,
2. सोवियत संघ में समाजवादी क्रान्ति की सफलता का प्रभाव और

---

[30] (डॉ.) नगेन्द्र, *आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ*, पृष्ठ 84

3. राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में उग्र पन्थ का विकास तथा देश के सर्वहारा-वर्ग का उसमें सक्रीय सहयोग।

रुसी क्रान्ति की सफलता के बाद विश्वभर के लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए। भारत में भी सन् 1935-36 के आसपास इसका प्रभाव दिखाई देने लगता है। सन् 1935 में लन्दन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। और सन् 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में पहला अधिवेशन हुआ। अनेक छायावादी कवियों ने युगान्त की घोषणा कर दी और युगानुरूप युगवाणी को स्वर देने लगे। सन् 1938 के रूपाभ के सम्पादकीय में सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद के ह्रास और प्रगतिवाद के आविर्भाव की स्वीकृति प्रकट करते हुए लिखा कि "इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं।... अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ा।"[31]

प्रगतिवादी मात्र आवेश या भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है और न विरोध या विद्रोह से प्रतिफलित हुई है। उसकी पृष्ठभूमि प्रौढ़ मार्क्सवादी, वैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और दार्शनिक विचारधारा से संपुष्ट है। वह समाज का यथार्थवादी चित्रण में विश्वास करता है, पूँजीवाद, सामन्तवाद व साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाता है तथा उसमें राष्ट्रीय भावना और अन्तर्राष्ट्रीय संवेदना का भाव है। यह सत्य है कि प्रगतिवादी साहित्य में सामाजिक यथार्थ को अवश्य अभिव्यक्ति मिली, किन्तु इसने वैयक्तिक यथार्थ उपेक्षित-सा कर दिया। आगे चलाकर यह वैयक्तिक यथार्थ मनोविश्लेषणवाद व अस्तित्ववाद का प्रभाव ग्रहण कर प्रयोगशील काव्यधारा में अभिव्यंजित हुआ।

2.3.3. प्रयोगशील कविता एवं प्रपद्यवाद

हिन्दी में प्रयोगवाद का प्रारम्भ सन् 1943 में प्रकाशित *तार-सप्तक* से माना जाता है। इस धारा की नींव द्वितीय विश्वयुद्ध तथा उसके बाद के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर

---

[31] गुप्ता सतीशचन्द्र, *पन्त की दार्शनिक चेतना*, पृष्ठ 24

खड़ी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप मनुष्य एक नई चिन्ता, कुण्ठा, भटकन, टूटन तथा अस्थिरता का सामना करने लगा। इस विखराव, भटकन के वातावरण में साहित्य और जीवन की मूल चेतना नष्ट हो रही थी। विभिन्न वृत्तियों और प्रवृत्तियों के बिखराव ने व्यक्ति के साथ-साथ समाज को भी विघटनकारी और भयावनी परिस्थिति के गर्त में छोड़ दिया। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार "यह विखराव आधुनिक युग की सबसे बड़ी समस्या थी और सबसे पहले आधुनिक कलाकारों, कवियों, लेखकों और चिन्तकों ने यह अनुभव किया।"[32] इस नए अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए नई तकनीक की आवश्यकता महसूस हुई, जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ। प्रयोगवाद के अविर्भाव के सन्दर्भ में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह का मत है कि "हिन्दी काव्य के क्षेत्र में 'प्रयोगवाद' की चर्चा '*तारसप्तक*' कविता-संग्रह (सं. अज्ञेय; सन् 1943) से प्रारम्भ हुई, '*प्रतीक*' पत्रिका (जुलाई सन् 1947-50) से उसे बल मिला और दूसरा सप्तक (सं. अज्ञेय; सन् 1951) काव्य-संग्रह से उसकी स्थापना हुई।"[33] इसी के साथ-साथ बिहार के तीन कवियों ने एक नई काव्यधारा का उन्मेष किया, जिसे प्रपद्यवाद कहा जाता है। प्रपद्यवाद को प्रयोगवाद का दूसरा पहलू मानते हुए नामवर सिंह ने लिखा है कि "प्रयोगवाद का दूसरा पहलू बिहार के नलिनविलोचन शर्मा, केसरी और नरेश के 'नकेनवाद' प्रपद्यों द्वारा आया जो समझ से अज्ञेय के प्रयोगवाद का विरोध करते हुए भी वस्तुतः उसी की एक शाखा है।"[34] प्रवृत्ति के स्तर पर दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है किन्तु दार्शनिक स्तर पर अन्तर दिखाई देता है।

प्रयोगशील काव्य-धारा पर मनोविश्लेषणवाद का गहरा प्रभाव है। डॉ. नगेन्द्र इस कविता पर मनोविश्लेषण का प्रभाव स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाववश अवचेतन का अध्ययन इनकी कविता का मुख्य विषय है। अवचेतन की कम-कुण्ठाओं का प्रतीकों द्वारा यथातथ्य चित्रण अज्ञेय और गिरजाकुमार में अत्यन्त स्पष्ट है और वैसे अन्य

---

[32] भारती, (डॉ.) धर्मवीर, मानव, *मूल्य और साहित्य,* पृष्ठ 177

[33] सिंह, नामवर, *आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ,* पृष्ठ 128

[34] वही, पृष्ठ 128

कवि भी इससे मुक्त नहीं हैं।”[35]

प्रयोगशील काव्यधारा पर मनोविश्लेषणवाद के साथ-साथ अस्तित्ववाद का भी प्रभाव दिखता है। इसका एक कारण यह भी है कि प्रयोगवाद और अस्तित्ववाद दोनों ही विश्वयुद्ध की परिणति हैं। जहाँ प्रयोगवाद और अस्तित्ववाद दोनों में व्यक्ति प्रमुख होता है। अस्तित्ववादी दर्शन में वैयक्तिक अहं को आवश्यक तत्त्व बताते हुए डॉ. द्वारका प्रसाद ने लिखा है कि “अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्ति समाज की इकाई होते हुए भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता, क्योंकि इकाई की सत्ता और उसकी स्वीकृति सम्बन्धगत चेतना के स्तर पर समाज को जन्म देती है।”[36]

‘नेपाली’ ने प्रयोगवाद पर मनोविश्लेषणवाद के प्रभाव को मन का रोग बताया। उनका कहना था कि मन के पंक्षी को खुलकर उड़ने देना चाहिए।

“कविता के लिए गए जो मर
वे कवि कहते हैं चिल्लाकर
“कविता का युग तो चला गुजर
आया प्रयोग का शुभ अवसर”
यह खुद डूबा तो जग डूबा
वाला हिसाब है लोगों का
कविता का इसमें दोष नहीं
यह लच्छन में के रोगों का
मुस्कान देश की चीर-नवीन
है अश्रु राष्ट्र का अमर गान
मान का पंक्षी लेता उड़ान

---

[35] डॉ. नगेन्द्र, *आस्था के चरण*, पृष्ठ 276

[36] सांचीहर, (डॉ.) द्वारका प्रसाद बलदेवप्रसाद, *छायावादोत्तर हिन्दी-कविता*, पृष्ठ 155

मैं करता जाता धूम्रपान"[37]

विचारबोध के स्तर पर प्रगतिशील कविता में भाव और विचार के सामंजस्य का अभाव है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह के अनुसार "प्रयोगवादी कविता में न तो टी. एस. इलियट जैसी बौद्धिक ऊँचाई दिखाई देती है और न रवीन्द्रनाथ जैसा बौद्धिकता और भावात्मक का सामंजस्य ही मिलता है। इसके विपरीत उसमें अधिकतर कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें या तो स्थूल बौद्धिक व्यायाम, तर्क-वितर्क और पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है या कोरी रूमानियत, सस्ती भावुकता और विवेकहीन ऐन्द्रियता की।"[38] इसका एक कारण यह था कि प्रयोगवादी कवियों ने बौद्धिकता को अपरिहार्य रूप से सिद्धान्त मान लिया था। डॉ. द्वारका प्रसाद ने लिखा है कि "बौद्धिकता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करने का परिणाम प्रयोगशील कविताओं की अतिशय दुरुहता व अस्पष्टता में प्रकट हुआ। जब प्रयोगशील कवियों की हर भावना के सामने बौद्धिकता का प्रश्नचिह्न लग गया तो प्रयोगशील कवियों को ही 'प्रयोगवाद' के नाम से असन्तोष होने लगा और युग की माँग के अनुरूप नई कविता का प्रादुर्भाव हुआ।

2.3.4. नई कविता

दुसरे तारसप्तक के प्रकाशन के बाद विचारगत, भावगत और अभिव्यक्ति के स्तर पर जो परिवर्तन आए उन्होंने ही नई कविता की पृष्ठभूमि तैयार की। हालाँकि यह पूर्व की काव्यधारा से असम्पृक्त या विरोध स्वरूप नहीं आई बल्कि परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिपूरक रूप में जन्मी। कवि सुमित्रानन्दन पन्त नई कविता को प्रयोगवाद के विकसित अवस्था के रूप में देखते हुए लिखते हैं कि "नई कविता तक पहुँचने तक प्रयोगवाद काव्य में एक नया संयम तथा संतुलन आ जाता है। उसके भाव-बोध में सूक्ष्म संस्कार, कला-शिल्प में सम्प्रेषण-शक्ति, अति-वैयक्तिकता में व्यक्ति मूल्य के प्रति आस्था तथा आत्मनिष्ठ-दृष्टि में अन्तःसमर्पण की संगति के चिह्न प्रकट होने लगते हैं और उसकी भावना को बौद्धिक

---

[37] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 116

[38] सिंह, (डॉ.) शम्भुनाथ, *प्रयोगवाद और नई कविता*, पृष्ठ 90,

संवेदना का स्पर्श मिल जाता है।”[39]

आजादी के पश्चात् कविता में मोहभंग का दौर चला। कवियों ने बहुत उम्मीदें कीं, किन्तु स्व-शासन से पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध तथा नेहरू की नीतियों की असफलता के कारण उनके सपने टूटने लगे। साठोत्तरी कविता के दौर के कवियों ने युगीन सत्ता की आलोचना की। गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की धारा इन विविध काव्यधाराओं के साथ चलती है। किन्तु उनकी चेतना में कविता कविता के लिए कम समाज के लिए अधिक दिखाई देती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के समय और साहित्य पर प्रकाश डालने पर स्पष्ट दिखता है कि यह काल सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्तर पर तथा साहित्यिक स्तर पर विविधताओं से भरा हुआ काल है। देश अपनी गुलामी से संघर्ष कर आजाद होता है। आजादी के बाद नई चुनौतियाँ सामने आती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक हलचलें भी विश्व को प्रभावित कर रही थी। फलस्वरूप जीवन को देखने की नई-नई विश्वदृष्टि का विकास हो रहा था। इन सबका प्रभाव गोपाल सिंह 'नेपाली' के लेखन पर कितना पडा तथा 'नेपाली' ने अपने युग के यथार्थ को कितनी बारीकी के साथ देखा और अभिव्यक्त किया, इसका अध्ययन आगे के अध्याय में होगा।

---

[39] पन्त, सुमित्रानन्दन, *छायावाद : पुनर्मूल्यांकन*, पृष्ठ 123,

तीसरा अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता में सामाजिक यथार्थ

3.1. प्रस्तावना

3.2. साहित्य और समाज का एक दूसरे पर प्रभाव

3.3. साहित्य समाज का नियामक

3.4. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

3.5. सामाजिक परिवर्तन बनाम मानसिक परिवर्तन का आरम्भ

3.6. परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता और साहित्य

3.7. युगान्तर की चेतना एवं नवीनता की कल्पना

3.8. भारतीय समाज का स्वरूप

3.8.1. ग्रामीण जीवन का यथार्थ

3.8.2. समाज में स्त्री का स्थान

3.8.3. दलित मुक्ति का प्रश्न

3.9. निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता में सामाजिक यथार्थ

3.1. प्रस्तावना

एक रचनाकार भी समाज का अंग होता है, इसलिए उसकी रचना भी समाज के किसी न किसी हिस्से से जुड़ी होती है। रचनाकार अपने सामाजिक अभावों, प्रभावों, त्रुटियों, अक्षमताओं के साथ ही समाज में होने वाले विविध आन्दोलनों, क्रान्तियों तथा सामाजिक उथल-पुथल से भी अछूता नहीं रह पाता। रचनाकार एक ओर समाज की मानसिक बुभुक्षा की तृप्ति के लिए अपनी रचना के रूप में उसे आहार प्रदान करता है, तो दूसरी ओर सामाजिक कमियों, त्रुटियों तथा अक्षमताओं के निराकरण का प्रयास भी अपनी रचना के माध्यम से करने की कोशिश करता है। जब वह अपने समाज में व्याप्त दु:ख-दैन्य, वैषम्य, अत्याचार, अनाचार-भ्रष्टाचार को देख बेचैनी अनुभव करता है, तब जन का आव्हान करता है। इसलिए उसकी रचना में युगीन समाज दु:ख में संघर्ष करता है और ख़ुशी में उत्साह के गीत गाता है। किसी भी रचनाकार की कृति में सम्पूर्ण समाज का प्रतिबिम्ब मिलना कठिन होता है। प्रत्येक साहित्यिक युग में साहित्य भी एक प्रमुख धारा के साथ कुछ गौंड धाराएँ भी प्रवाहित होती रहती हैं। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के आदि काल में वीर रस की प्रधानता होने के साथ ही शृंगार, नीति और भक्ति की रचनाएँ भी लिखी गईं।

पूर्व मध्यकाल में भक्तिपरक रचनाओं की प्रमुखता रही तो 'उत्तर-मध्यकाल' में रीतिपरक शृंगारिक रचनाएँ हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृति रहीं। भक्तिकाल के अधिकतर

साहित्यकार लोक के बीच रहते हुए लोक के लिए लिख रहे थे तो रीतिकाल के अधिकतर साहित्यकार दरबार के लिए लिख रहे थे। अतः इन दोनों की रचनाओं में भी फर्क दिखना स्वाभाविक है।

सन् 1857 के पहले स्वाधीनता संग्राम के बाद रचनाकार नए सिरे से समाज को देखने के लिए बाध्य होता है। अब उसकी रचना में समसामयिक समाज की विभिन्न समस्याएँ, मान्यताएँ, धारणाएँ, और स्थापनाएँ मुखर होती है। अब औपनिवेशिक साम्राज्य के अधीन जनता का शोषण और परवशता की पीडा के साथ ही जन आक्रोश और जनता कि मुक्ति-कामना को भी अभिव्यक्त करता है। आधुनिक युग की कविता में औपनिवेशिक सत्ता के द्वारा अर्थ की लूट, समाज में व्याप्त अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के चित्रण के साथ-साथ राष्ट्रीयता की उद्दीप्त भावनाओं तथा अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक नागरिकों की अनुभूतियों का प्रकाशन भी है।

गोपाल सिंह नेपाली ने अपने युग की सामाजिक-व्यवस्था को देखते हुए औपनिवेशिक सत्ता के दमन के खिलाफ क्रान्ति का आह्वान किया, कविताओं के माध्यम से गाँधी जी के असहयोग, सत्याग्रह आन्दोलन समर्थन कर आन्दोलन में युवाओं एवं स्त्रियों को हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। आजादी के बाद लोकतन्त्र के प्रति आस्था दिखाई, साम्यवाद में विश्वास जताया। साम्यवाद का सपना अधूरा रह जाने पर निराश हुए बिना क्रान्ति की चिनगारी सुलगाए रखी।

3.2. साहित्य और समाज का एक दूसरे पर प्रभाव

साहित्य और समाज दोनों में आदान-प्रदान एवं क्रिया-प्रतिक्रिया का भाव भी विद्यमान होता है। जिसके फलस्वरूप दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं और सामाजिक उन्नति की आधार-शीला का निर्माण करते हैं। इतिहास में देखें, तो अब तक संसार में जितनी क्रान्तियाँ या आन्दोलनों हुए हैं, उनके पीछे कोई न कोई विचारधारा कार्यरत रही है। साहित्य भी विचारधारा के प्रभाव से अछूता नहीं रहता। जब रचनाकार किसी विचारधारा के साथ समाज को देखता है, तो समाज में व्याप्त जीवन की जटिलता और बाधक तत्त्वों का दर्शन

नए रूप में करता-कराता है। रचनाकार की यह अभिव्यक्ति पाठक-श्रोता को समस्याओं को देखने की एक नई दृष्टि देती है। कभी-कभी यह नई दृष्टि क्रान्ति का रूप भी ग्रहण कर सकती है। प्रसिद्ध फ़्रांसिसी-क्रान्ति के मूल में रूसो एवं वाल्टेयर के विचार प्रमुख थे। गौर करें तो भारतीय स्वाधीनता संग्राम को स्वतन्त्र देशों की क्रान्तिकारी विचारधाराओं ने भी काफी प्रभावित किया। एक स्तर पर हिन्दी नवजागरण भी इन विचारधाराओं से प्रभावित हुआ। इसका एक कारण उस समय का साहित्य था। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य समाज की उन्नति की महत्त्वपूर्ण आधारशिला भी हो सकता है।

3.3. साहित्य समाज का नियामक

"साहित्य समाज का नियामक और उन्नायक होता है। साहित्य अमूर्त और अस्पष्ट भावों को मूर्त रूप दे, उनका परिष्कार कर प्रभावित करता है। हमारे अपने विचार ही साहित्य का जामा हमारे विचारों की गुप्त शक्ति को केद्रस्थ करके उसे कार्यरत बनाता है। हमारे अपने विचार जो समाज द्वारा बनते हैं, इसलिए हमें बड़े मूल्यवान लगते हैं। फलस्वरूप इन विचारों के प्रति हमारे मन में स्वाभिमान एवं गौरव की भावना होती है। इसी कारण हम उसे अपने जातीय सम्मान और गौरव का संरक्षक मान यथेष्ठ सम्मान प्रदान करते हैं।"[1]

जिस प्रकार कबीर, सूर और तुलसी का साहित्य हमें एक संस्कृति (और जातीयता में बाँधता है उसी प्रकार शेक्सपीयर और मिल्टन पर अंग्रेजों को गर्व है, क्योंकि उनका साहित्य उन्हें एक संस्कृति और जातीयता में बाँधता है। अपनी किसी सम्मलित वस्तु पर गर्व करना जातीय जीवन और सामाजिक संगठन का प्राण होता है।

किसी भी जाति के साहित्य पर उस जाति के रीति-नीति का गहरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण प्रत्येक जाति का भिन्न रहन-सहन, भिन्न रीति-रिवाज और भिन्न आचार-विचार उनके साहित्य में चित्रित होता है। किसी जाति (नेशन) का साहित्य उस जाति की सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को जानने-समझने का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज भी

---

[1] शर्मा, राजनाथ, *साहित्यिक निबन्ध-समाज और साहित्य*, पृष्ठ 378

होता है।

साहित्य और समाज में घनिष्ट से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होने पर भी दोनों में थोड़ा-सा अन्तर रहता है। जीवन की धारा अपूर्ण है। साहित्य में उसकी प्राणदायिनी और रमणीय बूँदें एकत्रित होने लगती है। "सामाजिक जीवन तो अनेक नियमित-अनियमित, ज्ञात-अज्ञात घटनाओं की शृंखला का समष्टि रूप है। यह सच है कि समकालीन समाज साहित्य को प्रभावित करता है परन्तु साहित्यकार का सम्बन्ध केवल वर्तमान से ही न होकर-अतीत और भविष्य से भी होता है। महान लेखक और कलाकार तो देश और काल की सीमाओं को लाँधकर सार्वभौम समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके लिए समसामयिक और स्थानीय जीवन का उतना ही महत्त्व है जितना वह उनके विराट सर्वकालीन यथार्थ जीवन की कल्पना में सहायक बन सकता है। इसके सिवा भी साहित्य में कुछ ऐसे विशिष्ट वर्णन होते हैं जो यथार्थ जीवन से मेल नहीं खाते। इसका कारण यह है कि साहित्य में मानव जीवन ही नहीं, जीवन की वे कामनाएँ, जो अनन्त जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती, निहित रहती हैं। साहित्य जीवन की इन्हीं अपूर्णताओं को पूर्ण करता है, तभी वह जीवन से अधिक सारवान और परिपूर्ण बनता है और वह जीवन को नियमित कर मार्गदर्शन भी करता है।"[2]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में 'साहित्य समाज का दर्पण है।' अर्थात् समाज का वास्तविक स्वरूप साहित्य में देखा जा सकता है। समाज निर्माण के पश्चात् साहित्य का निर्माण होता है और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। न समाज साहित्य से अछूता रह सकता है न साहित्य समाज से अपने को अलिप्त रख सकता है। समाज की विविध प्रकार की गतिविधियों का ही साहित्य में अंकन किया जाता है। समाज, जाति, देश, राष्ट्र तथा विश्व की उन्नति में साहित्य महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करता है। साहित्यकार अपनी सामग्री का चयन समाज के विस्तृत परिचय से ही करता है। मानव जीवन से अलग साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। साहित्य समाज के विभिन्न अंगों का, प्रवृत्तियों का विवेचन-विश्लेषण

---

[2] वही, पृष्ठ 375

करता है और उन्हें सुरक्षित रखता है।

कवि गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी कविताओं में समाज के हर पहलु को समेटने का प्रयास किया है। कवि कविता में नेपाली ने लिखा—

"मैं दीपक-सा जल रहा आज अन्तर में हाहाकार लिए
जग ऊँघ रहा है तिमिर बना सुख-स्वप्नों का संसार लिए
जग को दुःख है जग रोता है
कुछ पाता है सब खोता है
युग-ईश्वर की बलि-वेदी पर
जग बार-बार बलि होता है
मैं जग के दुःख में शामिल हूँ, इन आँखों में जलधार लिए"[3]

सामाजिक जीवन के बीच से लेखक उत्पन्न होता है। तब अनायास ही मन में यह प्रश्न उठने लगता है कि यह लेखक लिखता क्यों हैं? लेखक इसलिए लिखता है कि वह लिखकर अपना 'स्वयं का सुख' अनुभव करना चाहता है। आत्मतुष्टि आत्मपरिष्कार से होती है; क्योंकि इसी आत्मपरिष्कार के साथ दृष्टि की व्यापकता जुड़ी हुई है। व्यापक दृष्टि के साथ ही लोक कल्याण जुड़ा हुआ है। इसलिए स्वान्त:सुखाय स्वान्त: सुखाय न होकर बहुजनहिताय या बहुजन सुखाय' बन जाता है। स्वान्तः सुखाय और बहुजनहिताय के अन्तर्गत जितने व्यापक दृष्टिकोण का समावेश होता है, उसे लेकर लेखक सामान्य व्यावहारिकता के भीतर असामान्य या सामान्य के भीतर एक विशेष अर्थ की खोज करता है। लेखक सामान्य घटनाओं अपने दृष्टिकोण के आधार पर उन्हें एक विशिष्ठ अर्थ प्रदान करता है। लेखक का दृष्टिकोण जितना व्यापक, तर्काश्रित और सृजनधर्मी होगा, उतना ही उसका साहित्य भी श्रेष्ठ होगा। जिस लेखक का दृष्टिकोण व्यापक होता है उसकी रचना कालजयी होती है; क्योंकि वह लिखता तो युग का सत्य है किन्तु उसमें भविष्य की कामना छुपी होती है।

[3] नेपाली, गोपाल सिंह, *पंचमी,* पृष्ठ 93

गोपाल सिंह नेपाली की कविताओं में युगीन समाज का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है, लेकिन आज भी उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है। जब भारत-पाकिस्तान के सम्बन्ध की बात हो या फिर भारत-चीन के सम्बन्ध की तो *'हिमालय ने पुकारा'* काव्य-संग्रह की कविताएँ उन्हें समझने में हमारी मदद करती हैं।

समाज से निरपेक्ष साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। साहित्य समाज सापेक्ष ही होता है; क्योंकि साहित्य मूलत: भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति होता है। आधुनिक युग में तो मनुष्य ने जीवन को अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है। इसे जानने के लिए हम आधुनिक युग के किसी भी भाषा का साहित्य देख सकते हैं। इस युग में मनुष्य ने न केवल अपने जीवन को रचने बसाने का प्रयास किया बल्कि अपने समाज की सड़ी-गली मान्यताएँ, जो उसको ठीक नहीं लगीं, उन्हें भी प्रश्नांकित किया। इन मान्यताओं के विरूद्ध एक असन्तोष प्रकट किया, व्यवस्था को चुनौती देते हुए आधुनिकता के बोध को और अधिक स्पष्ट किया। गोपाल सिंह नेपाली ने लिखा है—

"मनुष्य तोड़ता चला, मनुष्य तोड़ता चला
घिसी-मलीन रीतियाँ
अनीतिपूर्ण नीतियाँ
कुरीतियाँ-सुरीतियाँ
असत्य की प्रतीतियाँ
कि जो न कर सकीं भला, मनुष्य तोड़ता चला"[4]

युग और आधुनिकता के प्रारम्भ में ही मनुष्य द्वारा अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष और विद्रोह करने तथा पुरानी मान्यताओं के विरोध में खड़े होने की एक संकल्पना दिखाई होती है। आज मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक सजग, संघर्षशील तथा मुक्तिकामी है। परिणाम स्वरूप रूढ़ियों और परम्पराओं से लोहा लेने की इच्छा रखते हुए वह आगे बढ़ना

---

[4] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 80

चाहता है। उसका यह विद्रोह केवल बौद्धिक ही नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी है। डॉ. नरेन्द्र मोहन ने कविता की वैचारिक भूमिका समझाते हुए लिखा है कि "आज की कविता में पाया जानेवाला विद्रोह केवल काव्यगत विद्रोह या भावुक प्रतिक्रिया मात्र नहीं बल्कि रचना के पक्ष में एक दर्शन है।"[5] नेपाली के साहित्य में अस्वीकृति, आक्रोश और विद्रोह का दर्शन होता है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण ही कारगर साबित होता है। परिणामस्वरूप उनकी कविता में विसंगति का दर्शन हुए बिना नहीं रहता। जहाँ-जहाँ इस तरह की विसंगतियाँ दिखलाई दीं, नेपाली ने न केवल उस पर ऊँगली रखकर रखकर निर्देश दिया, बल्कि उसके विरोध में विद्रोही मुद्रा अपनाते करते हुए अपनी कविता के माध्यम से उसे अभिव्यक्त किया। यह विद्रोह उनके लिए केवल विद्रोह नहीं था, एक औजार भी था। वैचारिक सत्ता का हिस्सा था, जो बदलाव की चेतना को तीव्रतर करने में अहम् भूमिका निभा रहा था। इसके लिए कवि इस भय से भी दूर रहता है कि—

"चाहे हो मेरे विरुद्ध में भावी का सारा निर्णय
चलता रहूँ राह पर अपनी, जग में मचता रहे प्रलय"[6]

3.4. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

साहित्य के सन्दर्भ में विचार व्यक्त करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य के हित की रक्षा को वह सबसे बडा सत्कार्य मानते हुए लिखा है, "सारे प्रतीयमान विरोधों का सामंजस्य एक ही बात से होगा, मनुष्य का हित। हमारे समस्त प्रयत्नों का लक्ष्य-मात्र वही मनुष्य है। उसको वर्तमान दूर्गति से बचाकर आत्यन्तिक कल्याण की ओर उन्मुख करना ही हमारा लक्ष्य है, यही सत्य है, यही धर्म है। सत्य वह नहीं जो मुख से बोलते हैं— सत्य वह है जो मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण के लिए किया जाता है।"[7] गोपाल सिंह नेपाली ने भी

---

[5] सक्सेना, भुवनेश्वरी चरण, *आधुनिक हिन्दी निबन्ध*, पृष्ठ 18

[6] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 21

[7] गुप्त, राजकुमार (सम्पादक), *साहित्य संगम : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी*, पृष्ठ 17 (डॉ. विजेन्द्र स्नातक का लेख)

मनुष्यता को प्रधान लक्ष्य माना और अपनी कविताओं में मानव-उद्धार का लक्ष्य साधने का प्रयास किया—

"देखो सोचो समझो सम्भलो
मानव, अब न शिकार बनो तुम!
अच्छा नहीं, स्वयं अपना ही
जग में कारागार बनो तुम!
जागो अब नवयुग मानव,
संघर्ष का एक अंग बन ,
मानवता अगाध सागर है,
लहरो-लहराओ तरंग बन;"[8]

साहित्य किस सीमा तक और किस प्रकार समाज को प्रभावित करता है और सामाजिक परिवर्तन में अपनी अहम् भूमिका निभाता है। यह दोहरा प्रश्न साहित्य के सन्दर्भ में अनेक मूलभूत मुद्दों को उठता है। ये मुद्दे न केवल साहित्य के उद्देश्य एवं प्रभाव से सम्बन्ध रखते हैं, बल्कि साहित्य स्वभाव और उसके चरित्र के प्रति भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। साहित्य के उद्देश्य के सन्दर्भ और उसके प्रयोजन के सन्दर्भ में प्राचीनकाल से लेकर आज तक काफी चर्चाएँ होती रही हैं, लेकिन आज यह निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि समाज परिवर्तन की दिशा में साहित्य बहुत बडा कार्य कर सकता है। उसका समाज से सरोकार है। इसलिए साहित्य को समाज के उपेक्षित, पीड़ित, दलित वर्ग का पक्षधर बनना जरूरी है। समाज से अलग रहकर साहित्य की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। उसे समाज की चिन्ता को दूर करने में अपना हाथ बँटाना चाहिए। इस प्रकार की एक विचारधारा जो इस समय समाज में प्रचलित होती दिखाई देती है, निश्चित ही यह आधुनिक युग की देन है और इस विचारधारा की स्थापना में आधुनिक विचारकों के चिन्तन का गहरा प्रभाव रहा है। नवजागरण के आरम्भिक विचारकों से लेकर गाँधी, नेहरू तथा लोहिया जैसे भारतीय

---

[8] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 70

विचारकों ने अपने युग के लिए आवश्यक परिवर्तन को पहचाना और उसे पाने के लिए प्रयास भी किया। रूसो, वाल्टर, मार्क्स व लेनिन जैसे चिन्तकों के विचारों ने समाज के परिवर्तन को नई रौशनी प्रदान की। लेखकों ने उनकी विचारधारा से प्रभावित होकर उस परिवर्तन की इच्छा अपनी कविताओं में जताई और नए युग का आह्वान किया।

3.5. सामाजिक परिवर्तन बनाम मानसिक परिवर्तन का आरम्भ

सामाजिक परिवर्तन की सर्वप्रथम पहचान मानसिक परिवर्तन से उत्पन्न होती है। जहाँ कहीं स्थापित मान्यताओं के प्रति मनुष्य के मन में शंका, प्रश्न और नकार उत्पन्न हो वहाँ, परिवर्तन की प्रक्रिया का आरम्भ होना स्वाभाविक है। आधुनिक साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के विविध सन्दर्भ और उसके बहुमुखी चित्र उपलब्ध होते हैं। नवजागरणकालीन लेखक (भारतेन्दु मण्डल के लेखक) ने औपनिवेशिक सत्ता के शोषण व लूट की पहचान की साथ ही अपनी सामाजिक-व्यवस्था को दीमक की तरह खोंखला कर रहे कुरीतियों को भी समझने तथा नए युग में उसे त्यागने के लिए कविताएँ लिखीं। छायावादोत्तर कवियों ने गाँधी और मार्क्स के चिन्तन से शक्ति पाकर सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में अपनी अहम् भूमिका का निर्वाह किया। वे परिवर्तन का दर्शक या लेखा-जोखा रखनेवाला ही नहीं वरन् वह परिवर्तन की प्रक्रिया का सक्रिय सहगामी भी बनना चाहते थे। इसी बिन्दू पर आकर साहित्य और सामाजिक परिवर्तन का गहरा रिश्ता एक आन्तरिक सम्बन्ध में बदल जाता है।

3.6. परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता और साहित्य

साहित्य जीवन के प्रांगण में ही पनपता है। साहित्य के लिए आवश्यक सामग्री भी जीवन से मिलती है। जीवन के हजारों रंग साहित्य में साकार रूप धारण करते हैं। इन विविध रूपों के प्रस्तुतिकरण या अभिव्यक्ति में कलात्मकता की आवश्यकता होती है। लेकिन कलात्मकता का आग्रह अनुचित ही समझा जाना चाहिए। इसके समर्थन में वर्सफोल्ड के विचारों को उद्धृत किया जा सकता है— “संसार की विचार सम्पत्ति में नवीन चिन्तन का एक कण भी प्रदान करना, किसी भी साहित्यिक कृति के लिए सर्वाधिक गौरव और महत्त्व की बात है।

इस नवीन चिन्तन-कण को इस रमणीय ढंग से प्रस्तुत करना कि वह पाठक की कल्पना-शक्ति को प्रभावित करके उसे उल्लसित कर दे, किसी साहित्यकृति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वही साहित्य की श्रेष्ठता की अन्तिम कसौटी मानी जानी चाहिए। साहित्य श्रेष्ठता का मूल आधार उसका अपना सत्य होता है। सत्य से आँखें फेर कलात्मकता के आवरण में लिप्त होनेवाला साहित्य, साहित्य नहीं माना जा सकता।“[9]

इस सत्य के ग्रहण, आग्रह एवं अभिव्यक्ति के लिए साहित्य आवश्यक है। साहित्य में प्रतिबिम्बित जीवन का यह विविधांगी सत्य ही जीवन की सही-सही पहचान करा देता है। साहित्य समाजशास्त्र या राजनीति का विकल्प नहीं हो सकता परंतु समाज से या अपने परिवेश से कटकर अपनी महत्ता को भी बचा नहीं सकता।

साहित्य और समाज के घनिष्ठ एवं गहरे सम्बन्ध को अनादि काल से किसी ने नकारा नहीं है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में एक आदर्श सामाजिक-व्यवस्था का चित्रण कर अपने दृष्टिकोण के अनुसार समाज के विभिन्न पहलुओं का विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया कि मानव समाज किस पथ का अनुसरण करने से पूर्ण सन्तोष और सुख का अनुभव कर सकता है। तुलसी ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रामराज्य और राम के परिवार को मानव समाज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। इसका कारण यह है कि “कवि वास्तव में समाज की अवस्था, वातावरण, धर्म-कर्म, रीति-नीति तथा सामाजिक शिष्टाचार या लोक-व्यवहार से ही अपने काव्य के उपकरण चुनता है और उनका प्रतिपादन अपने आदर्शों के अनुरूप ही करता है। साहित्यकार भी उसी समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिस समाज में वह जन्म लेता है, जिस समाज में वह जीता है। वह अपनी समस्याओं का सुलझाव अपने आदर्शों की स्थापना अपने समाज के आदर्शों के अनुरूप ही करता है। जिस सामाजिक वातावरण में उसका जन्म होता है, उसी में उसका शारीरिक

---

[9] वर्सफोल्ड, डब्लू. बी., *साहित्य का मूल्यांकन* (अनुवादक : रामचन्द्र तिवारी), पृष्ठ 111

बौद्धिक और मानसिक विकास भी होता है।"[10] कवि नेपाली ने कविता के सन्दर्भ में लिखा है—

"कवि ने जो कुछ जाना
कवि ने जो पहचाना
बनता है वह छन्द-छन्द में प्राण-प्राण का गाना
हृदय-हृदय का गाना
लोक-लोक का गाना
बनता है वह भाव-लहर में उठता हुआ जमाना"[11]

इन सबका अभिप्राय यही है कि कभी भी सामाजिक सन्दर्भों से हटकर हम किसी चीज को नहीं देख सकते। साहित्य और साहित्यकार अपने चारों ओर के परिवेश के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। हमें यह मालूम होना चाहिए कि रचनाकार का व्यक्तित्व सामाजिक घात-प्रत्याघातों में आकार ग्रहण करता है। उसके अपने आन्तरिक द्वन्द्वों का सम्बन्ध कहीं न कहीं बाह्य द्वन्द्वों से जुड़ा हुआ होता है। अत: केवल अन्तर्मन को चित्रित करने का दावा कर, बाहय जगत् से मुख मोड़ा नहीं जा सकता। कवि नेपाली ने इस अन्तर-बाह्य का समन्वय करते हुए लिखा है—

"कवि का जीवन एक जगत है जग के भीतर जग के बाहर
जग का पुण्य जहाँ सुन्दर है और पाप भी नहीं असुन्दर
जन्म जहाँ पर मधुर राग है साधा हुआ जग की वीणा पर
मरण जहाँ पर करुण गीत है रुंधा हुआ जिससे जग का स्वर
कविता है कवि-हृदय-क्षितिज पर बालारुण का आना
जीवन की प्राची में उठकर मधुर-मधुर मुस्काना"[12]

---

[10] सक्सेना, भुवनेश्वरी चरण, *आधुनिक हिन्दी निबन्ध,* पृष्ठ 21 (गुलाबराय बाबू, साहित्य और समीक्षा)

[11] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन,* पृष्ठ 25

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि समाज के दु:खों से अपरिचित और उदासीन रह नहीं सकता। उसे सजग और सचेत रहकर एक जागरूक प्रहरी की भूमिका निभानी ही पड़ती है। वह सचेत जीवन जीकर लोगों को सही दिशा देने एवं उनका मार्ग प्रशस्त करने में अपनी अहम् भूमिका निभाता है। कवि गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी इस भूमिका का निर्वाह करते हुए समाज के युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त किया है।

3.7. युगान्तर की चेतना एवं नवीनता की कल्पना

काल प्रवाह में मानव प्रगति के नव-नव मार्ग प्रशस्त होते हैं। नव्यता की ओर अग्रसर मानव विगत की तुलना में नि:सन्देह आगे बढ़ता है। इस उपक्रम में उसकी सोच व जीवन दोनों में परिवर्तन होने लगते हैं। स्पष्ट है कि वह किसी भी परिस्थिति में बहुत लम्बे समय तक टिके नहीं रह सकता और न ऐसे टिके रहना श्रेयकर है। यथास्थिति का बना रहना तो जड़ता का सूचक है। संसार शब्द का अर्थ तो सतत परिवर्तनशीलता है। हम इस परिवर्तन को समकालीन परिस्थितियों के रूप में देख सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं कि हमारा समकालीन परिदृश्य पूर्व की तुलना में कुछ नया-नया-सा है। परिस्थितियों में परिवर्तन का यह क्रम भीतर ही भीतर अंगड़ाई लेता रहता है। इस प्रकार परिस्थितियाँ एक संक्रान्ति में से गुजरती हैं जहाँ पूर्व की परिस्थितियाँ धीरे-धीरे निष्क्रियता को प्राप्त होने लगती हैं।

संक्रान्ति दौर मैं परिस्थितियों में यह परिवर्तन धुँधला और अस्पष्ट होता है और कदाचित इसी कारण साहित्य में प्रयोगों की आवश्यकता सामने आती है। ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ अपने स्वरूप को उत्तरोत्तर स्पष्ट करती चलती हैं, त्यों-त्यों साहित्य के लिए युगीन भावनाएँ भी स्पष्ट होने लगती हैं।

नेपाली की कविता उत्तर छायावादी दौर की संक्रान्त परिस्थितियों की देन है। छायावाद के अवसान के साथ हमारी राष्ट्रीय और हम पर पड़ रहे प्रभावों से जुड़ी अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में एक बड़ा परिवर्तन हो रहा था, जिसे उस समय तत्काल स्तर पर समझना

---

[12] वही, पृष्ठ 25

कठिन है। यह परिवर्तन राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक आदि सभी स्तरों पर प्रकट होने लगा था, किन्तु थोड़ी अस्पष्टता के साथ। नेपाली ने इस धुंधले यथार्थ का दर्शन किया। इसलिए स्वाभाविक था, प्रकृति की गोद में फूटा उनका कंठ छायावादी प्रकृति सौन्दर्य से अलग एक नए युग का इन्तजार कर रहा था। जिसमें स्वतन्त्रता की कामना हो, स्वतन्त्रता के लिए क्रान्ति करने का उमंग हो। नेपाली ने उमंग की भूमिका में लिखा है कि "बचपन की बात मैं नहीं करता, पर जब होश आया तो ब्रजभाषा की 'कोमल-कान्त-पदावली' घूँघट काढ़े सामने खड़ी थी। एक-आध को मैंने पसन्द किया, गाया भी। पदावली अभी मेरे निश्चय की बाट जोह रही थी कि पीछे से समय ने सीटी दी। मैं मुड़ा, उसकी ओजपूर्ण बातें सुनीं। न कोई मोह, न कुछ लालच; कर्तव्य की ज्योति से उद्भासित प्रशस्त जीवन मार्ग। मैं बड़ा आकृष्ट हुआ। इस नवीन आलोक से मुझे बड़ी ख़ुशी हुई।"[13]

नेपाली ने इस नवीन आलोक की प्रतीक्षा अपने आरम्भिक काव्य से ही शुरू कर दी थी।

"अरे युगान्तर, आ जल्दी अब खोल, खोल मेरा बन्धन
बँधा हुआ जंजीरों से तड़प रहा कब से जीवन"[14]

छायावादी काव्य के सम्बन्ध में यह धारणा प्राय: व्यक्त की जाती है कि प्रस्तुत काव्यधारा युग-प्रतिबिम्बन के उत्तरदायित्व को निभा नहीं पाई, क्योंकि 'स्व' के वृत्त में ही सीमित इस काव्यधारा के कवियों के पास इतना अवकाश कहाँ कि वे युगीन चेतना को अभिव्यक्ति दे पाते ? छायावादी कवि जिस रहस्यमयी दुनिया में खोए हुए थे नेपाली ने सन् 1934 में प्रकाशित अपने पहले काव्य संग्रह में स्पष्ट कर दिया था कि वह युग समाप्त हो गया अब युगानुसार नवीन चेतना का साक्षात्कार आवश्यक है।

"तू खोज रहा वह तब का जग
जिसको मग ने कर दिया विलग
अब तो रे जग छवि से जगमग है अमर लोक-सा ही लगभग

---

13 नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, भूमिका

14 वही, पृष्ठ 18

हो जा नवीन या हो विलीन

यह तो रे युग जग का नवीन”[15]

उमंग की भूमिका प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखी और इस बात को माना कि “नवयुग का भी आपने मुक्त-हृदय से स्वागत किया है, उससे ‘खोल-खोल मेरे बन्धन’ कहकर आप सन्तुष्ट नहीं हो गए हैं, प्रत्युत विश्व-व्यापी परिवर्तन भी चाहते हैं।”[16] पन्त ने उनकी कविता को उद्धृत किया—

आ जा, ला दे कण-कण में अब फिर से ऐसा परिवर्तन

मरता जहाँ आज यह जीवन, वहाँ करे यौवन नर्तन”

आगे चलकर पन्त ने सन् 1936 में प्रकाशित ‘युगान्त’ में इस बात को दुहराया—

“निष्प्राण विगत-युग! मृतविहंग!

जग-नीड़, शब्द औ’ श्वास-हीन,

च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों-से तुम

झर-झर अनन्त में हो विलीन!”[17]

छायावादी कविता में दुःख के बादल छाये हुए थे, ‘नीरस विराग का फन्द’ उसे जकड़ रखा था। दूसरी तरफ आजादी के लिए चल रहा आन्दोलन एक नई उर्जा की माँग कर रहा था। नेपाली ने युगीन यथार्थ का दर्शन कर उस नीरस फन्द को काट सोई उमंग को जगाने का प्रयास किया।

“सोई उमंग उठ जाग-जाग

जीवन से क्यों इतना विराग

** ** **

---

[15] वही, 16

[16] वही, भूमिका

[17] http://kavitakosh.org/kk/द्रुत_झरो_जगत_के_जीर्ण_पत्र_/_सुमित्रानंदन_पन्त

नीरस विराग का काट फन्द

रे खोल हृदय का द्वार बन्द

उकसा-उकसाकर मधुर छन्द बैठा खिड़की में मन्द-मन्द"

हालाँकि स्वयं छायावादी कवियों को भी युग का यथार्थ अपने नीरस छन्द को छोड़ने पर विवश कर रहा था। पन्त ने भी युगान्त में जीर्ण पत्र के जल्दी झड़ने की कामना की—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!

हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!

हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,

तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन!!"[18]

स्वयं महाकवि निराला ने सन् 1930 के पहले भिक्षुक, बादल-राग आदि कविताओं में सामाजिक यथार्थ और राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति दी और धीरे-धीरे वे प्राकृतिक रहस्यवाद और आध्यात्मिक रहस्यवाद से हट कर मानवतावाद या यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की ओर अग्रसर होते गये।

नेपाली नई चेतना का साक्षात्कार कर अभिजात्य की कृत्रिमता को त्याग प्रकृति के उस अंश को कविता में लाते हैं, जिन्हें अब तक उपेक्षित रखा गया था। उनकी कविता में 'जूही की कली' के स्थान पर 'पीपल के पत्ते', 'बेर' आदि महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। नेपाली ने 'बेर' कविता में अभिजात्य से मुक्त बेर के सहज सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है—

"है जंगल में इनका प्रवास

इसलिए नहीं इनमें सुवास

पर बिना किए कुछ भी प्रयास

पा जाते ये कैसे मिठास

---

[18] वही

करते पसन्द जो धन-कुबेर
देहरादून के मधुर बेर
यदि छोड़ सेव किशमिश अनार
इनको चखने का हो विचार
तो ला-ला वन से बार बार
सुख से अपार यों ही उधार"[19]

नेपाली ने अपनी कविताओं में देश की गुलामी और आम जनता की समस्याओं को केन्द्रीय विषय बनाया। उससे मुक्ति के लिए उमंग जगाने का प्रयास किया। उन्होंने उन सभी रीतियों-रिवाजों को तोड़ने का निश्चय किया जो मनुष्यता एवं उसकी स्वतन्त्रता को घात करती हैं। उन्होंने मानव-मुक्ति तथा राष्ट्र मुक्ति के लिए नवीन कल्पना करने की प्रेरणा दी —

"अब घिस गईं समाज की तमाम नीतियाँ
अब घिस गईं मनुष्य की अतीत रीतियाँ
हैं दे रहीं चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ
निज राष्ट्र के शरीर के शृंगार के लिए
तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो"[20]

नेपाली की नई कल्पना में राष्ट्र मुक्ति का सवाल एवं मानव मुक्ति का सवाल अहम है।

3.8. भारतीय समाज का स्वरूप

आज भी भारत की सामाजिक संरचना जाति-व्यवस्था पर आधारित है। यहाँ स्त्री-पुरुष का भेद भी बहुत बड़ा है। व्यवस्था द्वारा बनाए गए नियम प्रायः कमजोर मनुष्य के शोषण के लिए हैं। साहित्य में इसे तोड़ने का प्रयास आदिकाल से ही चला आ रहा है किन्तु नवजागरण काल से एक आन्दोलन के रूप में सुधार कार्य किए जाने लगे। 18वीं शताब्दी के

---

[19] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 62-63

[20] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 11

उत्तरार्ध में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति एवं उदारवादी विचारधारा के उदय के परिणामस्वरूप तथा भारत में पश्चिमी शिक्षित लोगों के मुख्यधारा में शामिल होने तथा सामाजिक और धार्मिक सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के प्रति उनकी लालसा ने भारत में सामाजिक व धार्मिक संरचना में परिवर्तन का प्रारूप तैयार किया। ब्रिटिश बौद्धिक वर्ग द्वारा भारतीय धर्म, परम्पराएँ, जाति, मूर्तिपूजा तथा हिन्दू रीति-रिवाजों की आलोचना शुरू हुई। पश्चिमी शिक्षित उदारवादी भारतीय सुधारकों ने भी कुछ ऐसा ही विचार प्रस्तुत किया। सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने जैसे विचारों ने भारत में राजा राममोहन राय जैसे अनेक विचारकों को भारत में सुधारवादी आन्दोलन शरू करने की दिशा में प्रोत्साहित किया जिसकी सुखद परिणति सती-प्रथा, देवदासी-प्रथा, इत्यादि कुरूतियों को प्रतिबन्धित करने तथा विधवा-विवाह को प्रोत्साहित करने के रूप में सामने आया। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के पुनर्जागरण आन्दोलन ने हिन्दुवाद को समकालीन आवश्यकताओं के अनुसार पुनः खोजने तथा पुनर्व्याख्यायित करने तथा इसमें व्याप्त बुराइयों एवं तर्कहीन व्यवहारों जैसे-जातीय भेदभाव, बालिका शिशु हत्या को समाप्त करने में सहायता की।

आगे चलकर कम्पनी के शासन के खिलाफ सन् 1857 का विद्रोह हुआ, जिसे अंग्रेजों ने दबा दिया और विश्व-मंच पर इसका सबसे प्रमुख कारण भारतीयों के धर्म पर आधारित तर्कहीन रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों में कम्पनी का हस्तक्षेप बताया। इसके अतिरिक्त विद्रोह के समय प्रदर्शित हुई, एक अखिल भारतीय एकता की भावना ने अंग्रेजी शासन को भारत के सन्दर्भ में अपने नीतियों पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया। अब सरकार की नीति भारत में वर्गीय, धार्मिक एवं जातीय विभाजन को उभारने और उसके आधार पर अपनी नीतियाँ तय करने की हो गई। यह नीति 'फूट डालो और राज करो' के खतरनाक मंसूबों पर आधारित थी जिसका भारत के राष्ट्रीय एवं राजनितिक भविष्य पर बहुत ही खतरनाक प्रभाव पड़ा तथा उसकी परिणति अन्ततः साम्प्रदायिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में सामने आया। सन् 1857 की क्रान्ति जिसे भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम कहा जाता है उसमें किसानों, मजदूरों तथा स्त्रियों ने बराबर की भागीदारी निभाई। इससे स्पष्ट था कि यदि

पुनः ये तीनों वर्ग अपना जोर लगाएँ तो ब्रिटिश सत्ता की नींव हिल जाएगी। इस क्रान्ति की एक बड़ी कमजोरी दलितों का अंग्रेजों के पक्ष में होना था। देश की बड़ी आबादी दलितों की थी। मानवता के आधार पर दलितों की दशा में सुधार होना आवश्यक था किन्तु आजादी की लड़ाई में उनको साथ लेना भी अनिवार्य था। इसलिए आवश्यक था उनके शोषण जाल को तोड़ा जाए और उन्हें समाज के मुख्यधारा में लाकर आजादी के आन्दोलन का हिस्सा बनाया जाए।

गाँधी तथा मार्क्स के विचारों के प्रभाव में पुनः बुद्धिजीवियों का ध्यान इन चारों वर्गों की दशा की ओर गया। और इनके सामाजिक स्थिति को लेकर चिन्तन-मनन शुरू हुआ। इन सब के बीच कवि नेपाली ने अपनी लेखनी पकड़ी और इनकी दशा-दुर्दशा की यथार्थ अभिव्यक्ति शुरू की। चित्र कविता में उन्होंने इनकी पीड़ा के छले दिखाते हुए लिखा—

"क्या समझो, है पीड़ा कितनी इन पाँवों के छालों में
मिलकर देखो जननी के हित भस्म रमानेवालों में"[21]

3.8.1. ग्रामीण जीवन का यथार्थ

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ किसानों के जीवन स्तर का सवाल सीधे अस्मत और उसकी ऊँची राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ है। नेपाली इसे बखूबी जानते थे कि किसान राष्ट्र की धुरी है, शक्ति और सम्पन्नता की अमानत है। नेपाली छायावादोत्तर दौर के कवि होने के कारण छायावाद की उन विशेषताओं-- व्यक्तिवादी, पलायनवादी, कल्पना की अतिरेकता के स्थान पर समष्टि के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में विश्वास रखते थे। उनके काव्यलोक और वैचारिक पृष्ठभूमि के पार्श्व में व्यक्ति के जीवन मूल्यों के सत्य की व्यावहारिकता निहित है। वे राष्ट्र की समस्याओं पर गहन नजर रखते हैं, उनका सत्यान्वेषण करते हैं और समाधान खोजने का सच्चा प्रयास करते हैं।

---

[21] नेपाली, गोपाल सिंह, उमंग, पृष्ठ 88

नेपाली का जन्म बिहार के ऐसे क्षेत्र में हुआ था जहाँ किसानी आज भी जीवकोपार्जन का मुख्य आधार है। जब कवि नेपाली के मानस का निर्माण हो रहा था, चम्पारण में किसानों ने गाँधी जी से मिलकर सत्याग्रह आन्दोलन कर दिया। यही कारण है कि कवि का जन्म भले ही एक सैनिक के घर हुआ लेकिन आसपास के वातावरण में उसने किसान को ही देखा, उनकी समस्याओं को देखा।

किसान देश का अन्नदाता है। ग्राम प्रधान भारत और उसमें निवसित किसानों का बहुआयामी विकास ही राष्ट्र की मौलिक प्रगति का हेतु है। बेतिया से दूर मुम्बई जाने पर भी नेपाली चम्पारण के मेहनतकश किसानों के छवि-चित्र उनके मानस की भाव भूमि में सदैव पल्लवित और पुष्पित होते रहे। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में नेपाली भले ही राजनेता की भांति न जुड़े रहे किन्तु साहित्य के माध्यम से सामाजिक दुर्व्यवस्था को उजागर करते रहे। अंग्रेजों द्वारा हो रहे किसान के शोषण के खिलाफ आवाज उठाते रहे।

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत का गाँव अपने आप में समृद्ध था। गाँव हमारे अर्थतन्त्र की धुरी थे, जिनके चारों ओर कृषि उद्योग व्यापार घूमते थे। अंग्रेजों के आने से पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल सत्य आत्मनिर्भर गाँव था, जिसमें किसान हल व बैल से खेती करते थे और दस्तकार साधारण औजार की मदद से उत्पादन करते थे। *इण्डस्ट्रियल कमीशन* में लिखा हुआ है कि 'सन् 1757 में जब क्लाइव ने मुर्शिदाबाद नगर में प्रवेश किया तो वह वहाँ के वैभव को देखकर चकित रह गया।'[22] नेपाली को गाँव की संस्कृति भी रिझाती रहती थी। बेतिया में रहते हुए उन्होंने एक गीत में गाँव के प्रति अपने असीम प्रेम को अभिव्यक्त किया।

"है आसपास वन में बिखरे कितने कुटीर रे कई गाँव
खेलते यहाँ आँगन में है मानव स्वभाव के मधुर भाव
संगीत मधुर इसके जीवन का गाय, भैंस की घण्टी में

---

[22] *Industrial Commission Report*, 1916-18, p.249

लौकी के चौड़े पातों में लहराते इनके मनोभाव"[23]

नेपाली वर्तमान गाँव को अंग्रेजों के आने से पहले के गाँव के रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने लिखा है–

"जैसा था वह नन्दनवन तब पहले के इस जग में!
वैसा था फिर नन्दनवन कब पहले के इस जग में?
वैसा है फिर नन्दनवन कब अब, अब के इस जग में?
वैसा होगा नन्दनवन कब, फिर कब के किस जग में?"[24]

पूरे देश की व्यवस्थाओं का ढाँचा कृषि पर टिका हुआ था। नेपाली का मानना था कि कृषि का मालिक है किसान, उसे उसका पूर्ण हक मिले, उसका जीवन स्तर ऊँचा उठे, उसकी जीवन वाटिका में सुन्दर और सुगन्धित फूल खिलें तथा पुरुषोचित भावों के पल्लवन से जीवन सत्यों का साक्षात्कार हो सके। लेकिन अंग्रेजों के द्वारा बढ़ाए गए लगान से किसानों की स्थिति दयनीय हो गई थी। कवि नेपाली ने पराधीन 'भारत का मानचित्र कृषकों की कृश काया'[25] में देखा और उनकी दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा—

"लटक रहा है सुख कितनों का आज खेत के गन्नों में
भूखों के भगवान खड़े हैं दो-दो मुट्ठी अन्नों में"[26]

किसानों की दुर्दशा को देखते हुए जनता भी चाहती थी कि गरीब किसानों को कुछ राहत मिले, उनका कर्ज घटे, नाजायज कर्ज की वसूली रोकी जाए, कुटीर उद्योग धन्धों तथा बड़े उद्योगों को भी बढ़ाया जाये, न्याय व्यवस्था सही हो, ग्राम पंचायतों की फिर से स्थापना की जाए... सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारी जाये तथा श्रम को उचित सम्मान दिया

---

[23] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 60
[24] नेपाली, गोपाल सिंह, *पंक्षी*, पृष्ठ 17
[25] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 88
[26] वही, पृष्ठ 87

जाए।[27] जनता की माँग को देखते हुए कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में किसानों को प्राथमिकता दी और वायदे के अनुस।र अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करना शुरू कर दिया।

जवाहरलाल नेहरू बेकारी का समाधान उद्योग धन्धे स्थापित करने में मानते थे।[28] शहरों में बड़े पैमाने पर उत्पादन और गाँव में छोटे पैमाने पर उद्योग साथ-साथ चल सकते हैं। जिससे लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिल जायेगा और गरीब व्यक्तियों के जीवन स्तर में कुछ परिवर्तन आयेगा। सरकार ने बेरोजगारों के लिए 50 करोड़ की धनराशि से राष्ट्रीय कोष का निर्माण किया। राष्ट्रीय रोजगार नियम की स्थापना करके शिक्षित बेरोजगारों को तकनीकी सहायता प्रदान करने की योजना बनाई।

उद्योग स्थापित भी हुए लेकिन इसका प्रतिफल उलटा मिलने लगा। गाँवों की स्थिति और बदतर होने लगी। नेपाली ने 'जल रहा है गाँव' कविता में इस यथार्थ को रेखांकित करते हुए लिखा है—

"यह किसी किसान की नहीं चिलम की आग
नहीं किसी फकीर की धरम-करम की आग
ये कहीं से आग की आईं चिनगारियाँ
धधक रही है झोंपड़ी, सुलग रही क्यारियाँ
आज दुन्द बाँधकर
बस्तियाँ बरबाद कर
पश्चिमी वतास में यह धुआँ उठा है जो
जल रहा है गाँव

---

[27] पाण्डे, एम.एन., *हैज कांग्रेस फैल्ड ए हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ दि इयर*,1918-1939 , (स्टुडैन्ट ऑफ पब्लिक अफेयर्स, जे.बी. कृपलानी)

[28] कुलकर्णी, सुमित्रा, *अनमोल विरासत, (कथा गांधी और आजादी की)*, पृ.87-88

जल रहा है गाँव"[29]

नेपाली को यह दुःख भी था कि उस समय इस आग को बुझाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जा रहा था। उन्होंने अपने दुख को अभिव्यक्त करते हुए लिखा—

"उथला-उथला हो गया है गाँव का कुआँ
सारा पानी पी गया है आग का धुआँ
ठोकरों के सामने लुढ़क रहे हैं ढोल
कोयला और राख में जिन्दगी का मोल"[30]

नेपाली को इस नव युग से कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन इस औद्योगिक विकास में भारत की आत्मा ही मर जाए यह भी उन्हें मंजूर नहीं था। उन्होंने पूछा—

"ऊँचे-ऊँचे महल और भी
ऊँचे हों आपत्ति नहीं कुछ,
किन्तु है क्यों, उजड़े
इन महलों के लिए ग्राम ही?
आज जल रही हैं झोपड़ियाँ,
देख रहे हैं महल तमाशा!
उनकी हँसी और दिलचस्पी,
इनके आँसू और निराशा!"[31]

ग्राम की दुर्दशा को देख दुखी कवि नेपाली जब भी राष्ट्र-मुक्ति के लिए यौवन का आह्वान करते हैं, उनका ध्यान ग्राम की ओर हमेशा रहता है। इसलिए उन्होंने लिखा है—

"उठो दूर करना है तुझको

---

29 नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 87

30 वही, पृष्ठ 87-88

31 नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा* पृष्ठ 69

जग-जीवन की अशान्ति भी!
जो जीवन अपमानित ही है
उसका भी क्या मोह करोगे,
रौंदे-कुचले आज जा रहे
फिर कब तुम विद्रोह बनोगे!
चलो दूर गाँव-खेतों में,
गिरी झोपड़ी सीधी कर दो,"[32]

देश जब आजाद हुआ तो हर आदमी को यह विश्वास हो गया कि दुःख के बादल अब छंट जाएँगे। स्व-शासन में हर जनता बराबर होगी। हमारी सरकार हमारी उन्नति के लिए काम करेगी। जब भारत के विकास के लिए तत्कालिक प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में केंद्रीय मन्त्रीमण्डल के एक प्रस्ताव द्वारा सन् 1950 में योजना आयोग की स्थापना की जा रही थी। नेपाली ने जुलाई 1950 में 'पंक्षी बोलो पिंजड़ा खोलो' कविता में देश का ध्यान किसानों की दुर्दशा की ओर खींचने का प्रयास किया। उन्होंने लिखा—

"सूरज से घर-घर उजियाला
नभ में सबकी दीपक-माला
पर निर्धन का निर्धन है
अन्न जगत को देनेवाला
कटे खेत चिल्लाएँ, फसलें लें जाने वाले, सुन तो लो
धरती का धन घर-घर बाँटो, कंचन का दरवाजा खोलो
पंक्षी बोले, पिंजड़ा खोलो, मधुवन का दरवाजा खोलो"[33]

[32] वही, पृष्ठ 71
[33] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 100-101

योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजना (1951-1956) बनाई, जिसमें उन्होंने समाजवादी आर्थिक मॉडल को आगे बढ़ाया। इस परियोजना में कृषि क्षेत्र पर विशेष ज़ोर दिया गया; क्योंकि उस दौरान खाद्यान्न की कमी गम्भीर चिन्ता का विषय थी।[34]

नेपाली ने इस योजना के लिए प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू को तारणहार के रूप में देखा।

"निर्धन का अरमान जगाएँ, बाँटें स्वप्न फकीरों को
दुखियारी का भाग्य न समझें, युग-युग घिसी लकीरों को
सींचे धरा, नहर खुदवाएँ
खोलें बाँध, नदी बन्धवाएँ
कुटी महल को पास बुलाएँ
कैसे क्रान्ति बुझे भारत में, जब अंगार जवाहरलाल
तीर मिले, मझधार बुझाए, तारनहार जवाहरलाल"[35]

इस पंचवर्षीय योजना का लाभ गरीब किसानों तक नहीं पहुँचा था कि तभी 'प्रो. पी. सी. महालनोबिस' के मॉडल पर आधारित द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961) लागू की गई, जिसका लक्ष्य 'तीव्र औद्योगिकीकरण' था।[36]

प्रधानमन्त्री ने जो निर्धन के अरमान जगाए थे, फकीरों को स्वप्न बाँटे थे। वे सारे हवाई रह गए और निर्धन निर्धन रहा। राजनीतिक योजनाओं का लाभ सिर्फ शक्तिशाली वर्ग को मिला। ऐसे में नेपाली का सत्ता से मोहभंग हो गया। उन्होंने इस पूरे तन्त्र को तमाशा घोषित कर दिया—

---

[34] रेड्डी, के. कृष्ण, *भारत का इतिहास*, पृष्ठ 263

[35] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 69

[36] रेड्डी, के. कृष्ण, *भारत का इतिहास*, पृष्ठ 264

“यदि दूर कुटी के घेरे से
आजादी की परिभाषा
गणतन्त्र कहो या एकतन्त्र
यह सारा तन्त्र तमाशा”[37]

नेपाली को ग्राम के प्रति असीम प्रेम था। इसलिए ग्राम की दुर्दशा पर उनका मान क्षुब्ध हो जाता। उन्होंने स्वीकार किया है कि उनकी कविता की सामग्री बहुत कुछ ग्राम से ही मिलती थी उन्होंने लिखा है—*कविता है आँखों के आगे बिखरा दाना-दाना / मचल-उछल भर रात अटपटा ग्रामीणों का दाना।*[38]

3.8.2. समाज में स्त्री का स्थान

भारतीय समाज में स्त्रियों का अस्तित्व दो रूपों में दिखाई देता है—एक ‘श्रद्धा’ के रूप में है और दूसरी ‘भोग्या’ के रूप में है। भारतीय समाज में स्त्री की परिवर्तनशील एवं दयनीय स्थिति के संदर्भ में महादेवी वर्मा कहती हैं कि “अदृष्ट की विडम्बना से भारतीय नारी को दोनों ही अवस्थाओं का पूर्ण अनुभव हो चुका है। वह पवित्र देव मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी भी बन चुकी है और अपने गृह के मलिन कोने की बन्दिनी भी।”[39] देवी एवं बन्दिनी होने के बावजूद उसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व कभी नहीं रहा "कभी वह गुलाम रही, कभी देवी बनी, किन्तु अपने मानव स्वरूप का चुनाव वह कभी नहीं कर सकी।”[40]

“यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता।” सूक्ति वाले भारतीय समाज में स्त्रियों को अत्यन्त सम्मानित स्थान प्रदान करने के साथ-साथ उसे गुलमी की जंजीरों में भी जकड़ दिया है, यह

---

[37] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा,* पृष्ठ 86

[38] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन,* पृष्ठ 26

[39] वर्मा, महादेवी, *शृंखला की कड़ियाँ*, पृष्ठ 126

[40] बोउवार, सिमोन द, खेतान प्रभा (अनुवादक), *स्त्री उपेक्षिता*, पृष्ठ 55

एक ऐतिहासिक सच है, जैसे कि पूर्व वैदिक काल में स्त्री को पुरूष की अपेक्षा ऊँचा दर्जा प्राप्त था। उसे पुरूषों के समान समस्त अधिकार प्राप्त थे। यह युग स्त्री के लिए गौरव का युग था। पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में स्त्री की स्थिति पर सीमोन द बोउवार ने लिखा है कि "प्रागैतिहासिक यायावर मानव समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत पुरूष की इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि वह एक गुलाम कहलाये।... स्त्री एवं पुरूष सामूहिक रूप से धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अस्तित्व के सहभागी थे।"[41] लेकिन ज्यों-ज्यों समाज में नई राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था लागू होती गई, स्त्रियों का महत्त्व भी बदलता गया।

प्राकृतिक कारणों के चलते स्त्री की शारीरिक अक्षमता के परिणाम-स्वरूप उत्पादन में भी कम भागीदारी के कारण धीरे-धीरे स्त्री दोयम दर्जे की अधिकारिणी बनने की ओर अग्रसर हुई। वैदिक युग और उसके बाद स्मृतियों और पुराणों के काल में स्त्री पर लगाये गये शैक्षणिक और व्यावहारिक प्रतिबन्धों के फलस्वरूप समाज में बाल-विवाह, बहु-विवाह और सती प्रथा जैसी अनेक सामाजिक विकृतियों का जन्म हुआ, जिन्होंने भारतीय स्त्री की स्थिति को अन्दर से खोखला और निर्बल बना दिया। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में पूर्व वैदिक काल जैसा कुछ भी शेष नहीं बचा था। 'वैदिक काल में भारतीय समाज में नारी का सशक्त व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगत होता है, किन्तु उसकी दशा उत्तरोत्तर हीन होती चली रही थी।... बौद्ध काल में अनेक स्त्रियाँ निर्वाण की खोज में भिक्षुणियाँ बनी पर सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति भी उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी। मध्य युग तक मध्ययुग का आरम्भ ही मातृसत्ता की समाप्ति और नारी की पराधीनता के आधारभूत विधान से होता है, जिसमें नारी को वर्ण-व्यवस्था के निम्नतम वर्ण शूद्र के साथ ही पाप योनि में रखा गया और यही मान्यता ही पूरे सामन्ती समाज में मान्य हो गई। इस काल में ऊपर से नीचे तक स्त्री की स्थिति एक वस्तु से ज्यादा कुछ भी नहीं रह गई। अब वह केवल उपभोग की वस्तु-मात्र बनकर रह गई।

---

[41] वही, पृष्ठ 51

जिन गुणों के कारण कभी स्त्री को समाज में बहुत सम्मान और अतुल श्रद्धा मिली थी, प्रकारान्तर में वे ही त्रुटियों में गिने जाने लगे।

अब स्त्री पुरूष की सम्पत्ति का एक हिस्सा हो गई, उसका महत्त्व जमीन के टुकड़े और अन्य सम्पत्ति से अधिक न रह गया। कौमार्य अवस्था में वह अपने पिता के कठोर नियन्त्रण में रहती थी, विवाह के पश्चात पति के नियन्त्रण में और पति की मृत्यु के बाद उसे या तो आत्मदाह या अपने पुत्रों के अधीन रहना पड़ता था। ए. आर. देसाई ने *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि* में लिखा है कि "वैदिक युग के शुरू के काल को छोड़कर हरदम नारी पुरूष की अधीनता में रहती आई है। समाज में पुरूष के कुछ ऐसे अधिकार थे, उनकी कुछ ऐसी स्वतन्त्रताएँ थीं, जिनसे स्त्रियाँ वंचित थी। स्त्री और पुरूष के निजी और सामाजिक आचरण की अच्छाई-बुराई के मानदण्ड भिन्न थे।"[42]

मध्ययुगीन सामन्ती समाज में स्त्री पर धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक स्तर पर भी अनेक प्रतिबन्ध लग गये। निरन्तर उसकी अधीनता पर बल दिया गया। अब स्त्री केवल मनोरंजन का साधनमात्र या वस्तु बन चुकी थी। हर विजेता ने उस समय शत्रु राज्य की सम्पत्ति के साथ-साथ पशुओं, गुलामों और स्त्रियों को भी लूटा, क्योंकि मूलत: उसे भी सम्पत्ति ही समझा जाता था।

इस सामन्ती समाज में स्त्री की न तो अपनी कोई जाति थी, न नाम और न ही अपनी इच्छा। वह आजन्म किसी की बेटी, किसी की पत्नी, और किसी की माँ के रूप में ही जानी जाती रही। उसी से उसके पद और प्रतिष्ठा बनते थे। सामन्ती समाज में स्त्री की स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "वस्तुत: सामन्ती समाज में नारी सिर्फ एक वस्तु है, सम्पत्ति है, संभोग और सन्तान की इच्छा पूरी करने वाली मादा।

---

[42] देसाई ए. आर., *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, पृष्ठ 218

यहाँ सेवा, उपभोग और वफादारी के बदले पुरूष नारी को उसी तरह सजाता, सुरक्षा देता संवारता और संरक्षण देता है। पशुओं और स्त्रियों की वफादारी धर्म-परायणता, मालिक के प्रति जान-न्यौछावर करने की बलिदान भावना और त्याग की कहानियों से सारा मध्य-युग भरा पड़ा है यही उनका स्त्रीत्व है और यही उनका शील।"[43]

भारतीय नवजागरण से पूर्व भारत में स्त्रियाँ पूरी तरह व्यवस्थात्मक और विचारात्मक पराधीनता से घिरी हुई दिखाई देती हैं। अंग्रेजों का भारत आगमन तथा नवजागरण के सुधारवादी आन्दोलन स्त्री स्वाधीनता के पक्ष में काफी महत्त्वपूर्ण रहे। यद्यपि सीधे-सीधे अंग्रेजों ने स्त्रियों के हित में कोई काम नहीं किया, किन्तु नए आर्थिक सम्बन्धों और अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत ने अप्रत्यक्ष रूप से नारी को प्रभावित किया। भारत में स्वाधीनता आन्दोलन के लिए चलाये जा रहे समाज सुधार आदोलनों के साथ-साथ नारी मुक्ति आन्दोलन भी शुरू हो गया। इस मुक्ति आन्दोलन में स्त्रियों को सामाजिक असुरक्षा चक्र से मुक्त करने के लिए कानून में उनको भी समान अधिकार देने की बात कही गई। साथ-साथ पुरानी जड़ और अन्धी परम्पराओं को तोड़कर स्त्री को अस्पृश्यता और लैंगिक मतभेद से बाहर निकालने की भी कोशिश की गई। उन्नीसवीं शताब्दी के मानवतावादी तथा समानतावादी आवेगों से प्रेरित होकर समाज सुधारकों ने स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिए एक शक्तिशाली आन्दोलन आरम्भ किया। फलस्वरूप स्त्री की स्थिति में बहुत सुधार आया। सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के कारण सामाजिक क्षेत्र में उसके व्यक्तित्व की नई पहचान बनने लगी थी। पुरुषों की दृष्टि भी नारी के प्रति बदलने लगी।

स्त्री और पुरूष इन दोनों के अस्तित्व से ही सृष्टि का अस्तित्व है। जैसा कि महादेवी वर्मा ने कहा है कि "समाज वृक्ष के सघन मूल का पहला अंकुर स्त्री पुरुष और उनकी सन्तान से पनपा, इसे निर्मूल कर देना सम्भव नहीं हो सकेगा।"[44] सीमोन द बोउवार ने स्त्री-पुरूष

---

[43] यादव राजेन्द्र, *आदमी की निगाह में औरत*, पृष्ठ 23

[44] वर्मा महादेवी, *शृंखला की कड़ियाँ*, पृष्ठ 126

दोनों के सहयोग से ही सृष्टि का संचालन सम्भव माना है। उन्होंने लिखा है कि "नारी पृथ्वी है और पुरुष बीज रूप, नारी जल है और पुरुष अग्नि। अग्नि और जल के संयोग से ही सृष्टि का कार्य होता है।"[45] यदि पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्त्व हैं, तो समाज के संचालन में एक की सक्रियता और दूसरे की बाध्यता क्यों? गोपाल सिंह नेपाली ने नारी को समाज का आधा अंग स्वीकार किया है और उसके सहयोग से समाज के विकास की कल्पना की है। उनका मानना है कि स्त्री और पुरुष दोनों पृथक-पृथक अधूरे हैं और जब दोनों मिलते हैं तो समाज पूरा होता है। उन्होंने अपनी कविता में लिखा है—

"आधी दुनिया मैं हूँ, आधी
तुम हो मेरी रानी;
तुमने हमने मिलकर कर दी
पूरी एक कहानी"[46]

स्त्री विमर्श बीसवीं शताब्दी के चर्चित विषयों में से एक रहा है। यह विमर्श स्त्री के श्रद्धा रूप एवं वस्तु रूप दोनों का विरोध करता है।

प्रसाद ने 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कह कर सम्बोधित किया है। श्रद्धा के रूप में स्त्री का अस्तित्व एक ऐसी स्त्री के रूप से है जो 'जननी' होने के कारण सर्वदा समाज में आदरणीय एवं पूजनीय मानी जाती रही है। प्राचीन समाज एवं आधुनिक युग में भी स्त्रियों को यह स्थान एवं सम्मान प्राप्त है। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की विकसित एवं सम्मानित स्थिति देखने को मिलती है। ऐसे समाजों के संदर्भ में, *'स्त्री उपेक्षिता'* में सीमोन द बोउवार ने लिखा है कि "परिवार में उसे (स्त्री) प्राथमिकता प्राप्त थी। प्राय: वंश का नाम माँ के नाम से चलता था। सामूहिक सम्पत्ति का स्वामित्व भी औरत के पास था। वह अपने बच्चों के

---

[45] बोउवार, सिमोन द, खेतान प्रभा (अनुवादक), *स्त्री उपेक्षिता*, पृष्ठ 75

[46] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 49

माध्यम से इस सम्पत्ति की रक्षा करती थी। औरत की तुलना धरती से की गई। वह धरती की तरह उर्वरा थी, जीवन धात्री भी।"[47] नेपाली ने भी नारी को कोमल भाव की प्रकृति के रूप में देखा और लिखा—

"नर है पुरुष, प्रकृति है नारी, कविता दोनों ओर
नर में वह बल है, नारी में कोमल भाव-हिलोर"[48]

भले ही नवजागरण काल में नारी सुधार के कई आन्दोलन चलाए गए किन्तु स्त्री की सामाजिक दशा नेपाली के समय में बहुत अच्छी नहीं थी। समाज में हर स्तर पर नारी का शोषण होता रहता था। नारी के जन्म पर पूरा परिवार उदास हो जाता था। नारी न पिता के घर में सुखी थी न पति के घर में। 'बाबुल तुम बगिया के तरुवर में नारी की इस दशा का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है।

"जन्म लिया तो जले पिता-माँ, यौवन खिला ननद भाभी
ब्याह रचा तो जला मुहल्ला, पुत्र हुआ तो बंध्या भी
जले हृदय के भीतर नारी
उस पर बाहर दुनिया सारी
** ** ** **
जनम-जनम जग के नखरे पर, सज-धज कर जाएँ वारी
फिर भी समझे गए रात-दिन हम ताड़न के अधिकारी"[49]

नेपाली की कविता उस व्यवस्था को दिखलाती है, जो स्त्री को भी स्त्री का शोषक बना देती है।

---

[47] बोउवार, सिमोन द, खेतान प्रभा (अनुवादक), *स्त्री उपेक्षिता*, पृष्ठ 51

[48] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 10

[49] कृषक, रामकुमार (सम्पादक), *अलाव* : नेपाली जन्मशती-विशेषांक, मार्च-अप्रैल 2012, पृष्ठ 291 (यह कविता नेपाली के किसी काव्य-संग्रह में संकलित नहीं है| धर्मयुग पत्रिका में वर्ष 1957 में छपी 'बाबुल तुम बगिया के तरुवर' नामक कविता का संकलन अलाव पत्रिका में 'असंकलित, किन्तु लोकप्रिय' खण्ड में किया गया है)

नारी के जन्म लेने पर पुरुष स्त्री को अपनी मर्यादा से जोड़कर उसकी स्वाधीनता छीन लेता था। सामाजिक संरचना ऐसी थी कि बेटी के बालिग होते ही पिता को अपनी मर्यादा का डर सताने लगता था। वह बेटी की शादी के लिए वर तलाशने लगता था। नेपाली ने स्त्री की इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखा है—

"चढ़ती-उमर बढ़ी तो कुल, मर्यादा से जा टकराई
पगड़ी गिरने के डर से दुनिया जा डोली ले आई
मन रोया गूँजी शहनाई
नयन बहें, चुनरी पहनाई
पहनाई चुनरी सुहाग की, या डाली हथकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे"[50]

कई बार अर्थ के अभाव में बेमेल विवाह भी हो जाया करता था। ऐसी स्थिति में पिता तो अपनी मर्यादा बचा लेता था किन्तु बेटी आजीवन इसका दंश झेलती रहती। नेपाली ने नारी की यह पीड़ा नारी के मुख से कहलाया—

"मन्त्र पढ़ा सौ साल पुराने, रीत निभाई प्रीत नहीं
तन का सौदा करके भी तो, पाया मन का मीत नहीं
गात, फूलों-सा काटें पग में
जग के लिए जिएँ हम जग में"[51]

आज नारीवादी आलोचक इस बात को स्वीकार करते हैं कि अधिकतर धर्म-ग्रन्थ नारी के शोषण का आधार हैं। मनु स्मृति में लिखा हुआ है कि 'स्त्रियों के लिए विवाह विधि ही वैदिक संस्कार है, ऐसा माना गया है। पति की सेवा में ही उसका गुरूकुल निवास है और घर का धन्धा ही उसका सायं-प्रातः होम है।' (मनुस्मृति : 2/67)[52] अन्यत्र लिखा हुआ है कि 'स्त्रियों

---

[50] वही, पृष्ठ 292

[51] वही, पृष्ठ 292

[52] गुप्त, मन्मथनाथ, *स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास*, पृष्ठ 265

के लिए न कोई और यज्ञ है, न व्रत और न उपवास है। वह पति की जो सेवा करती है, उसी से वह स्वर्गलोक में पूजित होती है। स्वर्गलोक पाने की इच्छा करने वाली स्त्री अपने जीवित या मृत पति के लिए कुछ भी अप्रिय न करे।' (5/155-156)[53] उस समय की फिल्मों में भी स्त्री के इसी शास्त्र द्वारा वर्णित आदर्श रूप को प्रस्तुत किया जाता था। 'नाग पंचमी', 'नागचम्पा', 'सती मदालसा' आदि फिल्मों में नारी का यही आदर्श रूप दिखाया गया है। पुरुष को नारी का संसार बताया गया है। पति के मृत्यु के बाद स्त्री का सारा संसार उजड़ जाता है। इन फिल्मों में नेपाली ने फिल्म के स्क्रिप्ट के अनुसार 'बिहुला' के पति के मृत्यु पर गीत लिखे—

"ना जाने किस घड़ी में दुल्हन बनी एक अभागन
पिया की आरती ले के चली सती होने वह सुहागन
अर्थी नहीं नारी का संसार जा रहा है
भगवान तेरे घर का शृंगार जा रहा है"[54]

नेपाली ने भले ही फिल्म के स्क्रिप्ट की आवश्यकता अनुसार ऐसे गानों को लिखा किन्तु उन्होंने अपनी कविता में धर्म-ग्रन्थ के इस शोषण-जाल का भेद खोला, जिसमें न चाहकर भी स्त्री को फंसना पड़ता है। उन्होंने लिखा है—

"वेद-शास्त्र थे लिए पुरुष थे, मुश्किल था बचाकर जाना
हारा दाँव बचा लेने को, पत को परमेश्वर माना"[55]

समाज में व्याप्त नारी के प्रति इसी दृष्टि को देखते हुए गाँधीजी ने कहा था कि 'आदमी जितनी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है, उनमें सबसे ज्यादा घटिया, बीभत्स और पाशविक बुराई उसके द्वारा मानवता के अर्धांग अर्थात् नारी जाति का दुरुपयोग है। वह अबला नहीं,

---

[53] वही, पृष्ठ 265

[54] परिशिष्ट

[55] कृषक, रामकुमार (सम्पादक), *अलाव : नेपाली जन्मशती-विशेषांक*, मार्च-अप्रैल 2012, पृष्ठ 293

नारी है। नारी जाति निश्चित रूप से पुरुष जाति की अपेक्षा अधिक उदात्त है; आज भी नारी त्याग, मूक दुख-सहन, विनम्रता, आस्था और ज्ञान की प्रतिमूर्ति है।' (यंग इण्डिया)[56] उन्होंने नारी को भी सलाह दी कि 'स्त्री को चाहिए कि वह स्वयं को पुरुष के भोग की वस्तु मानना बन्द कर दे। इसका इलाज पुरुष की अपेक्षा स्वयं स्त्री के हाथों में ज्यादा है। उसे पुरुष की खातिर, जिसमें पति भी शामिल है, सजने से इंकार कर देना चाहिए। तभी वह पुरुष के साथ बराबर की साझीदार बन सकेगी। मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि सीता ने राम को अपने रूप-सौन्दर्य से रिझाने पर एक क्षण भी नष्ट किया होगा। (यंग इण्डिया)[57] गाँधीजी ने स्त्री की दशा में सुधार को अपने आन्दोलन का हिस्सा बनाया और स्त्रियों को भी स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया।[58] नेपाली ने भी नारी शक्ति को पहचाना और स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया—

"तू चिनगारी बनकर उड़ री, जाग-जाग मैं ज्वाला बनूँ
तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूँ
आज वसन्ति चोला तेरा, मैं भी सज लूँ, लाल बनूँ
तू भगिनी बन क्रान्ति कराली, मैं भाई विकराल बनूँ"[59]

नेपाली ने अपनी कविता में नारी को आधी-शक्ति के रूप में स्वीकार किया और उसकी दशा-दुर्दशा को रेखांकित कर उन शास्त्रों की आलोचना की जो स्त्री को पराधीन बनाए रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

3.8.3. दलित मुक्ति का प्रश्न

भारतीय समाज की संरचना चतुष्वर्णी मानी गई है। जिसमें क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र नामक श्रेणियाँ हैं, इसमें शूद्र सबसे निचले पायदान पर माना जाता है। अलग-

---

56 http://www.hindi.mkgandhi.org/brahmacharya.htm

57 http://www.hindi.mkgandhi.org/brahmacharya.htm

58 सिंह, जे. पी., *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पृष्ठ 281

59 नेपाली, गोपाल सिंह, *रागिनी*, पृष्ठ 51

अलग समय में इसे हरिजन, दलित आदि शब्द दिए गए। वर्तमान समय में दलित शब्द का प्रयोग होता है। संवैधानिक भाषा में इन्हें ही अनुसूचित जाति कहा गया है। जिनकी जनसंख्या भारत में लगभग 85 प्रतिशत है।

हालाँकि दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है- दलन किया हुआ। इसके तहत वह प्रत्येक व्यक्ति आ जाता है, जिसका शोषण-उत्पीड़न हुआ है। माता प्रसाद के अनुसार "दलित शब्द का अर्थ है दबाया गया, गिराया गया, शोषित, अपमानित, उत्पीड़ित, उपेक्षित, वंचित आदि। इसमें जहाँ यथा-ईट के भट्टे पर काम करने वाली मजदूर, अनुसूचित जनजातियाँ, देवदासियाँ, घुमन्तू जातियाँ, बन्धुआ मजदूर भी आते हैं। विश्व स्तर पर रंग भेद से पीड़ित लोग विशेषकर नीग्रो की भी गणना इसमें की जा सकती है।"[60] अपने विस्तृत अर्थ के घेरे से सिमटकर दलित शब्द वर्तमान में भारतीय समाज में निम्न व उपेक्षित वर्ग, शूद्र तथा अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के अर्थ को ग्रहण कर चुका है। लेकिन नेपाली के यहाँ यह शब्द विस्तार लिए हुए है जिसमें सभी वर्गों के गरीब व असहाय जन शामिल हैं। जिसे आज दलित कहा जाता है, उसके लिए नेपाली ने गाँधीजी के शब्द 'हरिजन' का प्रयोग किया है।

भारत में दलितों की स्थिति आरम्भ से ही दयनीय रही है। दलित का शोषण होता रहा है। यही कारण है कि जब सन् 1857 में भारत में प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन हो रहा था तो दक्षिण की दलितों की बड़ी आबादी अंग्रेजों के साथ थी। महान दलित विचारक ज्योतिबा राव फुले ने उन महार सैनिकों को सम्मानित किया, जिन्होंने विद्रोह के दमन के लिए अंग्रेजों का साथ दिया और तत्कालीन वायसराय को एक चिट्ठी लिखकर ख़ुशी जाहिर की कि ब्रिटिश भारत में ही रहे और उन्होंने लाखो शूद्रों और दलितों को ब्राह्मण की दया पर नहीं छोड़ दिए। उन्होंने कहा; "ईश्वर शूद्रों के प्रति काफी दयालु थे; क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण

---

[60] प्रसाद, माता, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*, पृष्ठ 17

'नाना फादनाविस' के नेतृत्व में चल रहे विद्रोह को कुचल दिया, वे जानते थे कि ब्रिटिश आज हैं कल चले जाएँगे इसलिए आवश्यक था कि शूद्र ब्राह्मणों के बन्धन से जल्द मुक्ति पाएँ, जब तक कि ब्रिटिश भारत में थे..."[61]

भारत में दलितों के प्रति सवर्णों का व्यवहार ऐसा था कि उन्होंने उच्च वर्णों का दास बनने की तुलना में अंग्रेजों की गुलामी अधिक पसन्द की। वर्तमान समय में भी दलितों के प्रति जो भेद भाव सुनने में आते हैं, उनसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि नेपाली के समय में दलितों की स्थिति और भी दयनीय होगी। नेपाली इस धर्म और जाति के भेदभाव पर अघात करते हुए लिखते हैं—

"लाखों बने उसी मिट्टी के फिर क्यों इतनी जातियाँ
बोली, कपड़े धर्म बदलने पर क्यों बदले पाँतियाँ"[62]

जबकि दलित व्यक्ति भी एक मनुष्य ही पैदा होता है। मनुष्य एक सम्भावना है। प्रत्येक दलित व्यक्ति मनुष्य की सम्भावनाओं से भरपूर पैदा होता है। वे लोग मनुष्य के दुश्मन कहे जाएँगे जो मनुष्य की सम्भावनाओं पर किसी भी रूप में रोक लगाते हैं। लेकिन उस युग में दलित को दास माना जा रहा था—

"पंखकटे पंक्षी के ऐसा
पथ पर कहीं मनुष्य पड़ा था
जोर कर रहे थे सब जालिम,

---

[61] www.arvindguptatoys.com/arvindgupta/phule.pdf
He said he was happy that God was merciful enough to the Sudras to have crushed the revolt led by the Brahmin, Nana Phadnavis. He was aware that the British were there today and would be gone tomorrow; hence the need was for the Sudras to hurry and free themselves from the bondage of the Brahmins while the British were still around.

[62] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 52

शोर कर रहे अत्याचारी
खिन्न हो रही थी मानवता
छिन्न-भिन्न थी दुनिया सारी"[63]

नेपाली दलितों को सचेत करते हुए कहते हैं –

"देखो सोचो समझो सम्हलो,
मानव, अब न शिकार बनो तुम!
अच्छा नहीं, स्वयं अपना ही
जग में कारागार बनो तुम!"[64]

नेपाली को मनुष्य सर्वप्रिय हैं, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय व धर्म नहीं। मनुष्य धर्म ही उनका सर्वोत्तम धर्म है। नेपाली ने अपनी कविता के साथ दलितों के लिए अधिकारों की लड़ाई लड़ी, साथ ही उनमें अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष की मनोवृति को विकसित किया। नेपाली ने दलितों में इन शोषण से विद्रोह करने के लिए उकसाते हुए लिखा—

"जो जीवन अपमानित ही है
उसका भी क्या मोह करोगे,
रौंदे-कुचले आज जा रहे
फिर कब तुम विद्रोह बनोगे"

शक्ति और अधिकारों की इस लड़ाई में नेपाली मात्र उनके हिमायती ही नहीं थे बल्कि कमजोर दलित सेना के सेनापति बन कर दुर्दम्य साहस से लड़ भी रहे थे। सामाजिक समानता के लिए संघर्ष में नेपाली ने दलितों में साहस, आत्म-बोध और दृढ़ निश्चय की प्रवृत्ति को विकसित किया है और सामाजिक वैषम्य के विरुद्ध संघर्ष हेतु आत्म-बल और जागृति की नवानिल का सुखद स्पर्श करवाया है।

---

63 नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 67

64 वही, पृष्ठ 70

सन् 1857 की क्रान्ति से यह स्पष्ट हो चुका था कि जब तक पूरे भारतवासी धर्म-भेद, जाति-भेद और लिंग-भेद भुलाकर एक होकर नहीं लड़ेंगे, हम अंग्रेजों के खिलाफ अपनी लड़ाई नहीं जीत सकेंगे। यही कारण है कि हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने दलितोद्धार पर बल दिया। नेपाली ने भी उन लोगों को चेताया कि इस सामाजिक पाप को रोकना आवश्यक है। अन्यथा जब वे विद्रोह करेंगे तो किसी का भी अस्तित्व नहीं बचेगा—

"सामाजिक पापों के सिर पर चढ़कर बोलेगा अब खतरा
बोलेगा पतितों-दलितों के गरम लहू का कतरा-कतरा
होंगे भस्म अग्नि में जलकर धरम-करम औ' पोथी-पतरा
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा
सड़ी-गली प्राचीन रूढ़ी के भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे
युग-प्रवाह में कटे वृक्ष-से दुनिया-भर के ढोंग बहेंगे
पतित-दलित मस्तक ऊँचा कर संघर्ष की कथा कहेंगे
और मनुज के लिए मनुज के द्वार खुले-के खुले रहेंगे"

विद्रोह की सफलता के बाद कानून-व्यवस्था बनेगी जो इन दलितों को इस मानव को दास बनने से बचेगी—

"मानव होगा नहीं कभी भी मानव-पशु का दास
जीवन-सत् उसका न हरेंगे मन्द-अन्धविश्वास
बाँधेगी न नियम की पट्टी मानव की आँखों को
काटेगा कानून न कोई चिड़ियों की पाँखों को
हाँकेगी न जुल्म की लाठी इधर-उधर लाखों को
भस्म समझ हम सिर पर लेंगे जीवन की राखों को"[65]

अंग्रेज यह जानते थे कि यदि दलित स्वाधीनता आन्दोलन में उनके विरोध में खड़े हो गए तो उनकी पराजय निश्चित है। इसलिए उन्होंने दलितों को तोड़ने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय

---

[65] वही, पृष्ठ 70

के अन्तर्गत अलग निर्वाचन की व्यवस्था की। गाँधीजी ने साम्प्रदायिक निर्णय की राष्ट्रीय एकता एवं भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रहार के रूप में देखा। उनका मत था कि यह देश के लिए खतरनाक है। उनका कहना था कि दलित वर्ग की सामाजिक हालत सुधारने के लिए इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गई है। एक बार यदि पिछड़े एवं दलित वर्ग को पृथक समुदाय का दर्जा प्रदान कर दिया गया तो अश्पृश्यता को दूर करने का मुद्दा पिछड़ा जायेगा और हिन्दू समाज में सुधार की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि पृथक निर्वाचक मण्डल का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि यह अछूतों के सदैव अछूत बने रहने की बात सुनिश्चित करता है। दलितों के हितों की सुरक्षा के नाम पर न ही विधान मण्डलों या सरकारी सेवाओं में सीटें आरक्षित करने की आवश्यकता है और न ही उन्हें पृथक समुदाय बनाने की। अपितु सबसे मुख्य जरूरत समाज से अश्पृश्यता की कुरीति को जड़ से उखाड़ फेंकने की है।

गाँधीजी ने माँग की कि दलित वर्ग के प्रतिनिधियों का निर्वाचन आत्म-निर्वाचन मण्डल के माध्यम से वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। तथापि उन्होंने दलित वर्ग के लिए बड़ी संख्या में सीटें आरक्षित करने की माँग का विरोध नहीं किया। अपनी माँगों को स्वीकार किए जाने के लिए 20 सितम्बर 1932 से गाँधी जी आमरण अनशन पर बैठ गये। इस बीच विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के नेता, जिनमें एम. सी. रजा, मदनमोहन मालवीय तथा बी. आर. अम्बेडकर सम्मिलित थे, सक्रिय हो गये। अन्ततः एक समझौता हुआ, जिसे पूना समझौता या पूनापैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस समझौते में सवर्ण सिर्फ अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भाग लिए। नेपाली ने उस समझौते का सच लिखा—

“जिस बर्तन में छेद हो चुका देर न उसके चूने में
इसलिए थी दौड़-धूप रे इतनी उसदिन पूने में
बिछुड़े परिजन मिले बढ़ाते हाथ प्रेम का मिलाने को

पर जाता सम्मान हमारा उन हरिजन को छूने में"[66]

देश जब आजाद हो गया तो नेपाली ने यह स्पष्ट किया कि अब जनता का तन्त्र स्थापित होगा तो सबको समान अधिकार मिले। नेहरू के समाजवादी शासन में किसी दलित से भेदभाव न किया जाए। इसलिए आजादी के बाद उन्होंने अपनी कविता में माँग की—

"अलग-अलग पुकार हो न व्यक्ति-व्यक्ति के लिए
कि व्यक्ति हो सदा यहाँ समाज शक्ति के लिए"[67]

3.9. निष्कर्ष

गोपाल सिंह नेपाली की कविताएँ सामाजिक जीवन की गहराई से जुड़ी हुई है। लोक-जीवन के प्रति उनकी आस्था है। समाज के साधारण जन के प्रति उनकी हार्दिक संवेदना प्रकट हुई है। इस लोक सम्पृक्ति के कारण ही उन्होंने छायावाद के अभिजात्य सौन्दर्यबोध की आलोचना की है। उन्होंने साधारण के सौन्दर्य को प्रतिष्ठित किया है, आम जन के सुख-दुःख व संघर्ष को चित्रित किया है। जमीन से जुड़ी होने के कारण उनकी कविताओं में वायवीयता और अमूर्तन की प्रतिष्ठा नहीं मिलती। उसकी जगह संघर्ष की जमीन है। उनकी कविता जन-संघर्ष के प्रति आस्था प्रकट करती है। सामाजिक प्रगति, सद्भाव के लिए नवीन मूल्यों की स्थापना पर बल देती है। उनकी कविता सामाजिक रूढ़ियों की आलोचना ही है साथ ही परम्परा के प्रतिगामी मूल्यों का विरोध भी करती है। जड़ता के प्रति उमंग नेपाली की काव्य-चेतना का उत्स है। इस लिए बार-बार वे नवीनता का आह्वान करते हैं ताकि एक नए युवा भारत का निर्माण हो जिसमें स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, सवर्ण-अवर्ण सभी मिलकर सद्भावपूर्वक नए सामाजिक मूल्यों की स्थापना करें। नवीनता, उमंग की प्रधानता के कारण ही वहाँ अवसाद व निराशा की भावना नहीं मिलती। सामाजिक रूढ़ियाँ, वैषम्य उन्हें क्षुब्ध तो करता है पर निराश नहीं। निराशा के केंचुल को छटक कर वह नव भारत के निर्माण के लिए निकल पड़ते हैं कर्म पथ पर।

---

[66] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 87

[67] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 79

नेपाली ने अपनी कविताओं में ग्रामीण समाज में व्याप्त आर्थिक पलायन की भावना एवं परेशानियों और उसकी गरीबी, वेदना, दैन्य और अभाव को मार्मिकता के साथ प्रकट किया है। और उन्हें दूर करने का प्रयास किया है। भारत की औद्योगिक प्रगति में ग्रामीण जीवन को उपेक्षित किए जाने और उन्हें हाशिए पर धकेले जाने का विरोध भी किया है। उन्होंने अर्थ-व्यवस्था में ग्रामीण समाज की बराबर की भागीदारी की बात उठाया। इसीलिए उनकी कविताओं में महलों की जगह झोपड़ी का महत्त्व मिलता है। उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्री-पुरुष की समानता की बात उठाते हुए दोनों की सहयोग से भारत के नव-निर्माण की बात की है। उनकी कविताओं में नारी के महत्त्व का स्वीकार है, उसकी इच्छाओं और अधिकारों का सम्मान है। उन्होंने बेमेल विवाह का विरोध कर नारी की इच्छाओं को प्राथमिकता दी है। इसके अलावा उनकी कविताओं में जाति-प्रथा का विरोध दिखता है। उन्होंने समाज में व्याप्त छुआछूत और भेद की आलोचना की और एक साम्यवादी समाज की प्रतिष्ठा की कामना की है।

चौथा अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में राजनीतिक यथार्थ

4.1. प्रस्तावना

4.2. राजनीति अर्थ एवं अवधारणा

4.3. काव्य और राजनीतिक चेतना : अन्तःसम्बन्ध

4.4. रचनाकार की राजनीतिक प्रतिबद्धता और साहित्य

4.5. राजनीति और काव्य : अन्तःसम्बन्ध

4.6. समाज और राजनीति

4.7. गोपाल सिंह 'नेपाली' और राजनीतिक यथार्थ

4.7.1. स्वतन्त्रतापूर्व का राजनीतिक यथार्थ

4.7.2. स्वाधीनता के पश्चात् का राजनीतिक यथार्थ

4.7.3. राष्ट्रभाषा का सवाल और हिन्दी

4.8. निष्कर्ष

चौथा अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में राजनीतिक यथार्थ

4.1. प्रस्तावना

साहित्य राजनीति के प्रश्न से प्रायः उलझता रहा है। जब से साहित्य मिलता है, तब से इन प्रश्नों से रचनाकार टकराता रहा है। तथापि आधुनिक युग में ये प्रश्न इतने महत्त्वपूर्ण हो गए हैं कि इन्हें नकारा नहीं जा सकता। प्रगतिवादी कवियों ने इसे स्थापित भी करने की कोशिश की। उनका मानना था कि "राजनीति पर कविता करना कविता का हीनतर या सीमित उपयोग नहीं बल्कि एक मात्र और सम्पूर्ण उपयोग है।"[1] चूँकि रचनाकार एक नागरिक होता है और इस नाते राजनीति से उसका अनिवार्य सम्बन्ध होता है। अज्ञेय के अनुसार "मानव की एक परिभाषा यह भी है कि वह प्रकृत्या एक राजनीतिक प्राणी है।"[2] साहित्य उसी मानव की रचना है, इसलिए उसकी रचना में राजनीतिक दृष्टि का दर्शन हो, यह स्वाभाविक है। गोपाल सिंह नेपाली की कविताओं में एक विशेष दृष्टि के साथ राजनीतिक चेतना के दर्शन होते हैं। उनका युग राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल का युग था। देश की विभिन्न संस्थाएँ अपनी-अपनी वैचारिकी के साथ देश को आजाद कराने में प्रयासरत थीं। आजादी के बाद जब सत्ता अपने हाथ में आई तो कई नई मुश्किलें साथ लेकर आई। भारत

---

[1] प्रसाद, (डॉ.) राजेन्द्र, *तार सप्तक के कवियों की समाज-चेतना*, पृष्ठ 107

[2] अज्ञेय, *स्रोत और सेतु*, पृष्ठ 100-101

का विभाजन हुआ। पाकिस्तान के साथ युद्ध, चीन ने भाई-भाई के नारे का अपमान कर धोखा दिया, आदि-आदि। इन सब पर दृष्टि डालने से पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि राजनीति की अवधारणा क्या है? साहित्य के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है? लेखक की प्रतिबद्धता तथा जनतन्त्र में उसकी भूमिका क्या है?

4.2. राजनीति अर्थ एवं अवधारणा

राजनीति को किसी एक परिभाषा में बाँधना अत्यन्त कठिन कार्य है। राजा राज्य चलाने हेतु जो रुख अपनाता है, जो नीतियाँ निर्धारित करता है, जिस व्यवस्था विशेष को राज्य में लागू करता है, वही राजनीति कहलाती है। मानक हिन्दीकोश में राजनीति के दो अर्थ दिए गए हैं।

1. वह नीति या पद्धति विशेष जिसके अनुसार किसी राज्य पर प्रशासन किया जाता है ।
2. वर्गों, गुटों आदि पारस्परिक स्पर्धा वाली स्वार्थपूर्ण नीति।

स्पष्ट है कि राजनीति दो प्रकार की होती है। पहली असुरक्षा के तहत बनाई गई आदर्श, सर्वहितैषी राजनीति है और दूसरी के अन्तर्गत स्वार्थ, शोषण, लोभ, सत्ता, अहंकार की भावना की तृप्ति की जाती है।

राजनीति दिन-प्रतिदिन प्रयोग होने वाला शब्द है। आज हम अत्यधिक राजनीतिकरण के युग में जी रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह राजनीति पसन्द हो या न हो, पर जाने-अनजाने अपने आपको इसमें उलझा हुआ पाता है। आज के इस भौतिक युग में किसी भी मानवीय गतिविधि को राजनीति करने का फैशन सा बन गया है। इसलिए हर जगह विश्वविद्यालय की राजनीत तो कहीं खेलों की राजनीति या विवादास्पद मुद्दों की राजनीति व्याप्त है। राजनीति शब्द का प्रयोग लोगों ने इतना अधिक किया कि इसके सही अर्थ को खोजना एक

कठिन कार्य बन गया है। राजनीति विज्ञान के अनुसार-- 'राजनीति शब्द अंग्रेजी के 'Politics' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। 'Politics' शब्द यूनानी भाषा के Polis शब्द से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है राज्य या नगर।"[3] इसके अनुसार राजनीति शब्द नगर एवं राज्यों से सम्बन्धित क्रिया-कलापों के बारे में बताता है। प्राचीन समय में यूनान के छोटे-छोटे राज्यों, नगरों में अधिक अन्तर नहीं था, लेकिन समय के साथ राज्यों का स्वरूप बदला और इससे सम्बन्धित विषय राजनीति कहलाने लगे। यादवेन्दु के अनुसार-- "राजनीति शासन का विज्ञान है। वह शासन के अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों की व्याख्या करती है। सार्वजनिक हित को लक्ष्य में रखकर ही व्यक्तियों के आचरण का नियमन करती है। संस्थाओं का गठन तथा नियमों और कानूनों का निर्माण करती है। व्यापक अर्थ में राजनीति का कार्य एक ऐसी समाज व्यवस्था कायम करना है जिसमें मानव सर्वोत्कृष्ट आदर्शों की प्राप्ति कर सके।"[4] शान्ति जोशी के मतानुसार "राजनीति का उद्देश्य उस बाह्य आदर्श-व्यवस्था का निर्माण करना है, जो मनुष्य के सर्वोच्च ध्येय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।"[5]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजनीति क्षेत्र में जिन व्यक्तियों के पास अधिकार होते हैं, वो समाज पर नियन्त्रण रखकर व्यवस्था बनाने का प्रयास करते हैं। राजनीति में सरकारी गतिविधियों को सक्रिय रखा जाता है। राजनीति में कई सारे वाद और तन्त्र होते हैं, जैसे साम्यवाद, पूँजीवाद, व्यक्तिवाद, आदर्शवाद, प्रजातन्त्र, राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र आदि में से वाद और तन्त्र एक-दूसरे के विपरीत विधि के आधार पर अलग होते हैं। कुलीनतन्त्र में केवल कुलीन घरानों तक सत्ता सीमित रहती है। साम्यवाद और मार्क्सवाद शोषित और मजदूर

---

[3] अग्रवाल, आर. सी., *राजनीतिक के सिद्धान्त*, पृष्ठ 7

[4] डॉ. यादवेन्दु, *भारतीय नीतिविज्ञान*, पृष्ठ 37-38

[5] केशी, शान्ति, *नीतिशास्त्र*, पृष्ठ 57)

वर्ग को सत्तासीन करना चाहते हैं। इस तरह इन तन्त्रों से मिलकर भी राजनीति का अर्थ अत्यन्त व्यापकता ग्रहण करने लगता है।

वैसे आजकल राजनीति शब्द का प्रयोग अधिकतर नकारात्मक रूप में किया जाने लगा है। राजनीति को अविश्वास, सन्देह आदि से जुड़े एक ऐसे दुर्वचन की भाँति समझा जाने लगा है, जिसमें स्वार्थ, दिखावा, छल-कपट आदि की दुर्गन्ध आती है। इसलिए कुछ लोग राजनीति को समझौते की राजनीति का नाम देते हैं तो कुछ का कहना है कि ये तो चीजों को सम्भव बनाने की कला है। कुछ लोग इसे शैतान की अन्तिम शरणस्थली' मानते हैं।"[6] कुछ के लिए एक ऐसी भ्रष्ट क्रिया है जिसके माध्यम से नेता वर्ग अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं।

दूसरी तरफ कुछ लोग राजनीति को जनकल्याण की क्रिया और व्यक्ति तथा सम्पूर्ण समाज के विकास का मुख्य साधन मानते हैं। बीसवीं शताब्दी में प्रजातन्त्र के विकास से राजनीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। वे राजनीतिक नेता जो पहले जमाने में राजाओं, राजदरबारों और रजवाड़ों तक सीमित थे, अब उन्हें वोट प्राप्त करने के लिए जनसाधारण के पास आना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप आम जनता की राज्य के कार्यों में हिस्सेदारी, व्यक्ति के अधिकार, राज्य का औचित्य तथा आज्ञापालन के आधार जैसे विषय राजनीति के अभिन्न अंग बन गए। राजनीति के सन्दर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण विद्वानों ने अपने मत इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं। अरस्तू के अनुसार, "राजनीति का सम्बन्ध उन सभी सामान्य और सार्वजनिक विषयों से है, जो नगर राज्य के सम्पूर्ण सामाजिक समुदाय को प्रभावित करते हैं।"[7]

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अर्थ राज्य तथा

---

[6] अवस्थी, एस. एस., *राजनीतिक सिद्धान्त,* पृष्ठ 28

[7] वरमानी, आर. सी., *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों का परिचय*, पृष्ठ 19

राजव्यवस्था का अध्ययन है। इस सन्दर्भ में डॉ. गार्नर का मानना है कि 'राजनीति राज्य से शुरू हो, उसी पर समाप्त होती है।'[8] ऐसे परम्परागत विद्वान भी हैं, जिन्होंने राजनीति को प्रशासन का अध्ययन माना है। इनमें सीले का कहना है कि "जिस प्रकार अर्थशास्त्र धन से, प्राणीशास्त्र जीवन से, बीजगणित अंकों से और ज्यामिति समय और फैलाव से जुड़ी है, ठीक उसी प्रकार राजनीति प्रशासन की गतिविधियों का लेखा-जोखा रखती है।"[9]

कुछ विद्वानों ने सामाजिक स्तर पर होने वाले परस्पर विरोध के साथ-साथ सामाजिक सहयोग पर भी बल दिया है। मेक्सवेबर के अनुसार, "व्यक्ति, समाज और समूहों में सहयोग, सहमति, सामंजस्य एवं एकता सब राजनीति में ही सम्भव है।"[10] व्यक्ति स्वभाव से स्वार्थी है और व्यक्ति तथा समूहों का स्वार्थ सामाजिक झगड़ों और विवादों को जन्म देता है तो राजनीति वह सामाजिक प्रक्रिया है, जो इन विवादों को हल करके समाज में कानून और व्यवस्था स्थापित करती है। इसी सन्दर्भ में गूल्ड़ का मानना है कि, "राजनीति में मानवीय क्रिया-कलापों विवादों को हल किया जाता है, वहीं दूसरी तरफ समूहों के हितों की रक्षा की जाती है।"[11] मार्क्स का मानना है कि "राजनीति सामाजिक स्तर पर वर्ग-संघर्षों की उपज है। सही अर्थों में राजनीति एक वर्ग की संगठित शक्ति है, जिसका प्रयोग दूसरे वर्ग को दबाने के लिए किया जाता है।"[12]

उपर्युक्त आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीति एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सभी समूहों,

---

[8] अरोड़ा, एन. डी., *आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त*, पृष्ठ 29

[9] अवस्थी, एस. एस., *राजनीतिक सिद्धान्त*, पृष्ठ 28

[10] वरमानी, आर. सी., *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों का परिचय*, पृष्ठ 23

[11] वही, पृष्ठ 29

[12] वही, पृष्ठ 30

समुदायों, समाजों और संस्थाओं में व्याप्त है। यह सहयोग सामंजस्य और समझौतों से सम्बन्धित सभी गतिविधियों का केन्द्र है। राजनीति हमारे पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। यह समाज के झगड़ों का निवारण करने वाली और सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ विकास की नींव भी है। राजनीति वर्ग-संघर्ष और समाज में क्रान्ति द्वारा आमूल-चूल परिवर्तन का यन्त्र है। यह एक ऐसा माध्यम भी है जो समाज के सार्वजनिक हित रूप में भी प्रयोग किया गया है। जिस तरह मनुष्य का स्वरूप बदलता रहता है, उसी प्रकार राजनीति का स्वरूप भी बदलता रहता है। इस सन्दर्भ में अरस्तू ने लिखा है कि 'पहले-पहले राजतन्त्र स्थापित हुए। सम्भवतः इस कारण से कि प्राचीनकाल में नगर छोटे-छोटे थे एवं चरित्रवान व्यक्ति कम थे। उन्हें राजा बना दिया गया; क्योंकि वे परोपकारी थे और परोपकार केवल सज्जन ही कर सकते थे, परन्तु अब समान गुणों वाले अनेक व्यक्ति आगे बढ़ आए। वे एक को प्रधान व प्रतिष्ठित मानने से कतराने लगे। फिर उन्होंने राज्य को सभी के राज्य बनाने और संविधान बनाने की इच्छा प्रकट की। शासक वर्ग का शीघ्र ही पतन हो गया। वे जनकोष से धन उड़ाकर बलवान बनने लगे, धन सम्पत्ति ही सम्मान का साधन बन गई। इस प्रकार स्वल्पजन शासन की स्थापना स्वाभाविक ही थी। यह शासन अत्याचारी शासन में बदल गया और अन्त में अत्याचारी शासन ने प्रजातन्त्री शासन का रूप धारण कर लिया।[13]

इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि शासन का ढाँचा समयानुसार बदलता रहा है और निस्संदेह उसी के अनुरूप राजनीति का स्वरूप परिवर्तित हुआ है। सर्वप्रथम मानव समाज में राजतन्त्र की स्थापना होने से एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुन लिया गया। धीरे-धीरे उस प्रतिनिधि राज्य ने आम जनता का शोषण करना शुरू कर दिया जिसके कारण कुशासन की स्थापना हुई। जनता इस कुशासन से तंग आ गई और उन्होंने इसे जड़ से उखाड़ फेंका। इसके बाद कुलीनतन्त्र आया। इसके बाद अल्प-जनतन्त्र की स्थापना हुई।

---

[13] *Aristotle Politics-II,* Chapter, P. 15

इसके अगले चरण को हम लोकतन्त्र कह सकते हैं। अतः राजनीति का स्वरूप समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। इसका कारण है— शासन-पद्धति में परिवर्तन होना।

अत: उपर्युक्त विवेचन के आलोक में कहा जा सकता है कि समय-समय पर शासन व्यवस्थाओं में परिवर्तन होने के फलस्वरूप राजनीति भी अपना कलेवर बदलती रही है। अतः साहित्यकार को भी इस बदलते स्वरूप को अपनी सृजनशीलता के बल पर आरेखित करना पड़ता है तभी वह युगद्रष्टा कहलाने का अधिकार रख सकता है। यदि साहित्यकार राजनीति का सर्वथा त्याग करता है तो साहित्य के हाथ से एक कारगर यन्त्र छूट जाता है।[14] अतः ऐसे में साहित्यकार को भी स्वच्छ रणनीति अपना कर अपने सृजनकर्म को निरन्तर जारी रखना चाहिए। यही समाज एवं स्वच्छ राजनीति के लिए अभीष्ट है।

4.3. काव्य और राजनीतिक चेतना : अन्तःसम्बन्ध

आज राजनीति इस प्रकार और इतने विविध रूपों में और इतनी दूर तक व्यक्ति के जीवन में घुल-मिल गई है कि उससे तटस्थ होना बहुत कठिन है। किसी न किसी स्तर पर राजनीति में उलझे बिना तो आज के जीवन के यथार्थ को, उसकी सच्चाई और उसके झूठेपन को पहचानना तक असम्भव हो गया है। जो साहित्यकार अपनी रचनाओं में व्यक्ति को समझने तथा परिभाषित करने का दावा करता है, वो अपने काल की अनुभूतियों को मूर्त रूप देना चाहता है। वह राजनीतिक परिस्थितियों तथा उस वातावरण से अपने को विलग नहीं कर सकता। अतः साहित्य को राजनीति से दूर रखना उसे मानव से दूर रखना होगा। साहित्य को राजनीति से दूर रखने की बात अन्ततः एक मानव विरोधी राजनीति की ही एक युक्ति है।

जहाँ तक एक सामान्य व्यक्ति का प्रश्न है वह राजनीति से प्राय: दो रूपों में सामना करता है। पहले रूप में नागरिक की हैसियत से और दूसरे रूप में मूक आलोचक के रूप में। धर्मपाल

---

[14] 'दिनकर', रामधारी सिंह, *साहित्यमुखी*, पृष्ठ 27

सरीन ने लिखा है कि “नागरिक के रूप में एक समीक्षाकार भी जीवन के अनुभवों के सभी रूपों से गुजरता है। अतः उन सभी अनुभवों को, जो साहित्यकार के जीवन और व्यक्तित्व से सम्पृक्त हों, साहित्य से किस तरह विलग किया जा सकता है? जो अनुभव साहित्यकार के जीवन और व्यक्तित्व से जुड़ा हो, उसका साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।”[15] इस तरह काव्य का रचयिता प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक संसार की रचना भले ही न करता हो, पर जो भी संसार वह अपने काव्य में रचता है, वह यदि सार्थक है तो राजनीतिक अनुभव से और उसी के औजार से बना होता है। राज्य का नागरिक होने के नाते साहित्यकार राजनीति और राजनीतिक चेतना से विमुख नहीं हो सकता। राजनीति राज्य संचालन की नीति का ही व्यावहारिक एवं शास्त्रीय पक्ष है। एक संवेदनशील प्राणी होने के नाते सत्ता और प्रशासन द्वारा सामान्य प्रजा अथवा जनता के प्रति किये जाने वाले व्यवहार की समीक्षा और आलोचना करने का अधिकार साहित्यकार को स्वतः प्राप्त है। यही कारण है कि हर कवि अपने युग की राजनीति की समीक्षा करता है और आवश्यकता पड़ने पर आलोचना भी करता है। कवि गोपाल सिंह नेपाली ने समय-समय पर युगीन राजनीति की समीक्षा की और आलोचना भी की। जब भारत आजाद हुआ और जिस साम्यवाद की कल्पना गाँधीजी ने की थी, उसे पूरा न होता देख नेपाली ने क्षोभ प्रकट किया—

“मिली नहीं सत्ता कि गिरे को हम ज्यों के त्यों रहने दें
कहीं पसीना पोंछे और किसी के आँसू बहने दें
बढ़े चलो सत्ता के संग में
रंग लो देश बसन्ती रंग में
दूर खड़ी रहने को अपनी बनी नहीं सरकार है

---

[15] सिंह, नामवर (सम्पा.), *आलोचना*, जुलाई-सितम्बर, 1968, पृष्ठ 21

तीस कोटि की अमर क्रान्ति का बुझा नहीं अंगार है"[16]

साहित्यकार शासक, शासन और शासित के परस्पर सम्बन्धों के प्रति एक निजी दृष्टि रखता है। आरम्भ में राजतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी। प्राचीन समय में भी उस राजदरबार को हीन दृष्टि से देखा जाता था जिसका अपना राजकवि नहीं होता था। अत: कवियों की रचनाओं में तत्युगीन राजनीतिक चेतना का प्रभाव निश्चित ही मिल जाता है।

साहित्य या काव्य का राजनीति से सम्बन्ध प्रत्यक्ष नहीं होता, बल्कि परोक्ष होता है। यदि राजनीति साहित्य को सीधे-सीधे प्रभावित करेगी तो वह पार्टी का घोषणा-पत्र ही कहा जाएगा। इसलिए कहा गया है कि राजनीति साहित्यकार के जीवन-दर्शन के रूप में जब साहित्य में अवतरित होती है, तभी वह साहित्य और समाज और मानवता दोनों के लिए लाभप्रद होती है।

"साहित्य का विषय मानव-हृदय और मानव-चरित्र है। बाह्य प्रकृति और मानव-हृदय प्रतिक्षण जो स्वरूप धारण करते हैं, जो संगीत ध्वनित करते हैं, साहित्य में उसी का प्रतिफलन होता है, किन्तु राजनीति में उसकी गुंजाइश नहीं रहती। मानवता का श्वास-नि:श्वास साहित्य की बंशी में संगीत बनकर समस्त लोगों का केन्द्रबिन्दु बनता है। साहित्य किसी व्यक्ति विशेष का न होकर सबका समान होता है, पर राजनीति में ऐसी समानता सम्भव नहीं। साहित्य चिरस्थायी होता है। साहित्य में सर्वकालीन समस्याएँ होती हैं, जबकि राजनीति में तात्कालिक समस्याएँ ही होती हैं। राजनीतिज्ञ यदि तत्कालीन विचारक होता है, तो साहित्यकार सर्वकालिक विचारक।"[17]

---

[16] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा है*, पृष्ठ 52

[17] अग्रवाल, रामनारायण, *हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष*, पृष्ठ 30

छायावादोत्तर भारतीय राजनीति तीव्र संघर्षमय थी। इस प्रकार से कई दशकों से आने वाले राजनीतिक संघर्ष की चरमसीमा का यह युग था। इस दाँव में देश ने अपना सर्वस्व लगा दिया था और वह इसके फल की चिन्ता में था।

"इस काले घनवाले नभ में कब चमकेगा चाँद सखी
चाँदी से चमकीले जग में कब होगा आह्लाद सखी
बन जावेगी गगन-तारिका कब जीवन की याद सखी
मधुर कूक बन बाहर निकलेगा अन्दर का नाद सखी
देख सकूँगा ऐसी दुनिया कब, किस दिन, किस बार सखी
इसी प्रतीक्षा में कटते हैं जीवन के दिन चार सखी"[18]

यह युग एक प्रकार से राजनीतिक तथा आदर्शात्मक संक्रान्ति का युग था। अहिंसा, सशस्त्र क्रान्ति तथा हिन्द फौज सबने अपने कन्धे एक साथ मिला दिए थे। लम्बे संघर्ष के बाद आजादी मिली लेकिन भारत विभाजन की शर्त पर। आजादी के बाद जब देश आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ रहा था कि पाकिस्तान तथा चीन के साथ युद्ध ने भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ ले लिया। कवि अपनी लेखनी को तलवार बनाकर प्रहरी बन खड़े हो गए। गोपाल सिंह नेपाली तो 'वन मैन आर्मी' बनकर चीन के युद्ध के दौरान डटे रहे। इन परिस्थितियों को कुछ साहित्यकारों ने ईमानदारी से देखा और ईमानदारी के साथ लिखने के लिए प्रेरित किया।

राजनीति साहित्य पर किस प्रकार शनैः शनैः किन्तु प्रभावी दृष्टि से असर डालती है। सरीन ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है कि, "राजनीति सर्वदा साहित्य की प्रेरणादात्री रही है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के पश्चात् 'समता', 'स्वतन्त्रता' और 'विश्वबन्धुत्व' की जो भावना साहित्य में अभिभूत हुई तथा रूस की रक्त-क्रान्ति के बाद जगत् में स्वशासन के लिए

---

[18] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 29

साहित्य में जो राजनीतिक चेतना उद्‌भूत हुई वह सब राजनीति का ही प्रभाव था।"[19] राजनीतिक चेतना मानव-मनीषा के उद्भवकाल से ही साहित्य पर प्रभाव डालती रही है। वेदों में राजनीतिक विचारों की भरमार है। राष्ट्र, राज्य, सभासमिति, जन, द्वैराज्य, वैराज्य आदि संकल्पनाएँ वैदिक साहित्य में प्राप्त होती हैं। वाल्मीकि रामायण में भी राजनीतिक चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है। महाभारत प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रमुख ग्रन्थ है। शान्तिपर्व में राजनीति के प्रत्येक पहलू पर अच्छे से विचार किया गया है। कालिदास और माघ के अतिरिक्त महाकवि भारवि का साहित्य राजनीतिक चिन्तन की विशदता और निभ्रान्तता के लिए प्रसिद्ध है।

आधुनिक साहित्य में ही नहीं, आदिकालीन साहित्य में भी राजनीतिक चेतना उपलब्ध है। जो बुद्ध-काव्य के रूप में व्यक्त हुई है। इसी तरह रीतिकाल में यह प्रभाव हमें आश्रयदाताओं के चरितकाव्यों के रूप में दिखाई देता है। भारतेन्दुयुग में राजनीतिक चिन्तन का विस्तार रूप दिखाई देता है। इस युग के बारे में डॉ. सरीन के निम्न विचार द्रष्टव्य हैं- "भारतेन्दु काल की रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण की भावना, देश की दुर्दशा, उसकी आर्थिक हीनावस्था के स्वर सुनाई पड़ने लगे, विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई तीव्र होने लगी और हर एक संवेदनशील व्यक्ति उससे पृथक न रह सका। अत: बहुत से कवियों व लेखकों का इस उग्र क्रान्तिकारी राजनीति से कई स्तरों पर, कई रूपों में नाता जुड़ने लगा। वे विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों तथा विभिन्न राजनीतिक दलों में प्रविष्ट होकर तथाकथित राजनीतिक काव्य-रचना करने लगे।"[20]

द्विवेदीयुगीन साहित्यकार पूर्णतः देशभक्ति भाव से अनुप्राणित हो उठे जिसका मूल कारण विभिन्न राजनेताओं द्वारा प्रखर राजनीति का संपादन रहा। अत: देश की राजनीति से कवि-

[19] मेकेंजी, जे. एस., *समाज दर्शन की रूपरेखा,* पृष्ठ 28

[20] वही, पृष्ठ 24

समाज कभी भी तटस्थ नहीं रह सकता है। द्विवेदी युग के कवियों ने जो कुछ कहा स्पष्ट कहा। भय की छाया से दूर, एक सच्चे देश-भक्तों की भाँति उन्होंने देश-प्रेम का स्वर ऊँचा किया और देश के विरोधियों, देशघातियों, राजभक्तों एवं स्वार्थी, लोभी, राष्ट्र-वंचकों को भीषण व्यंग्य के कशाघातों से प्रताड़ित किया। निस्संदेह द्विवेदीयुगीन कवियों का राष्ट्र-प्रेम नि:स्वार्थ और महान् था।

इसी प्रकार छायावादी काव्य तत्कालीन राजनीति की प्रेरणा से अनुप्राणित होकर प्रसाद, पन्त और निराला के काव्य के माध्यम से व्यक्त हो रहा था। लेकिन कुछ विद्वानों ने छायावादी काव्य को राजनीति एवं समाज से असम्बन्ध ही माना है। शुक्ल जी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि हम नहीं समझते कि बिना हिन्दी वालों की खोपड़ी को एकदम खोखली माने उनके बीच इस प्रकार के अर्थशून्य वाक्य छायावाद के सम्बन्ध में कैसे कहे जा सकते हैं कि यह नवीन जागृति चिहन है, देश के नवयुवकों के हृदय की दहकती हुई आग है, इत्यादि इत्यादि। लेकिन यह छायावाद के प्रति उचित दृष्टि नहीं प्रतीत हो रही है। किसी भी अर्थ में छायावादी कवि राजनीतिक चेतना से रहित नहीं माना जा सकता है। आचार्य वाजपेयी जी ने आश्चर्य एवं खेद से कहा भी है कि "हमारे समीक्षकों ने इस अत्यन्त और सीधी और सच्ची बात को भी समझने की चेष्टा नहीं की है कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह कुछ और हो भी नहीं सकती थी।"[21]

द्विवेदीयुगीन कवियों की तुलना में छायावादी कवि एक कदम और आगे बढ़े और अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने साहित्य के द्वारा क्रान्ति का मार्ग दिखाया। "स्वाधीनता-आन्दोलन संकीर्ण रूढ़ियों को छोड़कर स्वराज्य की जिस व्यापक कल्पना की ओर बढ़ रहा था, उसका विजयघोष सबसे पहले छायावादी कविता में सुन पड़ा। समाज में आमूल परिवर्तन करने की

---

[21] सिंह, शम्भुनाथ, *छायावादी युग*, पृष्ठ 28-29

भावना छायावादी कवियों की अत्यन्त प्रिय भावना थी।"[22]

अत: कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य में राजनीतिक सांस्कृतिक चेतना अपने उदात्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। उसका एक छोर राजनीतिक स्वातन्त्र्य संग्राम से बँधा है, तो दूसरा समग्र मानवता की कल्याण-भावना से। परिस्थितियों के आग्रह और शैली के वैशिष्ट्य के कारण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का रूप सर्वथा प्रत्यक्ष नहीं रहा। छायादोत्तर कवि इस अभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष करना चाहते थे, इसलिए उस आवरण से मुक्ति की कामना करते थे—

"अरे युगान्तर, आ जल्दी अब खोल, खोल मेरा बन्धन
बंधा हुआ इन जंजीरों से तड़प रहा कब से जीवन"[23]

काव्य जब समाज और राजनीति से प्रेरणा लेती है तो राजनीतिक कविता कहलाती है। पाब्लो नेरुदा के शब्दों में— "राजनीतिक कविता में दूसरी किसी भी कविता से ज्यादा गहरा भावावेग होता है - कम से कम प्रेम कविता जितना तो होता ही है - और उसे जबरन नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि तब तक वह फूहड़ और अग्राह्य हो जाती है। एक राजनीतिक कवि होने के लिए पहले दूसरी तमाम तरह की कविताओं से गुजरना आवश्यक है। राजनीतिक कवि पर कविता से या साहित्य से विश्वासघात करने के जो आक्षेप लगते हैं, उसे उन्हें भी स्वीकार करने के लिए तैयार रहना होगा।"[24]

4.4. रचनाकार की राजनीतिक प्रतिबद्धता और साहित्य

हर रचनाकार हमेशा ही राजनीति से प्रतिबद्ध होकर काव्य रचता है। नेमिचन्द्र जैन ने

---

[22] द्विवेदी, (आचार्य) हजारीप्रसाद, *हिन्दी साहित्य,* पृष्ठ 300

[23] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग,* पृष्ठ 18

[24] *सापेक्ष*, जनवरी-मार्च, 1995, पृष्ठ 299

लिखा है- "आज यह कहना कि राजनीति और कविता के सम्बन्ध पर चर्चा से रचनाकार को कोई मतलब नहीं, न केवल घटिया और लचर राजनीति है, बल्कि बुद्धि के दिवालियेपन का भी सूचक है।"[25]

इस तरह रचनाकार की राजनीतिक प्रतिबद्धता उसके साहित्य को निश्चित ही प्रभावित करती है, तब तक करती रहेगी जब तक साहित्यकार की विचारभूमि जीवन-दर्शन के रूप में उसके जीवन में समाहित होती रहेगी। जब रचनाकार की कथनी और करनी, उसके चिन्तन और उसका अनुभूति में दूरी बढ़ने लगेगी, तब न तो साहित्य में प्रतिबद्धता रहेगी और न ही साहित्य का कोई लक्ष्य या महत्त्व रह जाएगा; क्योंकि किसी भी साहित्यकार के लिए साहित्य ही उसका प्राण होता है।

काव्य मनुष्य की सामाजिक चेतना से प्रसूत होती है। पारिवेशिक यथार्थ जो अपने में सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों को समेटता है और उससे निकलती भावी सम्भावनाएँ काव्य में अभिव्यक्त होती हैं। आज के युग के प्रखर सत्य के रूप में राजनीति जब आर्थिक-सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करती है और साथ में मानव समाज का शोषण करती है, तो कवि भी पीड़ित जनता का पक्षधर बन जाता है और स्वयं भी इस संघर्ष से जूझने लगता है। अतः सामाजिक चेतना के महत् अंग के रूप में राजनीति कवि की चिन्ता का विषय बन जाती है। अत: कवि युग के सामाजिक-राजनीतिक अन्तर्विरोधों के मूल कारणों को साहसिकता से खोजता है। वह अपनी लेखनी द्वारा राजनीतिक दबावों से आतंकित व्यक्ति की पीड़ा को उजागर करता है और जनता में तीव्र राजनीतिक चेतना का संचार भी करता है।

काव्य को खोखले नैतिक आदर्शों से मण्डित करने वाला वर्ग राजनीति की प्रचण्डता को

---

[25] सिंह, नामवर (सम्पा.), *आलोचना,* जुलाई-सितम्बर, 1975, पृष्ठ 42

काव्य के सुकुमार कलेवर के लिए घातक मानता है, किन्तु वैज्ञानिक समझ रखने वाला प्रबुद्ध कवि दैनिक जीवन की गतिविधियों को प्रभावित करने वाली राजनीति को काव्य का और जीवन का बहुत ही चिन्तनीय अंग मानता है। इसी को समझकर वह राजनीति के प्रभावों को मानवीय व्यथा के सन्दर्भ में अभिव्यंजित करता है। रचनाकार या कवि मानव होने के नाते, राजनीति को भी झेलता है और काव्य के स्तर पर राजनीति कला का अंग बनकर ही संवेद्य और संप्रेष्य बनती है।

वैसे राजनीतिक प्रचार की शुष्कता से परे, जीवन-संघर्ष की सामर्थ्य और ईमानदार अभिव्यक्ति से ऊर्जस्वित कविता ही युग का प्रतिनिधित्व करती है। जागरूक कवि अपने कवि-कर्म के दौरान सतर्कता के साथ इस राजनीतिक सन्दर्भ को परिभाषित करते चलते हैं और इस प्रकार सीधे-सीधे राजनीतिक विषयों पर कविता न लिखते हुए भी अपनी प्रत्येक रचना को एक निश्चित राजनीतिक अर्थ देते हैं। महत्त्वपूर्ण है राजनीतिक सन्दर्भ का गहरा भाव-बोध। वस्तुत: यह कवि के लिए सरल नहीं होता है। कवि न तो राजनीतिज्ञ होता है, न समाचार सम्पादक - वह तो संवेदनशील भावुक शिल्पी होता है। राजनीति की विसंगति जब उसे टीस पहुँचाती है तो वह व्यथित हो उठता है। तब वह इस पीड़ा को शब्दबद्ध कर युगद्रष्टा की भूमिका निभाता है।

प्रत्येक रचनाकार प्रतिबद्ध होकर ही अपने काव्य की रचना करता है। उसकी यह प्रतिबद्धता ईश्वर, मनुष्य, समाज, वर्ग किसी भी प्रत्यय से हो सकती है। हिन्दी का भक्तिकालीन साहित्य भी अपने युग के प्रति प्रतिबद्ध था। जहाँ कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि ने बड़ी सशक्तता से इस प्रतिबद्धता को व्यक्त किया है। इसी तरह रीतिकालीन अथवा भारतेन्दुयुगीन ही नहीं प्रत्येक काल के साहित्य में यह प्रतिबद्धता दिखाई देती है। किन्तु आज समय की जरूरत बन चुकी है। अतः आज के समाज में प्रतिबद्धता को एक विशेष सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। आज प्रतिबद्धता का तात्पर्य राजनीतिक प्रतिबद्धता से

लिया जाता है।

इस तरह काव्यकार के राजनीतिक सरोकार ही उसकी प्रतिबद्धता निर्धारित करती है। यथा यदि रचनाकार मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर विश्वास करता है तो उसकी प्रत्येक रचना में मार्क्सवादी दृष्टि अवश्य आ जाती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण डॉ. रामविलास शर्मा और नागार्जुन का साहित्य माना जा सकता है। दोनों ही प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार हैं। शर्मा जी ने तो 1857 के संग्राम को भी इसी दृष्टि का परिणाम माना है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि '1857 अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के विरोध का उभार है।'[26] उन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रति मार्क्स और एंगल्स की अभ्युक्तियों का उल्लेख कर साम्यवाद के प्रति अपनी आस्था ही प्रकट किया। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा कि "मार्क्स और एंगल्स का विश्लेषण पराजयवाद से कोसों दूर है। विद्रोह समाप्त हो जाने के बाद भी वे भविष्य की ओर देखते हैं और आशा करते हैं कि भारतवासी अपना यह अनुभव भूलेंगे नहीं और आगे फिर लडेंगे।"[27]

प्रगतिशील काव्य मुख्य रूप से मार्क्सवादी विचारों को वैचारिक स्रोत के रूप में मानकर चलती है। इसने सामन्ती और पूँजीवादी जीवन दृष्टि उन्मूलन के लिए निरन्तर संघर्ष किया है। द्विवेदी युग में भी यही होता है। उस युग के निबन्धकार सरदार पूर्णसिंह ने श्रम की महिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए 'मजदूरी और प्रेम' शीर्षक एक निबन्ध लिखा तथा उनके अन्य निबन्धों में भी बार-बार श्रम की मुहिम पर प्रकाश डाला गया है। उसी सामन्ती दृष्टि का विरोध मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'भारत भारती' में किया है।

प्रेमचन्द ने भी सामन्ती दृष्टि और सौन्दर्य दर्शन का प्रबल विरोध किया। उन्होंने सौन्दर्य दर्शन को बदलने का विरोध किया। उन्होंने लिखा है- "उसके लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है -

---

[26] शर्मा, (डॉ.) रामविलास, *भारत में अंग्रेजी राज्य,* पृष्ठ 223

[27] वही, पृष्ठ 203

उस बच्चों वाली गरीब रूपरहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है। उसने निश्चय कर लिया कि रंगे होठों, कपालों और भौहों और कुम्हलाये हुए गालों में सौन्दर्य का प्रवेश कहाँ ? पर दृष्टि का दोष है। अगर उसकी सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाये तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की जड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होठों और कुम्हलाये हुए गालों के आँसुओं में त्याग-श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं सुकुमारता नहीं।" स्पष्ट है कि यहाँ प्रेमचन्द ने सामन्ती सौन्दर्यशास्त्र का प्रबल विरोध किया है।

छायावाद के शुरुआत में सौन्दर्यबोध को व्यक्त किया गया। लेकिन तब तक रूसी क्रान्ति का प्रभाव भी आने लगा था और इसी से प्रगतिशील की ज्वाला धधकने लगी। इसी के प्रभावस्वरूप निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर' और पन्त ने 'नारी' जैसी कविताएँ लिखीं, जिनमें श्रम को ही मुख्य माना गया है। यही परिवर्तन का बिन्दु है, जहाँ से प्रगतिवाद का आरम्भ होता है। श्रम का आरम्भ होते ही छायावाद का सौन्दर्य खत्म हो जाता है।

श्रमिक मार्क्सवादी चिन्तन का मूलाधार है। इसी कारण भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मजदूरों का प्रभाव राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में बढ़ता ही चला गया। इस सशक्त होते हुए मजदूर आन्दोलनों को प्रगतिशील कवियों ने व्यापक रूप से अपने काव्य में समाहित किया। इन कवियों ने मजदूरों की क्रान्तिकारी भूमिका को उजागर करने में ज्यादा रुचि दिखाई।

गोपाल सिंह नेपाली का युग प्रगतिशील काव्य के साथ शुरू होता है, किन्तु उनके ऊपर मार्क्सवाद का सीधा प्रभाव नहीं दिखता। उनके चिन्तन का मुख्य आधार गाँधीवाद है। लेकिन उनके लिए कोई भी राजनीतिक सिद्धान्त बड़ा नहीं है। उन्होंने उन सिद्धान्तों का माना जो राष्ट्रहित में हो, राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए हो। यही कारण है कि उन्होंने लिखा है—

"सिद्धान्त, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज

सब कुछ हैं तरु-डाली-पत्ते, आजादी है बुनियादी-बीज"[28]

साहित्यकार और राजनीतिज्ञ का राजनीतिक चेतना के प्रसार में अपना-अपना दायित्व होता है। राजनीति के अनिवार्य पक्ष हैं— परिवेश की पहचान और राजनीतिक चरित्र के जटिल स्वरूप के मूल कारणों का ज्ञान। जनता को जाग्रत करने के लिए परिवेश की विसंगतियों में निहित राजनीतिक उत्पीड़न के सूक्ष्म अप्रत्यक्ष तन्तुओं को अनावृत करते हुए जनमानस की मानसिकता को सही दिशा की ओर प्ररित करना है।

4.5. राजनीति और काव्य : अन्तः सम्बन्ध

जिस युग-परिवेश में रचनाकार जीवन व्यतीत करता है, उससे वह प्रभावित होता है और उस परिवेश पर राजनीति का भी प्रभाव होता है। युग-परिवेश और समय के साथ राजनीति भी बदलती रहती है। इस परितर्वन के साथ देश की सामाजिक-आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ भी जुड़ी होती हैं। अतः रचनाकार भी समाज का अभिन्न अंग और संवेदनशील प्राणी होता है, जो प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में समाज से प्रभावित होता है, इसी प्रभाव के फलस्वरूप वह साहित्य-सृजना करता है, जिसमें समाज-कल्याण की भावना निहित होती है, जो समाज और संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरोती है।

इस प्रकार साहित्य अपने युग का दर्पण होता है, क्योंकि कवि या साहित्यकार जिस परिवेश में रहता है, उसे अनुभूत करता है और उसी अनुभूति की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में करता है। काव्य युग-परिवेश की सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताओं एवं जीवनमूल्यों का प्रतिफल होता है। केवल यही नहीं वह समाज की समस्त संवेदनाओं का संवाहक भी माना जाता है।

---

[28] नेपाली, गोपाल सिंह, हिमालय ने पुकारा, पृष्ठ 62

साहित्यकार का स्वर समाज में चेतना उत्पन्न करता है, जिससे समाज को नवीन दिशा मिलती है।[29] राजनीतिक सन्दर्भ में यदि भारतीय इतिहास और हिन्दी साहित्य के इतिहास का मूल्यांकन करें तो हमें प्रत्येक स्थान पर साहित्य और राजनीति का गहन एवं अटूट सम्बन्ध मिलेगा। अत: कवि अपने सृजन-संसार के माध्यम से अपने विचारों को पाठक तक सम्प्रेषित करके सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है। वह समाज के अभावों और कटुताओं को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करके उसे संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। केवल समाज में ही नहीं राजनीति में भी कवि का प्रभाव इतना विलक्षण होता है कि उसके समक्ष समस्त शासकों की टंकार भी फीकी पड़ जाती है, इसलिए कोई भी शासक किसी भी देश पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उस पर साहित्यिक विजय प्राप्त करना चाहेगा क्योंकि साहित्यिक विजय ही वास्तविक विजय होती है। इस प्रकार काव्य और राजनीति का बड़ा ही गूढ़ सम्बन्ध होता है।

राजनीति की पकड़ सम्पूर्ण देश पर होती है। अत: देश की राजनीति से जनता का प्रभावित होना निश्चित है। कलाकारों की कला, कवियों की कविताएँ और लेखकों की कृतियाँ जनता की भावनाओं को परिष्कृत कर उन पर प्रभाव डालती हैं। किसी भी साहित्यकार को तभी सफल कहा जा सकता है जब वह अनुभूति को अभिव्यक्त कर पाठकों तक पहुँचा सके और पाठक उसका पठन-पाठन करके मंत्रमुग्ध हो जाए। इस प्रकार काव्यकार द्वारा डाला गया प्रभाव विभिन्न समस्याओं को समझने एवं उनका समाधान निकालने के लिए सम्यक दृष्टि प्रदान करता है।

यह आवश्यक नहीं है कि रचनाकार की प्रत्येक रचना राजनीति से प्रेरित एवं प्रभावित हो। वैसे राजनीति का प्रभाव हिन्दी साहित्य के प्रत्येक काल पर देखा जा सकता है, चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल या आधुनिककाल ही क्यों न हो। ये सभी काल तत्कालीन

---

[29] राय (डॉ.) गुलाब, *काव्य के रूप*, पृष्ठ 6

राजनीति से अछूते नहीं रहे परन्तु राजनीति और काव्य के परस्पर सम्बन्ध का अर्थ यह नहीं है कि वह राजनीति वादों का अखाड़ा बन जाए और जीवन-मूल्यों को नकार कर केवल राजनीतिक विचारधाराओं का संघर्ष चित्रित करके किसी विशेष मत की सर्वश्रेष्ठता को स्थापित करता जाये। वास्तव में कवि की कृतियाँ में समन्वय को ही महत्त्व दिया जाता है। रजनी कोठारी का मत है कि "यदि आधुनिकीकरण हमारे युग की मुख्य प्रवृत्ति है, तो राजनीतिकरण इसकी संचालन शक्ति...।"[30] काव्य कवि का निजी प्रश्न मात्र नहीं है। उसका सामाजिक यथार्थ से जुड़कर ही उसकी कला का सच बनता है, काव्य का रचना-संसार कल्पना की अमर भूमि पर अंकुरित नहीं होता, अपितु वास्तविकता की उर्वर भावभूमि पर पल्लवित होता है। साहित्यकार की सत्यगर्भा दृष्टि पारिवेशिक संघर्षों को देखकर आकुल हो उठती है और वह अपने शाब्दिक अस्त्रों से समाज के महासमर में कूद पड़ता है। इसलिए प्रेमचन्द ने 'कला, कला के लिए को संघर्षरत समाज के लिए अनावश्यक मानते हुए साहित्यकार की जनदृष्टि को महत्त्वपूर्ण माना। जो दलित हैं, वंचित हैं - चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका (साहित्यकार का) फर्ज है। उसकी अदालत समाज है। इसी अदालत के सामने वह इस्तगासा पेश करता है ओर उसकी न्याय-वृत्ति तथा सौन्दर्यवृत्ति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है।'[31] इस कथन से स्पष्ट होता है कि मानवीय व्यथा के करुण क्रन्दन को वाणी देना ही कवि का महत्त्वपूर्ण कर्म है। यह क्रन्दन जब राजनीतिक तनावों और दबावों के कारण उत्पन्न होता है तब कवि-वाणी राजनीतिक सन्दर्भों में मानवीय व्यथा को मुखर करता है।

साहित्यकार समाज में रहने वाला प्राणी है और यह सम्भव नहीं है कि वह युगीन भावधारा से परे रह सके। तत्कालीन सामाजिक संस्कारों का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ता है। मनुष्य के

---

[30] कोठारी, रजनी, *भारत में राजनीति*, पृष्ठ 1

[31] प्रेमचन्द, *साहित्य का उद्देश्य*, पृष्ठ 13

सामाजिक संस्कारों का निर्माण उसकी चतुर्मुखी परिस्थितियों के मध्य में होता है। इन परिस्थितियों का निर्धारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति द्वारा ही होता है। अत: काव्य या राजनीति को एक-दूसरे का विरोधी न मारकर पूरक माना जा सकता है। अज्ञेय ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है-- साहित्य और राजनीति को पृथक् और विरोधी तत्त्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के संघर्ष युग में वह मूर्खतापूर्ण ही है।"[32] अधुनातन युग का मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक सजग प्राणी की भूमिका निभा रहा है। उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप चाहे वे सामाजिक हों या आर्थिक या राजनीतिक एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप से अनुस्यूत हैं। मनुष्य के सामाजिक जीवन के राजनीति को अर्थतन्त्र और धर्म आदि प्रभावित करते रहते हैं।

आज राजनीति ने कुछ ऐसा सर्वव्यापी रूप धारण कर लिया है कि 'जीवन के प्रति और स्वयं अपनी कला के प्रति ईमानदार रहने वाला कोई भी काव्यकार चाहते हुए भी राजनीति के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। मानव जीवन के विभिन्न रूप परस्पर इतने अधिक संश्लिष्ट हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आज के युग केवल साहित्यकार, केवल राजनीतिज्ञ बनकर नहीं रह सकता।'[33] साहित्य में जीवन का विश्लेषण न होकर संश्लेषण होता है।

'जब हम यह कहते हैं कि राजनीति हमारे जीवन का प्रधान अंग बन चुकी है, तो ऐसे समय में जीवन के प्रति ईमानदार साहित्यकार राजनीति की उपेक्षा नहीं कर सकता है, वरन् वह अग्रदूत होता है, जिसका स्थान पहले है।'[34] साहित्य समय को दिशा देता है। वह युग-स्रष्टा होता है। साहित्य का दायित्व होता है कि वह अच्छे समाज का निर्माण करे। जब समाज अच्छा होगा तो मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी।

---

[32] सिंह, ब्रजभूषण, *आदर्श हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन,* पृष्ठ 9

[33] शर्मा, सुषमा, *उपन्यास और राजनीति*, पृष्ठ 26

[34] शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, चिन्तामणि-भाग 1, पृष्ठ 27

स्पष्ट है कि काव्य का सम्बन्ध मानववृत्तियों से भी होता है। काव्य किसी लोकोतर धरातल पर प्रतिष्ठित होकर आदर्शों और मूल्यों की बात नहीं कर सकता अपितु मूल्यों का अवधान मानव-समाज के राजनीतिक-सामाजिक द्वन्द्वों को भोग कर ही किसी प्रकार के आदर्श की कल्पना करता है। साहित्य अपने समय के यथार्थ को कला के धरातल पर उकेरता है। डॉ. राजकुमार शर्मा ने साहित्य के यथार्थ को महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा, "जब कभी साहित्य को राजनीति की दलदल में घसीट लाने से हमें उसकी शुद्धता खतरे में पड़ती हुई दिखाई देने लगती है, तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम भाववादी जाल में फंसने लगे हैं। राजनीति केवल बुर्जुआ का ही दूसरा रूप नहीं है, बल्कि सामूहिक प्रयासों द्वारा हमारी जीवन-परिस्थितियों में आवश्यक बदलाव लाने का विज्ञान है।"[35] आशय यह है कि काव्य राजनीति के सान्निध्य से विशेष ऊर्जा प्राप्त करता है और उस ऊर्जा के द्वारा ही समाज को प्रभावित करता है।

काव्य और राजनीति के सम्बन्ध-सूत्रों पर रचनाकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से प्रेरित होकर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। प्रमुख रूप से ऐसे विचारों को तीन भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम वर्ग के विद्वज्जन राजनीति को युग की कारिका शक्ति मानते हुए उसे मानवीय उत्पीड़न का मूल उत्स मानते हैं। इन विद्वानों के अनुसार राजनीतिक चेतना आज के ही युग का नहीं बल्कि प्राचीन युग में भी साहित्य का आधार होती थी। विद्वानों का दूसरा वर्ग राजनीति को जीवन का एक पक्ष तो मानता है, किन्तु यह आधार पक्ष नहीं। इनका कहना है कि राजनीति काव्य के लिए केवल राजनीतिक मूल्य उपलब्ध कराती है। राजनीति मानव-मूल्य बनकर काव्य में आती जरूर है, किन्तु राजनीति से रहित काव्य भी श्रेष्ठ एवं प्रभावोत्पादक हो सकता है। तीसरा वर्ग काव्य और राजनीति में मूल विरोध मानते हुए राजनीति को कविता की कोमलता के लिए हानिकारक मानते हैं।

---

35 शर्मा, (डॉ.) राजकुमार, *विचार और साहित्य*, पृष्ठ 47

युग के संघर्षों के प्रति सचेत रचनाकार राजनीतिक सन्दर्भों को अपने सबसे नजदीक पाता है। युग के प्रति दायित्व वहन करने वाला रचनाकार राजनीति और काव्य के दृष्टिकोण से गहरे रूप से जुड़े हैं।

यथार्थ से बद्ध काव्य-संसार एक अर्थ में राजनीतिक अनुभवों से जुड़ा हुआ संसार होता है। व्यापक अर्थों में रचनाकार सन्दर्भों के प्रति सचेत न रहकर भी राजनीतिक असंगतियों को उभारता है; क्योंकि उसकी रचना के भाव और पात्र उस वातावरण से ही उपजते हैं, जिन पर राजनीति की छाया सदैव मण्डराती है। इसलिए कवि धूमिल का विचार है कि "युवा लेखन के लिए राजनीतिक समझदारी जरूरी है। बिना इस राजनीतिक समझदारी के आज का लेखन सम्भव नहीं।"[36] ये विचार आज के काव्य पर ही लागू नहीं होते, बल्कि प्राचीन साहित्य पर सटीक बैठते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार "जनता और कवि के सम्बन्धों को समाज का दर्पण बनाने वाला कवि और कलाकार समाज की सबसे कठोर वास्तविकता राजनीतिक पराधीनता के प्रति उदासीन नहीं रह सकता।"[37]

काव्य मानव-जीवन को उदार भी बनाता है। राजनीति भी उसका एक रूप है। लेकिन यह केवल उसका एकमात्र रूप नहीं है। एक वर्ग साहित्य को राजनीति से अधिक व्यापक, विस्तृत एवं प्रभावोत्पादक मानता है। जैनेन्द्र ने राजनीतिक आचारहीनता को सार्थक दिशा देने की दृष्टि से काव्य को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उनका कहना है, "साहित्य जो 'सर्व की प्रत्येकता' पर जोर देता है और वैविध्य के वैलक्षण्य को हमारे लिए बनाये रखता है, वह राजनीति को आवश्यक संशोधन दे सकता है। राज्य या राजनीति कभी नहीं जान पाएगी कि वह इस दुश्चक्र से कैसे बाहर आए जो उसकी एकान्तिकता ने उसके आसपास निर्मित कर

---

[36] 'धूमिल', सुदामा पाण्डेय, सुनना मुझे, पृष्ठ 4

[37] शर्मा, डॉ. रामविलास, *प्रगति और परम्परा*, पृष्ठ 47

दिया है।"[38] राजनीति का मार्गदर्शन बनकर साहित्य मानवता को सही मार्ग पर ले जाता है।

साहित्यकार की भूमिका समाज में युगद्रष्टा की होती है, जो भ्रष्ट राजनीति को और अधिक भ्रष्ट होने से रोकती है। युगगति को दिशा देने वाला काव्य गाइड की भाँति राजनीति को भटकने नहीं देता। प्रेमचन्द ने भी लिखा है- "साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन जुटाना नहीं है, उसका दरजा इतना नीचे न गिराइए। दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।"[39] माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा कि, "राजनीतिक हथकण्डों के, नेतृत्व के, धन के तथा साहित्य के जरायमपेशा लोगों के लिए तो दृढ़ता की जमीन साहित्य को ही निर्माण करनी होगी।... राजनीति से दूर भी क्या कोई साहित्य कहीं बना? क्या बन सकता है।"[40]

कवियों का एक ऐसा वर्ग भी है, जो काव्य के लिए राजनीति को अनिवार्य नहीं मानता है, बल्कि इसको काव्य के लिए घातक भी मानता है। इनका कहना है कि काव्य राजनीति का स्पर्श पाकर भ्रष्ट हो जाता है। इस सन्दर्भ में जगदीश चतुर्वेदी का मानना है कि "मुझे खेद है कि मैं रोटी, हड़ताल, राजनीति जैसे मोटे विषयों पर बात तो कर सकता हूँ। उन्हें काव्य के लिए स्वीकार नहीं कर सकता।"[41] लेकिन एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है कि "राष्ट्रीय संकट की छोटी-मोटी बातें इन कवियों के अन्त:करण को कविता रचने की प्रेरणा नहीं देती, यह राजनीतिज्ञ या सैनिक का काम है।"[42] भगवतीचरण वर्मा भी राजनीति को साहित्य के

---

[38] जैनेन्द्र, *साहित्य का श्रेय और प्रेय,* पृष्ठ 310

[39] प्रेमचन्द, *साहित्य का उद्देश्य*, पृष्ठ 22

[40] चतुर्वेदी, माखनलाल, *ग्रंथावली : भाग-2*, पृष्ठ 344

[41] चतुर्वेदी, जगदीश, *इतिहासहन्ता*, पृष्ठ 4

[42] वही, पृष्ठ 9

लिए उचित नहीं मानते हैं।[43] इसी के अनुरूप डॉ. जगदीश गुप्त ने भी लिखा है, “राजनीति के प्रति निष्ठा की माँग साहित्यकार के प्रतिबन्धन (रजिमैण्टेशन) की माँग है, जिसका दृढ़ता से विरोध किया जाना चाहिए।”[44] डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के ही अनुसार “काव्य को राजनीति के सिद्धान्त विशेष से सम्बद्ध करना उसके विकास को सीमाबद्ध कर देना है।”[45]

राजनीति और काव्य के परस्पर सम्बन्धों को किसी भी नजर से देखा जाए, इस तर्क को नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता कि कविता' पहले कविता है। फिर भी दोनों का सम्बन्ध अवश्य होता है। इसी सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कुंवरपाल सिंह ने लिखा है- “किसी कलाकृति का मूल्य उसके रचयिता, लेखक या कलाकार के सचेत रूप से स्वीकृत राजनीतिक सिद्धान्तों तथा पूर्वाग्रहों तक ही सीमित नहीं होता है। वास्तविकता किसी कलाकृति और विषयवस्तु के अन्दर किसी सीमा तक सजीव और स्पन्दित रूप से प्रतिबिम्बित होती है, इसके राजनीतिक मूल्य का वही स्रोत होता है।”[46] अत: कविता राजनीति के साथ मिलकर अधिक सम्प्रेषणीय हो जाती है, लेकिन उसमें अराजकता का अभाव होना जरूरी होता है। वैसे भी साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और राजनीति समाज का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है। अतः व्यक्ति के सुख-दुख से जुड़ने वाली कविता सहज ही राजनीति से भी जुड़ जाती है। अत: दोनों का सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाता है।

साहित्य और राजनीति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। साहित्य और राजनीति का असर एक-दूसरे पर होने से रोका नहीं जा सकता। चाहे राजनीति का युग हो या साहित्य का। नीत्शे

---

[43] वर्मा, भगवतीचरण, *आजकल,* अक्तूबर, 1975, पृष्ठ 5

[44] गुप्त, डॉ. जगदीश, *नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ,* पृष्ठ 272

[45] गुप्त, डॉ. सुरेश, *आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त*, पृष्ठ 520

[46] सिंह, कुंवरपाल, *साहित्य और राजनीति*, पृष्ठ 49

साहित्यकार था लेकिन आधुनिक राजनीति पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेनिन को कोई भी साहित्यकार नहीं कहता, फिर भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

भारतीय मान्यताओं के अनुसार साहित्य प्रथम है, बाद में राजनीति और अर्थ। किन्तु मार्क्सवादी चिन्तक साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता न मानकर उसे केवल एक साधन ही मानता है। उसके अनुसार साहित्यकार का मूल उद्देश्य यही है कि वह पूँजीपति वर्ग के विरोध में सर्वहारा वर्ग की आवाज बुलन्द करे तथा उन्हें विद्रोह के लिए प्रोत्साहित करे। साहित्यकार और जनता का सम्बन्ध राजनीति का नहीं परन्तु उस सम्बन्ध में राजनीति का बहुत बड़ा अंश है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। राजनीति का प्रश्न जीवन की तमाम समस्याओं में घुल-मिल जाता है। स्पष्ट है कि जब साहित्य जीवन को ग्रहण करता है, तब राजनीति सहज ही उसमें समाविष्ट हो जाती है तथा साहित्य में युगीन राजनीतिक चेतना के दर्शन होते हैं। "कवि सीधे राजनीतिक संसार की रचना भले ही नहीं करता हो, पर जो भी संसार वह कविता में रचता है, वह यदि सार्थक है तो राजनीति के अनुभव और उसी के औजारों से बना हुआ संसार होता है। सारी सार्थक और समर्थ कविता किसी न किसी स्तर पर परिवेश से आदमी के सम्बन्ध को तथा आदमी-आदमी के सम्बन्ध को नए सिरे से परिभाषित करती है।"[47]

प्राचीन समय में राजनीति इतनी आवश्यक नहीं थी, लेकिन आज व्यक्ति पूरी तरह राजनीति से जुड़ गया है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी राजनीति के दाँव-पेच सीख चुका है। अब यह मानव की नियति बन गई है। इसने अपनी शक्ति द्वारा आज मानव के आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में भी घुसपैठ शुरू कर दी है। राजनीति का शक्तिसिद्ध चरित्र साधारणजन के लिए सुख-दुःख, उल्लास–विषाद, उत्थान–पतन का कारण बन गया है। ऐसी परिस्थिति

---

[47] जैन, नेमिचन्द, *आलोचना,* जुलाई-सितम्बर, 1968 पृष्ठ 7

में सजग राजनीतिक चेतना अपने युग-विवेक द्वारा राजनीति की अनाचारी शक्तियों को चुनौती देते हुए उनसे जूझती है। काव्य का रचना-कर्म युग-सन्दर्भों से जुड़कर ही सार्थक होता है। और आज राजनीति ही सभी क्षेत्रों पर प्रभावी हो उठी है। अत: संवेदनशील कवि के लिए इससे अच्छा और क्या हो सकता है। अत: कवि भी इसी संवेदना को पकड़कर अपने काव्य में इसे अभिव्यक्त करता है। कवि अपने शब्दों के अस्त्र-शस्त्रों से राजनीतिक असंगतियों, विसंगतियों के दुष्चक्र से त्रस्त, उत्पीड़ित मानवता को मुक्त करता है। राजनीतिक आतंक से पीड़ित मानवता की व्यथा ही कवि की आत्मा का अंग बनकर सम्पूर्ण मानव की खोज के रूप में काव्य में अर्पित होती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि काव्य और राजनीति का बहुत ही गहन एवं सूक्ष्म स्तर पर सम्बन्ध है। क्योंकि समाज के साथ राजनीति भी जुड़ी है और काव्य समाज से। अत: दोनों ही एक-दूसरे का साथ निभाते हैं और कवि या कलाकार को छेड़ते हैं।

4.6. समाज और राजनीति

सामाजिक जीवन का एक पहलू राजनीति है। राजनीति समाज के प्रगति और अधोगति में बराबर हाथ बँटाती है। शासक यदि विलासी, भोगी, स्वार्थी, निरंकुश रहा तो समाज पतन की ओर जाता है। इतना ही नहीं उसमें स्वाभिमान और शक्ति न होने पर भी वह पतन की ओर जाता है। दूसरी ओर राजनीतिज्ञ या शासक उदात्त, निस्वार्थी, मानवीय मूल्यों का रक्षक, चरित्रवान, स्वाभिमानी और बलशाली हो तो समाज की प्रगति की गति उत्तरोत्तर यशोशिखर को छूती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि राजनीति एक सामाजिक व्यापार है। सामाजिक क्षेत्र में किया गया उद्यम राजनीतिक व्यापार है। उसमें सत्ता की नीति, अधिकार की भावना होती है। प्राचीनकाल में राजनीति का क्षेत्र आन्तरिक और बाह्य नियन्त्रण और सुरक्षा तक ही सीमित था। आज लोकमंगल का क्षेत्र राजनीति का बन गया है। राजनीति का क्षेत्र ऐसा है, जिसमें सामाजिक जीवन के मूल्य, विश्वास, परम्परा आदि

तत्त्वों शामिल हैं। इन्हीं तत्त्वों से राजनीति का शरीर बनता है, और पुष्ट भी होता है। राजनीति सामाजिक संघर्ष के बीच सन्तुलन रखती है। इसीलिए राजनीति का कार्यक्षेत्र राष्ट्र की सुरक्षा तक ही नहीं, बल्कि प्रजा की रक्षा तथा कल्याण तक व्यापक रूप में बढ़ा है।

मनुष्य के जीवन का मध्य बिन्दु राजनीति है। मनुष्य के व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आदि तत्त्वों से राजनीति आकार लेती है। जिस तरह का समाज होगा, उसी तरह की राजनीति होगी और जिस तरह की राजनीति होगी, उसी तरह का समाज होगा। भ्रष्ट समाज भ्रष्ट राजनीति को जन्म देता है।

राजनीति मनुष्य के विवादास्पद लक्ष्य और स्वार्थ में मौजुद है। राजनीति में कहीं दलिय कार्य व्यापार समझा जाता है, कहीं निर्णय या नीति निर्धारण, तो कहीं क्षमता संघर्ष को ही राजनीति कहा जाता है। सारत: सामाजिक जीवन की जटिलता में राजनीति सांस लेती है तो दूसरी ओर राजनीति से ही सामाजिक जीवन की जटिलता का समाधान निहित है। अर्थात् समाज और राजनीति एक दूसरे के पूरक है। समाज अपनी सुरक्षा और कल्याण के लिए राजनीति को शक्ति प्रदान करता है और यही शक्ति अधिकार का रूप धारण करती है। यह अधिकार समाज कल्याण की ओर अग्रसर होता है। इस अधिकार का प्रयोग समाजभिमुख हो, तो वह अबाधित रहता है और दुरूपयोग के प्रयोग से सत्ता को ग्रहण लगने का खतरा रहता है। उसको खत्म करने का अधिकार समाज के पास है। अर्थात् इस अधिकार का सदुपयोग और दुरूपयोग समाज के सम्यक बुद्धि पर आधारित है। तात्पर्य समाज और राजनीति ऐसे ही परस्पर सहायता करते हुए सभ्यता और संस्कृति का विकास करती है।

राजनीति, समाज और शासक का अभिन्न अंग है। सचेत, सृजनशील, सुजान व्यक्ति राजनीति को बारिकी से परख सकता है। राजनीति तब सक्षम हो सकती है, जब उसमें शुद्धता भरा पारदर्शक व्यवहार हो। हर तरह कि राजनीति समाज अपनाएगा यह कल्पना

ही धारणा के विरूद्ध लगती है। राजनीति में कूटनीति का प्रभाव ही अध:पतन का मूल है। दुनिया में सत्ता की भूख भयानक होती है। वह दूसरों को और स्वयं को भी स्वाहा कर लेती है। उसका स्वरूप ही बदल डालती है। जब राजनीति सत्ता का रूप लेती है, तब उसमें लोलुपता होती है। राजनीति में गुण को अवगुण माना जाता है। राजनीति में छल-कपट, अविश्वास सदा रहता है। यह राजनीति का विकृत रूप है। इस प्रकार राजनीति सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग है। राजनीति समाज के धर्म, अर्थ, संस्कृति आदि कई क्षेत्रों में प्रवेशित होती है और उसे बनाती-बिगाड़ती है। जीवन का हर पहलू राजनीति के इशारे पर चलता है। साहित्य, समाज और राजनीति के अन्तर-सम्बन्ध को ध्यान में रखकर गोपाल सिंह 'नेपाली' के युगीन राजनीतिक यथार्थ के स्वरूप एवं उनकी कविताओं में उसकी अभिव्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्व की राजनीति एवं स्वतान्त्योतर राजनीति, दो स्तर पर देखने का प्रयास करेंगे।

4.7. गोपाल सिंह 'नेपाली' और राजनीतिक यथार्थ

गोपाल सिंह 'नेपाली' का साहित्य आधुनिक काल के प्रांगण की परिस्थितियों में विकसित हुआ, जब भारत में अंग्रेजी राज्य पूर्ण प्रभुत्व में था। यह युग केवल व्यापार के लिए आए हुए विदेशियों के द्वारा किए जाने वाले शोषण मात्र का ही समय नहीं था, अपितु अंग्रेजी-सरकार के भारत में जमने, यहाँ के समाज को अपने ढंग से मोड़ने यहाँ के अर्थतन्त्र को क्षीण करने और यहाँ की संस्कृति को विकृत करके प्रस्तुत करने के प्रयास का भी युग था। 'नेपाली' के युगीन काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं-- अंग्रेजों के मन्तव्य को समझाना, भारतवासियों को गुलामी से मुक्ति के लिए जागरूक करना तथा देश की स्वतन्त्रता की कामना करना। इन परिस्थितियों में रहकर 'नेपाली' ने साहित्य साधना की।

4.7.1. स्वतन्त्रतापूर्व का राजनीतिक यथार्थ

सन् 1857 की असफल क्रान्ति से भारत में स्वतन्त्रता का सुत्रपात हुआ था। तथापि सन्

1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद आजादी की संवैधानिक लड़ाई आरम्भ हुई। इसी के साथ राष्ट्रीयता का भी उदय हुआ। इसी सन्दर्भ में आर. सी. मुजुमदार ने लिखा है 'कांग्रेस ही वह धुरी थी, जिसके चारों ओर स्वतन्त्रता की महान-गाथा की विविध घटनाएँ घटित हुई।"[48] सन् 1905 तक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर राष्ट्रवादियों का वर्चस्व था। राष्ट्रवादी उग्र राजनीति से प्रेरित थे और हिंसात्मक कार्यवाही का समर्थन करते थे। लॉर्ड कर्जन ने 20 जुलाई 1905 को एक आदेश जारी कर के बंगाल को विभाजित किया। इसका विरोध आरम्भ में नरमपन्थी और बाद में उग्र और क्रान्तिकारी राष्ट्रवादियों ने किया। सरकार का अमानुष दमन और जनता में नेतृत्व के अभाव के कारण क्रान्तिकारी आतंकवाद पैदा हुआ। बंगाल के युवक बम का आधार लेकर हिंसात्मक हो गए, किन्तु इन्हें जनता का सहयोग न मिल सका। विभाजन का विरोध करने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के नरमपन्थी और गरमपन्थी इकट्ठे हुए। सन् 1905 में कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष गोखले ने विभाजन की निन्दा की और इसका बहिष्कार किया तथा स्वदेशी आन्दोलन का प्रसार करने का निश्चय किया। स्वदेशी आन्दोलन के प्रमुख लाल लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल थे। इन्होंने विभिन्न प्रान्तों में स्वदेशी का प्रचार-प्रसार किया। इधर अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस में फूट की नीति अपनायी। परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग (सन् 1906) तथा हिन्दू महासभा (सन् 1906) की स्थापना हो गई। राजनीति में धर्म के आने से भारतीय समाज की संवेदना पर गहरी चोट पहुँची। साथ ही यह राष्ट्र के हित में बाधक बनी। इन्हीं दिनों सरकार ने 'मार्लो-मिण्टो सुधार' योजना लागू की। जिसके असन्तोष सुधारों से प्रेरित होकर पुनः एक होकर राष्ट्रीय हित की बात सोचने लगे। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में एक होमरूल लीग 1915-16 में स्थापित हुई। जिसका नेतृत्व श्रीमती एनी बेसेंट और एस. सुब्रमण्यम अय्यर को दिया गया। इन्होंने मुस्लिम लीग के सहयोग से पूरे देश में इस माँग को प्रचारित किया कि विश्वयुद्ध के बाद भारत को होमरूल

---

[48] राय, एम.पी., *भारतीय राजनीति व्यवस्था* , पृष्ठ 03

या स्वशासन दिया जाए। इस काल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास हुआ। दूसरी तरफ विदेश में रह रहे भारतीय क्रान्तिकारियों ने सन् 1916 में गदर पार्टी की स्थापना की। इस पार्टी ने पंजाब में सशस्त्र विद्रोह के लिए 21 फरवरी 1916 की तारीख निश्चित की, किन्तु दुर्भाग्यवश अधिकारियों को इस योजना का पता चल गया और विद्रोह अमनुष्यता से कुचला दिया। देश में बार-बार स्वाधीनता आन्दोलन सफल होते होते रह जाता और उस आन्दोलन को अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया जाता था।

"नभ के नीचे हरियाली में जब हम मधु पीयेंगे
मधु खायेंगे, मधु पीयेंगे, मधु से ही जियेंगे
संध्या होते-होते पहुँचा तीर एक सरिता के
थकन दूर करने के हित वह बैठा तट पर जाके
इतने में आ पहुँची आँधी जोरों की उस क्षण में
मधुप गिरा लुढ़की तट के बालू-कण में" [49]

सन् 1916 में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन कुछ ठण्डा पड़ गया, क्योंकि तत्कालीन स्थिति बहुत ही विकट बन गई थी। बिहार के चम्पारण जिले में किसानों कि स्थिति भूखमरी वाली हो गई थी, गुजरात के खेड़ा जिले में अनावृष्टि के कारण किसान के हालत अच्छे नहीं थे। दूसरी तरफ प्रथम विश्वयुद्ध के खर्च का भार भी भारतीयों पर अधिक से अधिक कर लगाकर डाल दिया गया। किसान अपनी दयनीय हालत तथा प्रकृति की मार से आहत होकर लगान माफी की माँग कर रहे थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कोई सहानुभूति नहीं दिखाई और अपना रुख उग्र रखा। कृषक वर्ग के असन्तोष के कारण उग्रतावादी विचार को कुचलने के लिए सरकार ने रौलेक्ट एक्ट पास किया।

यह वही समय है जब गाँधीजी का प्रवेश भारतीय राजनीति में होता है। गाँधीजी इस शर्त पर भारतीय राजनीति में शामिल हुए कि 'वे उसी संगठन से जुड़ेंगे, जो उनकी नीतियों से

---

[49] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 47

प्रभावित हो।'[50] और गाँधीजी की नीति में सत्याग्रह मुख्य रास्ता था जिसपर चलकर औपनिवेशिक साम्राज्य को झुकाया जा सकता था। उस समय गाँधीजी के इस रास्ते पर पूरी जनता चलने को तैयार खड़ी थी। गोपाल सिंह नेपाली भी गाँधीजी के इस रास्ते का समर्थन करते थे। उन्होंने सत्याग्रह के प्रति आस्था रखते हुए लिखा-

"है अपूर्व यह युद्ध हमारा, हिंसा की न लड़ाई है
नंगी छाती की तोपों के ऊपर विकट चढ़ाई है
तलवारों की धार मोड़ने गर्दन आगे आई है
सर की मार से डण्डों की होती यहाँ सफाई है
मर मिटने में ही होता है मान यहाँ बलवानों का
ऐसी-वैसी यह न लड़ाई, महासमर मरदानों का
जिसमें अन्त नहीं आहुति का प्राणों के बलिदानों का"[51]

गाँधीजी ने कांग्रेस में पदार्पण के साथ ही उन्होंने देश को राष्ट्रीय चेतना की शक्ति प्रदान की। भारतीयों की योग्यता, चेतना और बल को निश्चित दिशा प्रदान की और जनजागरण का आह्वान किया।

राजनैतिक क्षितिज पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की घोषणा सन् 1927 में ही कर दी थी। जिससे स्वाधीनता संग्राम को नवीन मोड़ मिला। जिसके फलस्वरूप नव युवकों और मजदूरों में जागृति की लहर आई और उमंग का संचार हुआ। भारतीय जनमानस को इस घोषणा के बाद जो उषा की किरण दिखी उसे 'नेपाली' ने अपनी काव्य रचना *उमंग* में अभिव्यक्त किया--

"चहक उठा तम के हटते ही पंक्षी अपने घर में
बजने लगी मधुर शहनाई नीड़ों में, तरुवर में
लोचन खुले मधुकरी के जब सोते-सोते देखा

---

[50] चंद्र, विपिन, *भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष*, पृष्ठ 129

[51] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 83

दूर क्षितिज में कहीं-कहीं पर खिंची उषा की रेखा"[52]

अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा हर तरह के आन्दोलन को बर्बरता के साथ दबाने की कोशिश लगातार होते रहती थी। इस बर्बरता के कारण जनता की उमंग मन्द न पड़ जाए इसलिए कवि अपनी कविता के माध्यम से जनता में उमंग भरने एवं उसे संचरित करने का प्रयास करता रहा।

"मानस के कोने-कोने में / आ मेरे प्राणों में
आ यौवन की इस मस्ती में / मस्ती के गानों में
नस-नस में नाड़ी-नाड़ी में / सोये अरमानों में
आ बरसों से इसे इस जीवन के / कुचले अभिमानों में
आ जल्दी मेरी कविता में / यौवन की क्रीड़ा में
जीवन की ब्रीड़ा-ब्रीड़ा में / पीड़ा की पीड़ा में"[53]

देश में यत्र-तत्र, विशेषरूप से बम्बई और बंगाल में युवक संघों और छात्र संघों का गठन हुआ। देश में होने वाले सभी आन्दोलनों में इन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया वस्तुत: भारतीय युवकों और मजदूरों में एक नवीन राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था। गोपाल सिंह 'नेपाली' ने इस बात से इत्तफाक रखते थे कि अगर युवा संगठित हो गए तो हम आजादी के आन्दोलन में सफल हो जाएँगे। इसलिए युवाओं का जोश बढ़ाने के लिए उन्होंने लिखा—

"हैं जीवन हम, हैं यौवन हम, हैं यौवन के उन्माद हमीं
जो हिला-डुला दे दुनिया को उस विप्लव के सिंहनाद हमीं
जिसपर अवलम्बित क्रान्ति प्रबल वह पत्थर की बुनियाद हमीं
जिसमें साहस, शक्ति भरी वह 'ब्रह्मा' की ईजाद हमीं
भारत के लाल हमीं..."[54]

---

[52] वही पृष्ठ 45

[53] वही, पृष्ठ 76

अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव और प्रबल आन्दोलन से आशंकित होकर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की घोषणा की, किन्तु बाद में यह प्रामाणिक हो गया कि घोषणा प्रवंचना मात्र थी। जनता में पूर्ण स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए एक अपूर्व उत्तेजना थी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष करने का उद्भूत उत्साह तथा दृढ संकल्प। इस समय एक ओर तो जनता अत्यन्त व्यग्रता से आन्दोलन आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रही थी, दूसरी ओर सरकार आन्दोलन को दबाने के लिए कृतसंकल्प थी।

गोपाल सिंह नेपाली जब किशोरावस्था में थे उसी समय उनके जन्म-स्थान चम्पारण में गाँधी जी ने वहाँ के किसानों की माँग पर सत्याग्रह आरम्भ किया। जिसकी सौवीं वर्षगाँठ इसी वर्ष (सन् 2017) में मनाई गई है। अंग्रेजी साम्राज्य ने चम्पारण (बिहार) के किसानों से एक करार किया था, किसानों को अपने कृषिजन्य क्षेत्र के 3/20 वें भाग पर नील की खेती करनी होती थी। इसे 'तिनकठिया पद्धति' के नाम से जाना जाता था। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दिनों में रासायनिक रंगों की खोज और उनके बढ़ते प्रचलन के कारण नील की माँग कम होने लगी जिसके कारण नील बागान मालिक चम्पारण में स्थित नील कारखानों को बन्द करने लगे। किसानों को भी नील का उत्पादन से बहुत घाटा होता था। वे भी नील बागान मालिकों से किए गए करार को खत्म करना चाहते थे। लेकिन किसानों से हुए करार से मुक्त करने के लिए बागान मालिक भारी लगान की माँग करने लगे। परेशान किसान विद्रोह पर उतर आए। राजकुमार शुक्ल ने किसानों का नेतृत्व करने का निर्णय लिया और गाँधी जी को चम्पारण लाने के लिए प्रयास करने लगे।

1916 में राजकुमार शुक्ल ने लखनऊ जाकर महात्मा गाँधी से मुलाकात की और चम्पारण के किसानों को इस अन्यायपूर्ण प्रक्रिया से मुक्त कराने के लिए आन्दोलन का नेतृत्व करने का अनुरोध किया। गाँधी जी उनका अनुरोध स्वीकार कर चम्पारण पहुँचे तो वहाँ के अंग्रेजी प्रशासन ने उन्हें जिला छोडने का आदेश जारी कर दिया। गाँधी जी ने इस पर सत्याग्रह

---

[54] वही, 82

करने की धमकी दे डाली, जिससे घबराकर प्रशासन ने उनके लिए जारी आदेश वापस ले लिया। चम्पारण में सत्याग्रह, भारत में गाँधी जी द्वारा सत्याग्रह के प्रयोग की पहली घटना थी।

चम्पारण आन्दोलन में गाँधी जी के नेतृत्व में किसानों की एकजुटता को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने जुलाई 1916 में इस मामले की जांच के लिए एक आयोग का गठन किया। गाँधी जी को भी इसका सदस्य बनाया गया। आयोग की सलाह मानते हुए सरकार ने तिनकठिया पद्धति को समाप्त घोषित कर दिया। किसानों से वसूले गए धन का भी 25 प्रतिशत वापस कराया गया। आन्दोलन की सफलता के बाद जनता का विश्वास गाँधीजी के प्रति बहुत बढ़ गया। आम-जनता गाँधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन में मर मिटने को तैयार हो गई। कवि नेपाली पर गाँधीजी के आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा। नन्द किशोर नन्दन ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि “1920 से 1942 तक चम्पारण में स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान होने वाली क्रान्तिकारी गतिविधियों ने कवि नेपाली के किशोर मानस में उथल-पुथल मचा रखी थी।”[55] गोपाल सिंह नेपाली का सम्बन्ध किसी पार्टी विशेष से न था, न वे किसी राजनीतिक पार्टी की विचारधारा से प्रभावित थे और न वे प्रगतिवादियों की तरह राजनीतिक कविता लिखते थे। उनकी कविता में युगीन राजनीति का यथार्थ सहजता से अभिव्यक्त होता रहा है। गोपाल सिंह नेपाली का जन्म चम्पारण में हुआ था। यह भूमि गाँधी के कर्म भूमि के रूप में भी जानी जाती है। नील्हों की आवाज पर गाँधीजी ने यहाँ से सत्याग्रह शुरू किया था। इस सन्दर्भ में प्रजापति मिश्र के आमन्त्रण पर गाँधीजी ने चम्पारण का दौरा भी किया था। नील्हों के दुःख और गाँधी के प्रति आस्था को नेपाली ने लिखा—

“बहुत दूर उड़कर मधुवन में पहुँचा कुंज-विहारी
देख गया सारी फुलवारी, वन की क्यारी-क्यारी

---

[55] नन्दन नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि*, पृष्ठ 54

किन्तु, मिला न एक भी हँसता सुमन उसे वन भर में

बैठी थी मधुपों की टोली आशा में, तरुवर में

भीतर ही रहती थी कलियाँ मुँह पर पर्दा डाले

बाट जोहते थे आँगन में उन्हें चाहने वाले

बहुत दिनों के बैठे मधुकर प्यासे थे, भूखे थे

तब के मोटे अब पतले थे, दुबले थे, सूखे थे[56]

स्वयं कवि गोपाल सिंह नेपाली पर गाँधीजी का बहुत प्रभाव था। नन्दकिशोर नन्दन ने अपनी पुस्तक गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि में एक घटना का उल्लेख किया कि "तरुण कवि को मोतिहारी में गाँधीजी के आने की खबर मिली तो वह स्वयं को रोक न सके और सोलह साल की उम्र में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के दर्शन के लिए मोतिहारी गए।"[57]

स्वतन्त्रता सेनानी प्रजापति मिश्र के आमन्त्रण पर जब गाँधीजी बेतिया आए तो हाफिज मोहम्मद सानी के उपवन में उन्हें सुनने के लिए नेपाली पहुँच गए। स्पष्ट है कि नेपाली अपने युगीन आजादी के लिए चल रहे आन्दोलनों के प्रति जागरूक थे। एक साक्षात्कार में नेपाली के गुरु प्रयाग दुबे ने नन्दन से कहा कि 'गोपाल दुसरे विद्यार्थियों से कहीं अधिक कुशाग्र और प्रखर दृष्टि रखने वाला छात्र था। वह पाठ्य-पुस्तक से अधिक कविता और राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों में रूचि लेता था।"[58] राजनीति के प्रति इस रूचि के कारण ही वे युग के साथ–साथ राजनीतिक यथार्थ को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं।

गोपाल सिंह नेपाली की कई कविताओं में गाँधी जी के आन्दोलन का समर्थन है, उनके सत्याग्रह के प्रति आस्था है। गाँधी जी ने 10 मार्च 1920 को पहली बार इस बात की

---

[56] नेपाली गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 46

[57] नन्दन नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि*, पृष्ठ 54

[58] वही, पृष्ठ 54

घोषणा की कि, राजनीतिक समस्याओं का हल असहयोग आन्दोलन ही है। इस आन्दोलन ने सम्पूर्ण देश को राष्ट्रीयता की भावना में बाँध दिया। 04 सितम्बर 1920 को होनेवाली कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन की तैयारियाँ गति के साथ हो रही थी। लोग वकालत, स्कूल-कॉलेज तथा खिताब छोड़ रहे थे। बहिष्कार कर रहे थे असहयोग और खिलाफत दोनों में समझौता हो रहा था।

भारतवासियों में अब स्वतन्त्रता की लहर काफी तेज हो रही थी। क्योंकि उन्होंने परतन्त्रता में हो रही कुण्ठा का अनुभव किया है। परतन्त्रता व्यक्ति के विकास में बाधक है। उस युग में गाँधी जी का प्रभाव इतना बढ़ रहा था कि, लोग उनके पक्ष में कुछ करने के लिए तैयार थे।

कलकत्ता अधिवेशन की जागृति से पूरे देश में हलचल-सी मची थी। उसकी तैयारियाँ भी बहुत ही तेज गति से हो रही थी। गाँधी जी का विश्वास था कि, असहयोग, अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा भारत आजाद होगा। क्योंकि सिर्फ दो लाख अंग्रेज उसमें से डेढ़ लाख सैनिक और पचास हजार शासन के अधिकारी थे। ये लोग 33 करोड़ पर सत्ता चला रहे थे। उनका मानना था कि इतनी बड़ी जनता के कड़े विरोध से अंग्रेजों को झुकना पड़ेगा और हम उनकी गुलामी से मुक्त हो सकते हैं। उनका यह भी मानना था कि यह तभी सम्भव है जब हम उनकी प्रशासन की नौकरी का बहिष्कार करना शुरू कर दें। तभी हम जल्द से जल्द आजादी पा सकते हैं। उन दिनों गाँधी जी ने लोगों में यह विश्वास भरा था कि समस्त देश को अंग्रेजों का गुलाम बनाए रखने में अंग्रेजों की सहायता कर रहे हैं। अगर ये लोग अंग्रेजों को अपना सहयोग देना बन्द कर दें तो इन अंग्रेजों के लिए हिन्दूस्तान का शासन चलाना असम्भव हो जाएगा, यही नहीं, इनका हिन्दूस्तान में रहना असम्भव हो जाएगा। गाँधीजी का यह असहयोग काफी सफल रहा किन्तु कुछ हिंसात्मक घटना होने के कारण उसे वापस ले लिया गया। नेपाली ने गाँधी जी के असहयोग में विश्वास रखते हुए लिखा—

"भले न समझूँ मैं मधुपों के मृदु मधु चखने का आशय

भले रहे मेरे जीवन के कानन का पथ कण्टकमय"[59]

आम जनता के साथ नेपाली ने निर्भय होकर इस राह पर चलने का निश्चय किया—

"चाहे हो मेरे विरुद्ध में भावी का सारा निर्णय
चलता रहूँ पर अपनी, जग में मचता रहे प्रलय
लगता जहाँ तनिक जाने में बड़े-बड़े वीरों को भय
उस वेदी पर चढ़कर देखूँ, रे यह यौवन का निश्चय"[60]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का संघर्ष असहयोग आन्दोलन के पश्चात् भी चलता रहा। सन् 1930 तक कांग्रेस ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए सरकार से कई माँगें कीं, लेकिन सभी माँगें सरकार द्वारा ठुकरा दी जाती थीं। अन्ततः सन् 1930 में महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience Movement) की शुरुआत नमक कानून के उल्लंघन से हुई। उन्होंने समुद्र तट के एक गाँव दाण्डी (Dandi, Gujarat) जाकर नमक कानून को तोड़ा। दो महीने की प्रतीक्षा के बाद गाँधीजी ने नमक-सत्याग्रह की घोषणा कर दी। लम्बे समय से भारतीय जनता ऐसी किसी प्रतिक्रिया का इन्तजार कर रही थी। गाँधीजी के दांडी यात्रा के समय लाखों लोगों ने साथ दिया। नेपाली ने इस आन्दोलन को 'स्वतन्त्रता की ओर' बढ़ते कदम के रूप में देखा, जिसके पथ को सुगम बनाने के लिए युवा ही क्या बच्चा-बच्चा, बूढ़ा-बूढ़ा कुर्बान होने के लिए पागल हो रखा था।

"आज यहाँ का बच्चा-बच्चा मिटने का अभिमानी है
देश दंग है देख-देखकर, यह कैसी कुर्बानी है
न्यौछावर आजादी पर युवकों की मस्त जवानी है

---

[59] नेपाली गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 21

[60] वही, पृष्ठ 21

बूढ़ों की अब जीर्ण जरा भी पगली है, दीवानी है"[61]

1857 की क्रान्ति के बाद इस आन्दोलन में महिलाओं ने भी भाग लिया था। 'गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत चलाये जाने वाले कार्यक्रम में तय किया कि महिलाएँ स्वयं शराब, अफ़ीम एवं विदेशी कपड़े की दुकानों पर जाकर धरना दें।'[62] नेपाली ने गाँधी के स्वर में स्वर मिलाकर नारी का आह्वान किया—

"चल सखि, चल होता है विलम्ब, पथ कौन कहाँ कैसा दुर्गम

शृंखला तोड़ बह रहा सलिल

पर तू पथ में ही पड़ी शिथिल

बावली जानती नहीं, यही तो पथ जाता सीधे संगम

बनती क्यों पथ का विघ्न अटल

उठ, इठला, इतरा, मचल-मचल

चेतनता की चंचल पुतली, इतनी जड़ क्यों, टूटो जंगम

यह तन नश्वर, पर अमर चाह

फिर हम-ऐसों की खुली राह

जीवन में हम भी तो देखें होता है कैसे उदधि अगम"[63]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन जब शुरू हुआ उसके मात्र तीन दिन बाद 15 मार्च को होली थी।[64] कवि ने 'रक्त-बिन्दु' कविता में होली के दिन नारी को क्रान्ति के लिए माथे पर लाल

---

[61] वही, पृष्ठ 91

[62] www.bharatdiscovery.org/india/सविनय_अवज्ञा_आन्दोलन

[63] नेपाली गोपाल सिंह,

[64] http://hi.drikpanchang.com/panchang/month-panchang.html?date=12/03/1930

टिका लगाने की गुहार लगाते हुए लिखा—

“कुछ गुलाल, कुछ कुंकुम रोली
पिचकारियाँ रंग में बोरी
अबिर-धूलि में मुट्ठियाँ
चोरी-चोरी कुछ बलजोरी
होली के अवसर पर जग की भोली वयस दिवानी रे
रक्त-बिन्दु लेना कपाल पर ओ अल्हड़ अभिमानी रे”

सविनय अवज्ञा के समय गाँधीजी ने सब देशवासियों को छूट दे दी कि वे अवैध रूप से नमक बनाएँ। वह चाहते थे कि जनता खुले आम नमक कानून तोड़े और पुलिस कार्यवाही के सामने अहिंसक विरोध प्रकट करे। अंग्रेजों ने आन्दोलन को दबाने के लिए लाठियाँ बरसायीं, जिसमें दो स्वयंसेवक मारे गए और 320 घायल हुए। गाँधीजी को गिरफ्तार कर यरवदा जेल में डाल दिया गया। गाँधीजी के जेल जाने के बाद भी सविनय अवज्ञा थमा नहीं। 25 जनवरी 1931 को गाँधीजी तथा कांग्रेस के अन्य सभी प्रमुख नेता बिना शर्त कारावास से रिहा कर दिए गए। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने गाँधीजी को वायसराय से चर्चा करने के लिये अधिकृत किया। तत्पश्चात 19 फरवरी 1931 को गाँधीजी ने भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन से भेंट की और उनकी बातचीत 15 दिनों तक चली। इसके परिणामस्वरूप 5 मार्च 1931 को एक समझौता हुआ, जिसे ‘गाँधी-इरविन समझौता’ कहा जाता है। इस समझौते ने कांग्रेस की स्थिति को सरकार के बराबर कर दिया। इस समझौते में सरकार की ओर से लार्ड इरविन इस बात पर सहमत हुये कि-

- हिंसात्मक अपराधियों के अतिरिक्त सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए जायेंगे।
- अपहरण की सम्पत्ति वापस कर दी जायेगी।
- विभिन्न प्रकार के जुर्मानों की वसूली को स्थगित कर दिया जायेगा
- सरकारी सेवाओं से त्यागपत्र दे चुके भारतीयों के मसले पर सहानुभूतिपूर्वक

विचार-विमर्श किया जायेगा।

- समुद्र तट की एक निश्चित सीमा के भीतर नमक तैयार करने की अनुमति दी जायेगी।
- मदिरा, अफीम और विदेशी वस्तओं की दुकानों के सम्मुख शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की आज्ञा दी जायेगी।
- आपातकालीन अध्यादेशों को वापस ले लिया जायेगा।

किन्तु वायसराय ने गाँधीजी की निम्न दो मांगे अस्वीकार कर दी-

- पुलिस ज्यादतियों की जांच करायी जाये।
- भगत सिंह तथा उनके साथियों की फांसी की सजा माफ कर दी जाये।

गाँधीजी ने आश्वासन दिया कि- सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जायेगा। तथा कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इस शर्त पर भाग लेगी कि सम्मेलन में संवैधानिक प्रश्नों के मुद्दे पर विचार करते समय परिसंघ, भारतीय उत्तरदायित्व तथा भारतीय हितों के संरक्षण एवं सुरक्षा के लिये अपरिहार्य मुद्दों पर विचार किया जायेगा। द्वितीय गोलमेज सम्मलेन में भाग लेने के लिए गाँधीजी लन्दन गए। वहाँ उन्होंने भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की जिसे ब्रिटिश सरकार के द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और गाँधीजी विक्षुब्ध होकर भारत लौटे। "जब महात्माजी राउण्डटेबले कान्फरेन्स (लन्दन, दिसम्बर 1931) में थे।"[65] नेपाली ने 'मोहन से' कविता लिखी—

"शाही महलों तक कुटियों से तुझे हमारा ध्यान रहा
'मोहन' पर कुर्बान बराबर सारा हिन्दुस्तान रहा
उजलों के काले दिल पर तूने सच्चा नक्शा खींचा

---

[65] नेपाली गोपाल सिंह, उमंग, पृष्ठ 84 (फुटनोट)

उजड़ा 'लंकाशायर' अपने गीले आँसू से सींचा"[66]

लेकिन नेपाली को यह भान था कि इस समझौते से कुछ नहीं होना जाना है। वे अंग्रेजों की नीति को समझते हुए गाँधीजी को इन समझौतों को छोड़ कर आन्दोलन का बिगुल फूँकने को कहते रहे—

"पर इससे क्या होता जाता है हम दुखियों का मोहन
यहाँ हमारे घर में जारी वैसा ही निष्ठुर दोहन
कितनी टूटें रोज लाठियाँ निरपराध, नंगे सर पर
होती है दिन-रात चढ़ाई भूखे के रीते घर पर

छोड़ो यह रोटी का टुकड़ा अदना चावल का दाना
आओ मोहन, शंख बजाओ पहने केशरिया बाना
भारत, यह तरुणों का भारत नाच उठे अब चुटकी पर
पल में क्या का क्या करदे फिर मोहन, तेरी मटकी पर"[67]

इस कविता को आधार बना कर बहुत से आलोचकों ने माना कि गोलमेज सम्मेलन के बाद नेपाली गाँधी के नीति के विरुद्ध हो गए। तैयब हुसैन के अनुसार 'उन्होंने यह कविता गाँधीवाद को धता बताते हुए लिखा है।'[68] लेकिन यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि गाँधीजी के गोलमेज सम्मेलन से लौटने पर नेपाली ने 'स्वागत' किया—

"स्वागत, ऐ मोहन, इस तट पर भारत के अभिमानों से
हिन्दू, सिक्ख, मुसलमानों से ईसाई, पठानों से"[69]

---

[66] वही, पृष्ठ 84

[67] वही, पृष्ठ 84

[68] कृषक रामकुमार (सम्पादक), अलाव अंक 31, मार्च-अप्रैल 2012, पृष्ठ 74, (लेख, वन मैन आर्मी का निहितार्थ : तैयब हुसैन)

[69] वही, पृष्ठ 85

उन्होंने इस कविता में गाँधी को राष्ट्र नायक के रूप में देखते हुए क्रान्ति की बागडोर लेकर आगे बढ़ने को कहा—

“बागडोर ले हाथों में अब, बलिवेदी पर रथ ले चल
जिस पथ से गत वर्ष गए थे हमें वही अब पथ ले चल
जितने हैं ये नाग भयंकर उन सबको तू नथ ले चल
छोड़-छोड़ अब सात समुन्दर गंगा ही को मथ ले चल”[70]

भारत लौटकर गाँधीजी ने अपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को और तेज कर दिया। सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया। सरकार की कठोर दमन नीति के बावजूद आन्दोलन चलता रहा। इस दौरान दो बड़ी घटनाएँ घटी। पहली भगत सिंह और उनके साथियों को फाँसी की सजा हुई और दूसरी सरकार ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच तो फूट डाला ही साथ ही अछूतों को भी हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने का प्रयास के अन्तर्गत 16 अगस्त 1932 को ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री रेम्जे मेकडोनाल्ड ने ‘साम्प्रदायिक निर्णय’ की घोषणा कर दी।

भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त पर असेंबली में बम फेंकने का केस चला। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को सांडर्स की हत्या का दोषी को माना गया। तीनों पर सांडर्स को मारने के अलावा देशद्रोह का केस चला और दोषी माना गया। बटुकेश्वर दत्त को असेंबली में बम फेंकने के लिए उम्रकैद की सजा सुनाई गई। 7 अक्टूबर 1930 को फैसला सुनाया गया कि भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी पर लटकाया जाए और 24 मार्च 1931 को फाँसी का दिन तय हुआ। नेपाली ने ‘प्रस्थान’ नामक कविता में इन क्रान्तिकारियों की वीरता का सम्मान किया। नेपाली को अफ़सोस था कि इन क्रान्तिकारियों ने माँ की आजादी से पूर्व ही दुनिया छोड़ दिया —

“जीवन की माया-ममता से निर्मोही मुँह मोड़ चले
दुनिया के सारे वैभव को दुनिया में ही छोड़ चले
आहुति की आगी में अपनी हड्डी-हड्डी जोड़ चले

---

[70] वही, पृष्ठ 86

माँ के बन्धन से पहले ही अपना बन्धन तोड़ चले

चढ़ टिकटी पर, चूम रस्सियाँ ये मतवाले उधर चले

जिधर हमारे लाल लाड़ले विहँस-विहँसकर बिखर चले"[71]

नेपाली को स्वाधीनता प्रमुख लक्ष्य दिखता है। इसलिए वे किसी एक के विचार या सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते। उन्होंने हर उस सिद्धान्त का समर्थन किया, जो देश की आजादी में अपना योगदान दे रहे थे। इसी कारण वे एक ही समय में गाँधी और भगत सिंह दोनों की क्रान्ति को बल देने के लिए कविता लिखते रहे। वे 'पंचनद के तीर पर' तथा 'मस्ती' कविता में भगत सिंह के साथ रहते हैं और यौवन का शृंगार करते हैं, तो 'सत्याग्रह', 'मोहन से' और 'स्वागत' कविता में गाँधी के साथ गर्दन से तलवार की धार मोड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। नेपाली ने लिखा भी है—

"दुनिया के सारे सिद्धान्त देश की स्वाधीनता के लिए हैं। स्वाधीनता सड़े-गले सिद्धान्तों के लिए नहीं है। सच पूछिए तो स्वाधीनता ही वह मूल स्रोत है, जहाँ से सिद्धान्तों का झरना फूट निकलता है।"[72]

यही कारण है कि आगे चलकर इसी सिद्धान्त पर उन्होंने भारत-पाकिस्तान व भारत-चीन युद्ध के समय नेहरू की अहिंसा की नीति की आलोचना की।

गोपाल सिंह नेपाली की आरम्भिक कविताओं में यौवन का उन्माद तो है किन्तु वे इस उन्माद को गाँधी के सत्याग्रह की ओर मोड़ देते हैं। रागनी की 'विद्रोही', 'देश-दहन', अलख, 'जवानी के तीर पर', 'तरुणाई', 'जवानी', 'टुकड़ी', 'भाई-बहन' तथा 'जंजीर' कविता में राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सेदारी के लिए प्रेरित करने की कोशिश की गई है। किन्तु इन सभी कविताओं में गाँधी जी के अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग तथा सविनय अवज्ञा का समर्थन ही

---

[71] नेपाली गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 93

[72] चतुर्वेदी त्रिलोकीनाथ (सम्पादक), *साहित्य अमृत*, फरवरी-2011 (युवक : नेपाली स्मृति अंक : अगस्त-1963 से उद्धृत)

दिखाई देता है। हालाँकि इस समय गाँधीजी का सविनय अवज्ञा आन्दोलन जोरों पर था। कवि का यह विश्वास बना हुआ था कि इस आन्दोलन की सफलता से डरकर अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँगे। इसलिए कवि नेपाली बार-बार युवा शक्ति का आह्वान करते रहे। उन्होंने भाई-बहन कविता में भाई और बहन जो एक दूसरे की रक्षा के लिए ईश्वर से हमेशा कामना करते हैं। उसे कुछ हो न जाए इसलिए उसे ऐसी घड़ी में बाहर निकलने से रोकते हैं। कवि ने उन्हें एक-दूसरे को क्रान्ति में भाग लेने के लिए उकसाया है—

"तू चिनगारी बनकर उड़ री, जग-जाग मैं ज्वाला बनूँ!

तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूँ!

आज वसन्ती चोला तेरा,मैं भी सज लूँ, लाल बनूँ!

तू भगिनी बन क्रान्ति कराली, मैं भाई विकराल बनूँ!

पागल घड़ी, बहन-भाई है, वह आजाद तराना है!

मुसीबतों से, बलिदानों से पत्थर को समझाना है!"[73]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान देश में कुछ अवसरवादी थे, जो आन्दोलन को दबाने तथा निजी स्वार्थ के लिए अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। अंग्रेज उन्हें रायबहादुर, कसर आदि के ख़िताब से नवाजते और प्रशासन उन्हें दे देते थे। इस सम्मान और पद के लालच में वे दासता को स्वीकार करने से नहीं गुरेज करते। ऐसे लोगों के कारण आन्दोलन कमजोर पड़ रहा था। इसलिए कवि नेपाली ने उन्हें दुत्कारते हुए लिखा—

"मरते हैं डरपोक घरों में,

बांध गले रेशम का फीता!

यह तो समर, यहाँ मुट्ठीभर

मिट्टी जिसने चूमी, जीता!"[74]

---

[73] नेपाली गोपाल सिंह, रागनी, पृष्ठ 51

9 अगस्त सन 1942 को गाँधीजी के आह्वान पर समूचे देश में एक साथ 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आरम्भ हुआ। यह भारत को तुरन्त आजाद करने के लिये अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक सविनय अवज्ञा आन्दोलन था। क्रिप्स मिशन की विफ़लता के बाद महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ अपना तीसरा बड़ा आन्दोलन छेड़ने का फ़ैसला लिया। हालांकि गाँधी जी को फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया गया था लेकिन देश भर के युवा कार्यकर्ता हड़तालों और तोड़फ़ोड़ की कार्रवाइयों के जरिए आन्दोलन चलाते रहे।

दूसरे विश्व युद्ध में इंग्लैण्ड को बुरी तरह उलझता देख जैसे ही नेताजी ने आजाद हिन्द फौज को "दिल्ली चलो" का नारा दिया, गाँधी जी ने मौके की नजाकत को भाँपते हुए 8 अगस्त 1942 की रात में ही बम्बई से अँग्रेजों को "भारत छोड़ो" व भारतीयों के बीच "करो या मरो" का नारा दिया और सरकारी सुरक्षा में यरवदा पुणे स्थित आगा खान पैलेस में चले गए। हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ के दस जुझारू कार्यकर्ताओं ने काकोरी काण्ड किया था, जिसकी यादगार ताजा रखने के लिये पूरे देश में प्रतिवर्ष 9 अगस्त को "काकोरी काण्ड स्मृति-दिवस" मनाने की परम्परा भगत सिंह ने प्रारम्भ कर दी थी। इस दिन बहुत बड़ी संख्या में नौजवान एकत्र होते थे। गाँधी जी ने एक सोची-समझी रणनीति के तहत 9 अगस्त 1942 का दिन चुना था। आजाद हिन्द फ़ौज के नारों ने नेपाली को झकझोरा, जिसके फलस्वरूप उन्होंने गाँधीवाद के साथ-साथ सुभाषचन्द्र बोस में भी आस्था दिखाई।

"जंजीर टूटती कभी न अश्रु-धार से
दुःख-दर्द दूर भागते नहीं दुलार से
हटती न दासता पुकार से, गुहार से
इस गंग-तीर बैठ राष्ट्र-शक्ति की
तुम कामना करो किशोर, कामना करो"[75]

सभी तरफ से अंग्रेजों के खिलाफ चल रहे आन्दोलन के कारण नेपाली में यह विश्वास भर

---

[74] नेपाली गोपाल सिंह, हिमालय ने पुकारा, पृष्ठ

[75] नेपाली गोपाल सिंह, नवीन, पृष्ठ 11

गया कि अब देश को आजादी मिलने से कोई रोक नहीं सकता। इस लिए उन्होंने लिखा –

"काली रात चीरता कल सवेरा आएगा
देश के सितारों के सूरज मेरा आएगा
लाएगा वह साथ में सोने की जवानियाँ
लाएगा वह साथ में मौजों की रवानियाँ
लाएगा वह साथ में फूलों की कहानियाँ"[76]

अन्ततः आन्दोलन सफल हुआ और देश आजाद हुआ। जिस स्वाधीनता की कामना कवि नेपाली आरम्भ से करते रहे। 15 अगस्त 1947 को वह स्वाधीनता हमें मिल गई। नेपाली ने इस स्वाधीनता का श्रेय गाँधी के अहिंसा को दिया—

सन् सैंतालिस साल शान्ति का, कहीं नहीं कंगन खनका
हुआ मगर पन्द्रह अगस्त को, अन्त विदेशी शासन का
काम न आई चाल दुरंगी
विफल हुई तैयारी जंगी
चाबी देकर गए फिरंगी
आई आजादी सतरंगी
जो करते थे राज, हाथ वे खाली मलते चले गए
लिया स्वराज अहिंसा से, इतिहास बदलते चले गए"[77]

4.7.2. स्वाधीनता के पश्चात् का राजनीतिक यथार्थ

अनेक संघर्षों और बलिदानों के कारण सैंकड़ों वर्ष की परतन्त्रता के उपरान्त 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। देश को इस स्वाधीनता की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर देश का दो टुकड़ों में विभाजन हुआ- भारत और पाकिस्तान

---

[76] वही पृष्ठ 85

[77] नेपाली गोपाल सिंह, हिमालय ने पुकारा, पृष्ठ 49-50

के रूप में। विभाजन के बाद दोनों देश के रिश्ते को स्पष्ट करते हुए नेपाली ने लिखा—

"आज बँटा जग दो टोली में, दोनों बने किनारे दो

दुनिया पूछे शान्ति मार्ग तो, दोनों करे इशारे दो"[78]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में स्वतन्त्र राज्य थे जहाँ राजा या नवाब शासन करते थे। इसी समय कश्मीर श्रीनगर के राजा हरिसिंह किसी भी बात पर भारत में सम्मिलित होना नहीं चाहते थे, किन्तु पाकिस्तान के व्यवहार और कबाइली जातियों के आक्रमण के कारण उन्होंने भारतीय सेना की सहायता माँगी, किन्तु प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने शत रखी कि भारत में सम्मिलित होंगे तो ही सेना की मदद मिलेगी और राजा हरीसिंह ने यह शर्त स्वीकार ली। 27 अक्तूबर 1948 को हवाई मार्ग से भारतीय सेना श्रीनगर भेजी गई जिसने श्रीनगर को बचा लिया। कश्मीर को अपने हाथ से निकलते देखकर पाकिस्तान की सेना ने कबाइलियों के नाम से युद्ध द्वारा हस्तक्षेप किया। नेहरू ने अपनी अहिंसा की नीति अपना कर संयुक्त राष्ट्रसंघ में अर्जी दी। नेपाली ने इस पर विरोध करते हुए लिखा—

"तुम उड़ा कबूतर अम्बर में, सन्देश शान्ति का देते हो

चिट्ठी लिखकर रह जाते हो, जब कुछ गड़बड़ सुन लेते हो

वक्तव्य लिखो विरोध करो, यह भी कागज वह भी कागज

कब नाव राष्ट्र की पार लगी, यो कागज की पतवार से

ओ राही, दिल्ली जाना तो, कहना अपनी सरकार से

चर्खा चलता है हाथों से, शासन चलता तलवार से"

नेपाली ने आजादी के बाद देश की रक्षा के लिए हिंसा को अपनाने से भी गुरेज नहीं किया। उन्होंने आजादी को सिद्धान्त से बड़ा मानते हुए लिखा—

---

[78] वही, पृष्ठ 68

"सिद्धान्त, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज"[79]

पाकिस्तान के साथ युद्ध पर अभी विराम लगा ही था कि भारत और चीन के रिश्ते ख़राब होने लगे। 7 मार्च, 2015 को *'इंडियन डिफेन्स रिव्यू'* में मेजर जनरल अफसिर करीम का एक लेख छपा। जिसमें उन्होंने भारत के लिए चीन से होने वाले सम्भावित खतरों की ओर इशारा करते हुए लिखा कि 'अब समय आ गया है जब भारत को अपनी सैन्य क्षमताओं और नीतियों में सुधार करते हुए चीन को जवाब देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।' आज भी अक्सर हमें भारतीय सीमा पर चीनी और भारतीय सैनिकों के बीच गोलीबारी की ख़बरें सुनने को मिलती है। दूसरी तरफ चीन के राष्ट्रपति भारत के दौरे पर आते हैं और भारत में बड़े पूँजी निवेश में भी दिलचस्पी दिखाते हैं। हमारे प्रधानमन्त्री भी चीन का दौरा करते हैं और अपनी विदेश नीति में चीन के साथ व्यापार बढ़ावे पर बल देते हैं । ऐसे में यदि आने वाले दिनों में चीन अचानक भारत पर हमला कर देता है तो यह सबके लिए बेहद चौंकाने वाली घटना होगी।

सन् 1962 में भी कुछ ऐसा ही हुआ था। उस समय भी माहौल कमोबेश आज जैसा ही था। भारत और चीन की सीमा विवादास्पद थी, जो आज भी बनी हुई है। तब के सैन्य-विशेषज्ञ चीन से सम्भावित खतरों के लिए चेतावनी दे रहे थे, और सरकार उसे नजर-अन्दाज करती रही । राजनीतिक यात्राएँ और वार्ताएँ तब भी जारी थीं। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने चीन के क्षेत्र तिब्बत और भारत के बीच व्यापार और आपसी सम्बन्धों को लेकर 29 अप्रैल 1954 को पंचशील समझौता किया। इस समझौते को पंचशील समझौता कहा जाता है, जो अगले पाँच साल तक भारत की विदेश नीति की रीढ़ रही। ये पंचशील तत्त्व थे—

1. एक दूसरे की अखण्डता और सम्प्रभुता का सम्मान
2. परस्पर अनाक्रमण

---

[79] वही, पृष्ठ 62

3. एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना
4. समान और परस्पर लाभकारी सम्बन्ध
5. शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व

सन् 1904 की ऐंग्लो-तिब्बतन सन्धि के तहत तिब्बत के सम्बन्ध में भारत को जो अधिकार मिले थे नेहरू ने वे सारे अधिकार इस समझौते के बाद छोड़ दिए और तिब्बत को चीन का एक क्षेत्र स्वीकार कर लिया। इस तरह उस समय इस समझौते ने भारत और चीन के सम्बन्धों के तनाव को काफ़ी हद तक दूर कर दिया था। और हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे लगे और भारत ने गुट निरपेक्ष रवैया अपनाया। लेकिन तभी चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। चीनियों के इस छल का जवाब देने के लिए नेपाली ने चालीस करोड़ जनता का आह्वान किया—

"हम भाई समझते जिसे दुनिया से उलझके
वह घेर रहा आज हमें बैरी समझके
चोरी भी करे और करे बात गरजके
बर्फों में पिघलने को चला लाल सितारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा"[80]

बीते पचास सालों में आई कई रिपोर्टों और किताबों के जरिये 1962 के युद्ध को समझने में थोड़ी बहुत मदद जरूर मिलती है। लेकिन पक्केतौर पर आज भी नहीं कहा जा सकता कि चीनी हमले की वजह क्या थी। इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने अपनी प्रसिद्ध किताब *'इंडिया आफ्टर गाँधी'* में काफी विस्तार से उन परिस्तिथियों का जिक्र किया है, जिनके चलते पण्डित जवाहरलाल नेहरू और तत्कालीन चीनी प्रधानमन्त्री चाऊ एन-लाइ की दोस्ती धीरे-धीरे फीकी पड़ी और अन्ततः दोनों देश युद्ध में उलझ गए।

---

[80] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 15

सन् 1950 में तिब्बत में चीनी सैनिकों का हस्तक्षेप लगातार बढ़ रहा था। इसके विरोध में 1958 में पूर्वी तिब्बत के खम्पा लोगों ने सशत्र विद्रोह छेड़ दिया। आरम्भ में खम्पा लोगों को कुछ सफलता भी मिली लेकिन अन्ततः सन् 1959 में चीनी सैनिकों ने विद्रोहियों को समाप्त कर दिया। तिब्बत के धर्म गुरु दलाई लामा को भी धमकियाँ मिलने लगीं। वे आत्मरक्षा के लिए भारत से संरक्षण माँगे और भारत उन्हें शरण देने को तैयार हो गया।[81]

इधर जुलाई, 1958 में चीन की एक सरकारी पत्रिका 'चाइना पिक्टोरिअल' में कुछ विवादास्पद नक़्शे छापे गए। इन नक्शों में नेफा (नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी यानी आज का अरुणाचल प्रदेश) और लद्दाख के बड़े इलाके को चीन का हिस्सा दिखाया गया था।[82] जबकि सन् 1956 में चीनी प्रधानमन्त्री ने मैकमोहन लाइन को स्वीकारते हुए मान्यता देने की बात कही थी। दिसंबर 1958 में जवाहरलाल नेहरू ने चीनी प्रधानमन्त्री को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज किया। लेकिन पत्र के जवाब में चाऊ इन लाइ ने कहा कि मैकमोहन लाइन ब्रिटेन सरकार की विरासत है, जिसे चीन कभी भी मान्यता नहीं दे सकता।[83] साथ ही उन्होंने कहा कि भारत और चीन के बीच हमेशा से रहे सीमा विवाद को कभी सुलझाया नहीं गया था। 22 मार्च, 1959 को नेहरू ने एक और पत्र लिखकर इस बात के कई प्रमाण दिए कि चीनी नक्शों में दर्शाए गए इलाके दरअसल भारत के अभिन्न अंग हैं। साथ ही उन्होंने अपने इस पत्र में यह भी उम्मीद जताई कि जल्द ही दोनों देश इन मसलों

---

[81] Guha Ramchandra, *India After Gandhi : the history of world's largest democracy*, page no. 307

[82] वही, page no. 307-308

[83] Guha Ramchandra, *India After Gandhi : the history of world's largest democracy*, page no. 308

(Chou En-lai replied, stating that 'historically no treaty or agreement on the Sino-Indian boundary has ever been concluded'. The McMahon Line was 'a product of the British policy of aggression against the Tibet Region of China'. Juridically speaking, 'it cannot be considered legal'.)

पर किसी सहमति पर पहुँच जाएँगे। नेहरू के इस पत्र का जवाब आ पाता उससे पहले ही दलाई लामा भारत आ गए। यहाँ से भारत और चीन के रिश्ते और भी ज्यादा बिगड़ने लगे। चीन ने आरोप लगाया कि भारत-चीन सम्बन्धों को बिगाड़ने की पहल भारत की ओर से की जा रही है। इसी बीच भारत सरकार को सूचनाएँ मिलीं कि चीन सीमा के नजदीक अक्साई चीन में बड़े पैमाने पर सड़क निर्माण कर रहा है। हालाँकि इसका निर्माण सन् 1956 से हो रहा था लेकिन भारत सरकार को इसकी खबर सन् 1959 में मिली। नेपाली ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री नेहरू की इस बातचीत को व्यर्थ बताया और देश की लाज बचने के लिए अहिंसा अगर त्यागना पड़े तो त्यागने की सलाह दी—

"ओ बात के बलवान अहिंसा के पुजारी
बातों की नहीं, आज तेरी आँ की बारी
बैठा ही रहा तू तो गई लाज हमारी
खा जाय कहीं जंग न ये खड्ग दुधारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा"[84]

नेहरू जिसे भाई समझा उसने ही हमला किया तो नेपाली ने कहा—

"दुश्मन है कहाँ कौन कहाँ दोस्त परख लो
कुछ दिन अहिंसा का धरम जेब में रख लो
लातों के पुजारी कभी बातों से न मानें
जो न्याय न माने उसे रण में मना लो
इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो" [85]

नेपाली ने अपने काव्य-संग्रह 'हिमालय ने पुकारा' की भूमिका में एक स्वामी और सर विलियम का एक प्रसंग का जिक्र करते हुए भारत की गुलामी के कारण बताए और लिखा

---

[84] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 16

[85] वही, पृष्ठ 24

कि "यही ऐतिहासिक मुद्रा थी उस दिन हमारे प्यारे हिन्दुस्तान की, जब लालची 'लाल चीन' ने धोखा देकर हमारे देश पर हमला किया।"[86] इसी लिए नेपाली ने इतिहास से सीख लेने की बात की—

"इतिहास पढ़ो समझो तो यह मिलती शिक्षा
होती न अहिंसा से कभी देश की रक्षा
क्या लाज रही जबकि मिली प्राण की भिक्षा
यह हिन्द शहीदों का अमर देश है प्यारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा"[87]

भारत-चीन सम्बन्ध जितनी तेजी से सीमा पर बिगड़ रहे थे लगभग उतनी ही गति से भारतीय जनता में भी चीन के खिलाफ माहौल बन रहा था। विपक्षी पार्टियों के दबाव में भारत सरकार ने सितम्बर, 1959 को एक श्वेत पत्र जारी किया। इसमें पिछले पाँच वर्षों में चीन से हुए पत्राचार का पूरा ब्यौरा था। इस श्वेतपत्र के सार्वजनिक होने से भारतीय जनता को चीन द्वारा सीमा पर की जा रही गतिविधियों की पूरी जानकारी मिल गई। रामचन्द्र गुहा अपनी पुस्तक में लिखा है कि यदि यह श्वेतपत्र जारी नहीं हुआ होता तो भारत-चीन सीमा विवाद को राजनीतिक या कूटनीतिक स्तर पर भी सुलझाया जा सकता था। लेकिन इनके सार्वजनिक होने के बाद जनता में चीन के प्रति आक्रोश था और तब राजनीतिक हल ढूँढ़ना चीन के सामने घुटने टेकने जैसा हो गया था।[88] इसीलिए नेपाली ने भीख माँगने की जगह अधिकार लेने की बात की—

"अधिकार लो, सदा न भीख माँगते रहो
संग्राम से जनम-जनम न भागते रहो

---

[86] वही, पृष्ठ 6

[87] वही, पृष्ठ 16

[88] Guha, Ramchandra, *India After Gandhi : the history of world's largest democracy*, page no. 315

छाई घटा, चली हिलोर, जागते रहो

घर में कहीं घुसे न चोर, जागते रहो

अपने महान देश के कुशल बचाव के लिए

तुम योजना करो, सशस्त्र योजना करो, तुम योजना करो"[89]

1959 में भी भारत-चीन सीमा पर दोनों सेनाओं के बीच झड़प की कई घटनाए हुईं। इस समय दोनों देशों के बीच पत्राचार भी लगातार चल रहा था। 1960 में नेहरू ने चाऊ एन लाई को भारत आने का न्योता दिया। इससे पहले जब 1956 में चीनी प्रधानमन्त्री भारत आ चुके थे। तब उनका बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया गया था। लेकिन 1960 में हालात बिलकुल अलग थे। हिन्दू महासभा ने चाऊ एन लाई के विरोध में काले झण्डे दिखाए। जहाँ 1956 में उनकी भारत यात्रा के दौरान 'हिन्दी-चीनी भाई भाई' जैसे नारे दिए गए थे वहीं इस बार यह नारे बदलकर 'हिन्दी-चीनी बाय बाय' हो चुके थे। चाऊ एन लाई ने सीमा-विवाद पर दो शर्त रखी—

- अक्साई चीन पर चीन का कब्ज़ा रहे और नेफा में भारत का,
- मैकमोहन रेखा से दोनों ओर 20 किलोमीटर तक दोनों देश अपनी अपनी आर्मी को पीछे हटा लें।

लेकिन नेहरूजी ने इसे स्वीकार करने से मना कर दिया। चाऊ एन लाई की इस यात्रा के बाद भी भारत-चीन सीमा विवाद जस का तस ही बना रहा। दोनों देश इस यात्रा और बातचीत के बाद भी किसी सहमति तक नहीं पहुँच पाए। इसके पश्चात् नेहरूजी ने सन् 1960 में 'द फॉरवर्ड पॉलिसी' अपनाई अक्साई चीन और मैकमोहन रेखा के पास आर्मी चौकियाँ बनवाए। इस फॉरवर्ड पालिसी का समर्थन करते हुए नेपाली ने लिखा—

"हम शीश झुकाएँगे न फरियाद करेंगे

जो हमसे लड़ेगा उसे बर्बाद करेंगे

---

[89] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 42

फिर साथ ही तिब्बत को भी आजाद करेंगे

मौका है यही देश की दीवार बढ़ा लो

इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो"[90]

मई-जून 1962 में अचानक सीमा पर गोलीबारी की घटनाएँ बढ़ गईं। कई चीनी सैन्य टुकड़ियाँ भारतीय सीमा के भीतर घुस आईं। भारतीय सेना के पास इनका मुकाबला करने के लिए न तो पर्याप्त हथियार थे और न ही सैनिक। युद्ध के बीच में ही जनरल कौल छाती में दर्द होने के कारण सीमा से लौट कर दिल्ली आ गए। बिना किसी नेतृत्व के सेना के जवान पाँच दिनों तक लड़ते रहे जिसके बाद नेफा के तवांग के इलाके पर भी चीनी कब्ज़ा हो गया। नेपाली ने भारत की सीमा में चीनियों को घुसते देख भारतीय जनता को उन जगहों पर जाने का आह्वान करते हुए लिखा—

"लद्दाख चलो, चीन जहाँ घुसके खड़ा है

नेफा को चलो, चोर जहाँ छुपके खड़ा है

हमने ही कभी चीनियों को बुद्ध दिया था

अब युद्ध दो, तलवार का जलवा तो दिखा लो

इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो"[91]

अब तक चीनी सैनिक नेफा में इतना आगे बढ़ चुके थे कि जल्द ही असम भी उनके हाथ में जाने का खतरा पैदा हो गया। उधर दिल्ली और बम्बई के भर्ती केन्द्रों पर हजारों युवा सेना में भर्ती होने को तैयार थे। लेकिन 22 नवम्बर को अचानक ही चीन ने युद्धविराम की घोषणा कर दी।

---

[90] वही, पृष्ठ 26

[91] वही, पृष्ठ 24

चीन के साथ युद्ध के दौरान नेपाली ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अहिंसा के सिद्धान्त की आलोचना की। उनका मानना था कि देश को बचाने के लिए अगर हिंसा का सहारा भी लेना पड़े तो ले लो। उन्होंने 'जवाहरलाल' कविता में लिखा—

"कहने को प्रधानमन्त्री, पर जीवन-मन्त्र अहिंसा है

लाख रचें, षड्यन्त्र पड़ोसी, इनका तन्त्र अहिंसा है"[92]

लेकिन कवि नेपाली ऐसी विकट घड़ी में सिर्फ आलोचना नहीं करते, बल्कि नेहरू को तारनहार के रूप में प्रस्तुत भी करते हैं—

"शान्ति-कपोत उड़ाते जाएँ
रण से हाथ छुड़ाते जाएँ
सबको गले लगाते जाएँ
भारत का अपमान करो तो, फिर तलवार जवाहरलाल
तीर मिले, मँझधार बुलाए, तारनहार जवाहरलाल"[93]

नेपाली ने बार-बार अपनी कविताओं में चीन तथा उसकी कम्युनिस्ट सरकार की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है—

"बनता है 'कम्युनिस्ट' अनाचार का दुश्मन
मालूम हुआ आज, यही प्यार का दुश्मन
जो प्यार का दुश्मन, वही संसार का दुश्मन"[94]

4.7.3. राष्ट्रभाषा का सवाल और हिन्दी

भाषा का सम्बन्ध मुख्य रूप से संस्कृति से होता है किन्तु भारत के सन्दर्भ में इसका सम्बन्ध

---

[92] वही, पृष्ठ 69

[93] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा है*, पृष्ठ 69

[94] वही, पृष्ठ 22

राजनीति से भी है। इसका कारण भारत में भाषाओं की बहुलता है। लगभग प्रभुख भाषाएँ समृद्ध भी हैं। ऐसे में राष्ट्र भाषा किसे बनाई जाए यह प्रश्न राजनीति से जुड़ जाता है। यही कारण है कि आजादी के बाद भारत के सामने एक बड़ी चुनौती थी, राष्ट्रभाषा के रूप में किसी एक भाषा को चुनने की। भारत की सभी भाषाओं का जन्म संस्कृत से माना जाता है लेकिन इनके बीच बहुत भेद है, इनकी लिपियाँ भी अलग-अलग हैं। ऐसे में किसी एक भाषा का चुनाव मुश्किल हो जाता है। डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है कि “बहुभाषा-भाषी देश की सम्प्रेषण-व्यवस्था अनिवार्यतः सम्पर्क भाषा अर्थात् वृहत् आयाम पर ‘लिंगुआ-फ्रेंका’ को जन्म देती है। राष्ट्रीय सन्दर्भ में कभी इसका रूप राजभाषा को जन्म देती है और कभी राष्ट्रभाषा को।”[95] देश की आजादी के समय तक हिन्दी एक बड़े भूभाग की सम्प्रेषण की भाषा बन चुकी थी किन्तु दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार-प्रसार उतना नहीं हो सका था। दूसरी बात थी हिन्दी राजकाज की भी भाषा नहीं थी। अंग्रेज के आने के बाद प्रशासनिक कार्य के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता था और उससे पूर्व मुग़ल काल में अरबी-फारसी में। जिसे जानने वालों की संख्या कम थी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने ‘राजभाषा’ के लिए निम्नलिखित लक्षण बताए थे-

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।
3. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

---

[95] श्रीवास्तव, रविन्द्रनाथ, भाषाई अस्मिता और हिन्दी, पृष्ठ 60

इन लक्षणों पर हिन्दी भाषा बिल्कुल खरी उतरती है।[96] ऐसे में हिन्दी को समर्थन मिलना स्वाभाविक था।

हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितम्बर 1949 को स्वीकार किया गया। इसके बाद संविधान में राजभाषा के सम्बन्ध में धारा 343 से 352 तक की व्यवस्था की गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी स्वीकार की गई परन्तु अनुच्छेद के खण्ड 2 के अनुसार संविधान के प्रारम्भ से 15 वर्षों की कालावधि के लिए उन सब कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए वह ऐसे प्रारम्भ से पहले प्रयोग की जाती थी। और तर्क दिया गया कि "अंग्रेजी के स्थान पर प्रशासनिक व्यवहार क्षेत्र में तत्काल प्रयोग में लाने के लिए हिन्दी भाषा न तो समर्थ है और न ही उतनी विकसित।"[97] हिन्दी के प्रति ऐसा व्यवहार देख नेपाली ने प्रश्न किया—

"क्यों रखते हो सीमित इसको
तुम सदियों से प्रस्तावों तक"[98]

और साथ ही सलाह भी दी कि –

"औरों की भिक्षा से पहले
तुम इसे सहारे अपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो"[99]

नेपाली हिन्दी को राष्ट्रीय एकता में बाँधने वाले सूत्र के रूप में देखते थे। इसीलिए उन्होंने ने लिखा है- "एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा / एकता स्वतन्त्र देश की ज्वलन्त आशा"[100]

---

[96] https://hi.wikipedia.org/wiki/भारत_की_राजभाषा_के_रूप_में_हिन्दी

[97] श्रीवास्तव, रविन्द्रनाथ, भाषाई अस्मिता और हिन्दी, पृष्ठ 60-61

[98] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा है,* पृष्ठ 63

[99] वही, पृष्ठ 63

राष्ट्र भाषा की चयन के पृष्ठभूमि में जातीय प्रमाणिकता की आवश्यकता होती है। डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने स्पष्ट किया है कि "राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध राष्ट्रीयता (नेशनलिज्म) से रहता है। उसके पीछे जातीय प्रमाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' की शक्ति काम करती है और उसके सहारे समाज राष्ट्र के स्तर पर समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में तादात्म्य स्थापित करता है। और सामाजिक अस्मिता सिद्ध करता है।[101] गोपाल सिंह नेपाली ने इस ग्रेट ट्रेडिशन को रेखांकित करते हुए लिखा है—

"नादान नहीं थे हरिश्चन्द्र, / मतिराम नहीं थे बुद्धिहीन

जो कलम चलाकर हिन्दी में / रचना करते थे नित नवीन

इस भाषा में हर 'मीरा' को / मोहन की माला जपने दो

** ** **

प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो / सदियों की बनी बिगाड़ो मत

कवि सूर बिहारी तुलसी का / बिरुवा नरम उखाड़ो मत"[102]

गोपाल सिंह नेपाली ने अप्रैल 1955 में यह (हिन्दी है भारत की बोली) लिखी और इसी वर्ष जुलाई में राजभाषा आयोग का गठन हुआ। सन् 1957 में आयोग की सिफारिशों की समीक्षा करने के लिए एक संसदीय समिति का गठन हुआ। सन् 1959 में समिति ने राष्ट्रपति के सामने सिफारिश की कि "अंग्रेजी का प्रयोग अभी यथावत बना रहे और हिन्दी की समृद्धि और विकास में और गति लाने के लिए सरकार प्रयत्न करे।"[103] सन् 1960 से पूर्ण हिन्दी राजभाषा बनाने की प्रक्रिया तेज हुई तो देश में कई क्षेत्रों में विरोध भी शुरू हो गया। "दक्षिण भारत के राज्यों में रहने वालों को लगता था कि हिन्दी के लागू हो जाने से वे उत्तर भारतीयों के मुकाबले विभिन्न क्षेत्रों में कमजोर स्थिति में हो जाएगी।"[104] ऐसे में

---

[100] वही, पृष्ठ 71

[101] श्रीवास्तव, रविन्द्रनाथ, *भाषाई अस्मिता और हिन्दी,* पृष्ठ 60

[102] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा है,* पृष्ठ 64-65

[103] वही, पृष्ठ 61

[104] https://satyagrah.scroll.in/article/27133/26-january-1965-hindi-official-

आवश्यकता थी कि भाषाई साम्प्रदायिकता को भड़कने से रोका जाए। कवि गोपाल सिंह नेपाली ने एक सजग नागरिक होने के नाते इस दायित्व को स्वीकार किया और कवि मंच से हिन्दी को राष्ट्रीयता से जोड़कर अपने गीत गुनगुनाने लगे—

"कोटि-कोटि व्यक्ति यहाँ
संघ यहाँ, शक्ति यहाँ
जाति-धर्म भेद न कर
एक राष्ट्र-भक्ति यहाँ
एक ही क्षुधा समग्र, एक ही पिपासा
एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा"[105]

कवि गोपाल सिंह नेपाली ने स्पष्ट किया कि हम बहुत मुश्किल से आजाद हुए हैं। अगर हममें फुट आया तो हमें कुछ प्राप्त नहीं होगा सिवाय बिखरने के—

"मेल में समृद्धि और फुट में निराशा
एक देश एक राष्ट्र एक राष्ट्रभाषा"[106]

इसलिए वे आह्वान करते हैं—

"राष्ट्र से मनुष्य जुड़े
जा रही बहार मुड़े
देश हो स्वतन्त्र-सुखी
व्योम में निशान उड़े"[107]

---

language-south-india-protests

105 नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 71

106 वही, पृष्ठ 71

107 वही, पृष्ठ 71

स्पष्ट है कि नेपाली हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के पक्ष में रहे और उसे कमजोरियों के साथ ही लागू करने की वकालत करते रहे। उनका स्पष्ट मानना था कि हिन्दी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो।

4.8. निष्कर्ष

नेपाली की कविता में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना के केन्द्र में भी मानव-मुक्ति के साथ राष्ट्र मुक्ति है। उसके राजनीति यथार्थ के दो पहलू हैं—पहला औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के लिए चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन और दूसरा स्वाधीनता पश्चात् भारत में लोकतन्त्र की स्थापना और पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध का निर्वहन। इन दोनों पहलुओं में नेपाली की कविता का प्रधान लक्ष्य राष्ट्र की अस्मिता और उसकी स्वाधीनता की रक्षा है। नेपाली की दृष्टि में *"सिद्धान्त, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज / सब कुछ हैं तरु-डाली-पत्ते, आजादी है बुनियादी-बीज"।* इस कारण उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति हेतु गाँधी के सत्याग्रह, असहयोग और अहिंसा के साथ-साथ भगत सिंह और सुभाषचन्द्र बोस के उग्रवाद को अपना समर्थन दिया। पाकिस्तान व चीन के साथ युद्ध में अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अहिंसा का रास्ता छोड़ सीधे लड़ने की सलाह दिया और देश-भर में घूम-घूमकर 'वन-मैन आर्मी' बन आम जनता को देश की स्वाधीनता की रक्षा फनफना उठने के लिए प्रेरित किया।

नेपाली की कविता के कई पक्ष हैं। नेपाली ने एक सजग नागरिक की भाँति देश की स्वाधीनता की कामना अपनी कविता के माध्यम से किया। स्वाधीनता के पश्चात् वे राष्ट्रवादी बन जाते हैं और पड़ोसी देश के साथ युद्ध के समय पड़ोसी देशों को हद में रहने की सलाह देते हैं। चूँकि युद्ध लगातार नहीं चलता बीच-बीच में अवकाश भी हो जाता है। नेपाली इस अवकाश में देश की आन्तरिक व्यवस्था की आलोचना के साथ पण्डित जवाहरलाल नेहरू शासन-व्यवस्था की आलोचना करते हैं।

नेपाली का विश्वास प्रजातन्त्र में था। एक ऐसा प्रजातन्त्र जो साम्यवादी हो। जिसमें जनता को अधिकार, सम्पत्ति आदि में बराबर का हक हो। नेपाली ने भारत में ही नहीं नेपाल तथा पाकिस्तान में भी समाजवादी प्रजातन्त्र की कामना की।

पाँचवाँ अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में सांस्कृतिक यथार्थ

5.1. प्रस्तावना

5.2. संस्कृति अर्थ एवं परिभाषा

5.3. संस्कृति और भौगोलिक परिवेश

5.4. संस्कृति और प्रकृति

5.5. संस्कृति, पर्व और त्यौहार

5.6. संस्कृति और लोक जीवन

5.7. संस्कृति और मानव मूल्य

5.8. संस्कृति और दर्शन

5.9. संस्कृति और राष्ट्रीयता

5.10. संस्कृति और साहित्य

5.11. निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में सांस्कृतिक यथार्थ

5.1. प्रस्तावना

प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति के अपने मूल्य होते हैं। रचनाकार का सम्बन्ध मूल्यों से होता है, इसलिए उसका सम्बन्ध संस्कृति से अनिवार्य रूप से होता है। रचनाकार की मानसिक संरचना के निर्माण में भी संस्कृति की भूमिका होती है। इसलिए रचनाकार जो कुछ भी रचता है उसमें सांस्कृतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। नेपाली की कविता में सांस्कृतिक यथार्थ का अनुशीलन करने से पहले संस्कृति तत्त्व की परिभाषा एवं स्वरूप पर एक नजर डालना समीचीन होगा।

5.2. संस्कृति अर्थ एवं परिभाषा

संस्कृति का हम सबके जीवन में व्यापक महत्त्व है। वह राष्ट्र जीवन का आधार हैं किसी राष्ट्र की पहचान में उसके संस्कृति तत्त्व ही निर्धारक होते हैं। सांस्कृतिक मानवीय इतिहास की दिशा तय करने वाली होती है। वह किसी भी देश की प्राण वायु है। एक देश की रीति, नीति, दर्शन, कला, ज्ञान, जीवन-मूल्य सब उसकी संस्कृति के भीतर से रूपायित होते हैं। यह एक गरिमापूर्ण जीवन जीने की कला है। संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक् कृत से किगन

प्रत्यय लगाकर एवं भूषण अर्थ से 'सुट' का आगम करके बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है -- संशोधन करना, उत्तम बनाना, सुन्दर या पूर्ण बनाना, पवित्र करना, शुद्ध करना।

संस्कृति का अर्थ हिन्दी शब्दकोष के अनुसार, संस्कृत रूप देने की क्रिया, परिष्कृति संस्कर, अलंकृत करना या सजाना, आचरणगत परम्परा है।[1]

बाबु गुलाबराय के अनुसार संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है, जिसका अर्थ है -- संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना 'संस्कृति' शब्द (भाषा वाचक) का भी यही अर्थ है।[2]

अंग्रेजी में संस्कृति के लिए कल्चर (culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो लैटिन भाषा के कल्ट या कल्टस से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है— जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना।

मनुष्य धरती पर सबसे विवेकशील प्राणी है। बुद्धि या विवेक ही उसे शेष प्राणी समाज से अलग करता है। मनुष्य अपने विकास एवं उन्नति के लिए लगातार अधम करता है। जो कि उसके सभ्यता और संस्कृति का अंग होती है। भौतिक जरूरतों के अलावा वह अपने जीवन को दिशा देने और उसे परिष्कृत करने के लिए जो कुछ भी क्रियाकलाप करता है वह संस्कृति है। संस्कृति उसका मानसिक परिष्कार करती है। कला, साहित्य, दर्शन, संगीत आध्यात्म के द्वारा उसका आत्मिक उन्नयन करती है। अपने मानसिक विकास के लिए किया गया सारा उद्यम ही संस्कृति के अन्तर्गत आता है। अनेक विद्वानों ने संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है जिससे संस्कृति जैसे विस्तृत एवं सूक्ष्म तत्त्व को समझने में मदद मिलती है।

---

[1] बाहरी, हरदेव (सम्पादक), *हिन्दी शब्दकोष*, पृष्ठ 794

[2] बाबू, गुलाबराय, *भारतीय संस्कृति*, पृष्ठ 3

रामविलास शर्मा के अनुसार 'संस्कृति एक व्यापक शब्द है। उनके अन्तर्गत मनुष्य का आचरण, उसका भाव जगत, विचारधारा, साहित्य कला, विज्ञान ये सभी आ जाते हैं। ब्रह्म की तरह संस्कृति व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों हैं।'[3] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।'[4] डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के शब्दों में, 'चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर व कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है, उसका परीक्षण संस्कृति के रूपमें प्राप्त होता है।'[5] रामधारी सिंह 'दिनकर' के मत में 'असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।'[6] रेगेलिंफ ब्राउन के अनुसार, 'संस्कृति वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी सामाजिक वर्ग या श्रेणी में विचार अनुभूति या क्रिया के सुसंस्कृत ढंग एक व्यक्ति से दूसरे तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रान्त किए जाते हैं।'[7]

एडबर्ड टाइलर के अनुसार, 'संस्कृत अपने मानव शास्त्रीय' अर्थ में उस सन्निकट परिकल्पना को कहते हैं, जिनमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, विधिविधान, रीति-रिवाज और अन्य व्यवहार सम्मिलित हैं, जिन्हें मनुष्य अपने समाज से ग्रहण करता है।'[8]

---

[3] शर्मा, रामविलास, *संस्कृति और जातीयता*, पृष्ठ 100

[4] द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *अशोक के फूल*, पृष्ठ 15

[5] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास*, पृष्ठ 16

[6] दिनकर, रामधारी सिंह, *संस्कृति के चार अध्याय*, पृष्ठ 653

[7] William, A. Darity Jr., *International encyelopedia of social science part-3,* page no. 536

[8] बाबूराम, *हिन्दी निबन्ध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन*, पृष्ठ 91 पर उद्धृत

संक्षेप में संस्कृति किसी मानव-समाज अथवा राष्ट्र को कला, दर्शन, धर्म, साहित्य, विचार, आदि तत्त्वों के माध्यम से पहचान देने वाली प्रक्रिया है। यह किसी देश, समाज या जाति का प्रण है, वहीं से इसे जीवन मिलता है। संस्कृति के कारण ही मनुष्य विकास की प्रक्रिया में अन्य जीवों की तुलना में श्रेष्ठ, सफल एवं विकसित प्राणी है। किसी देश की सांस्कृतिक पहचान निर्मित करने में उसके विभिन्न घटकों का योगदान होता है। सर्वप्रथम उस देश का भौगोलिक परिवेश एवं प्रकृति की चेतना है। भाषा और साहित्य उसे आवाज़ देते हैं। उसके द्वारा वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढी एक समाज से दूसरे समाज और व्यष्टि से समष्टि तक सम्प्रेषण करता है। धर्म, दर्शन एवं आध्यात्म उसकी जीवन शैली एवं मूल्यों को निर्धारित करते हैं। कला, संगीत आदि उस देश के सौन्दर्य-बोध जीवनाभिमुखता को अभिव्यंजित करते हैं।

संस्कृति की कतिपय विशेषताएँ भी हैं। वह एक समाज में सतत चलने वाली प्रक्रिया है। पहले से बनी-बनाई कोई वस्तु नहीं। मनुष्य अपने विकास क्रम में संस्कृति को अर्जित करता है। सदियों से घात-प्रतिघात, परिवर्तन, चिन्तन, खोज आदि के द्वारा किसी समाज या राष्ट्र की संस्कृति अपना रूप ग्रहण करती है। इसीलिए वह परिवर्तनशील और गतिशील होती है। समय के अनुरूप उसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। यह सामुदायिक चेतना की प्रक्रिया है। संस्कृति समष्टि के भीतर जन्म लेती है।

भारतीय संस्कृति विश्व की महानतम संस्कृतियों में से एक है। इसकी कुछ विशिष्टताएँ इसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से एक अलग दर्जा देती हैं। यह संस्कृति अत्यन्त उदार, विशाल, समन्यवादी, सहिष्णु एवं सशक्त रही है। भारतीय विचारकों ने आदिकाल से ही सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानते हुए समस्त जगत के कल्याण का उद्घोष किया। इसके सिद्धान्त समस्त मानव-जाति के कल्याण के लिए है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' - सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वेसन्तु निरामया इस संस्कृति का मूल मन्त्र हैं। भारतीय मनीषियों ने संसार को अहिंसा,

सत्य, न्याय, करुणा, मैत्री, समता का सन्देश दिया। यह संस्कृति भौतिक उन्नति के साथ आत्मिक उन्नति पर विशेष बल देती है क्योंकि आत्म उन्नयन ही मनुष्य को प्राणी जगत में श्रेष्ठ और विवेकवान बनाता है। इसीलिए उसे योग, नियम, आसन, संयम, प्राणायाम का मन्त्र दिया ताकि मनुष्य अपने जीवन को सही अर्थ दे सके। जीवन को व्यवस्थित करने के लिए चार आश्रम और पुरुषार्थ की कल्पना की गई। गीता के द्वारा निष्कासन कर्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। इन समस्त सिद्धान्तों का उद्देश्य रहा मनुष्य अपनी भौतिक उन्नति के साथ आत्मिक विकास कर सके। आत्म के अलावा शेष के बारे में भी विचार करे। सह अस्तित्व की भावना से सभी प्राणियों में सद्भाव कायम हो सकता है एवं जीवन में शान्ति, सन्तोष की प्राप्ति होती है। कुल मिलाकर भारतीय संस्कृति का यही मुख्य रूप है।

दुनिया के प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है, जो उसकी पहचान को निर्धारित करती है। उस संस्कृति के प्रति हर व्यक्ति का अपना नजरिया भी होता है। वह संस्कृति के मूल्यवान तत्त्वों को अपनाता है उसके अन्तर्विरोधों को भी सामने लाता है। एक लेखक, विचारक, कवि के लिए यह मूल्यांकन काफी महत्त्व रखता है। नेपाली ने भी अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति के स्वरूप को अभिव्यंजित किया है। उसके विशिष्ट स्वरूप को व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। एवं उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी दी है। यहाँ उनकी कविताओं में सांस्कृतिक का अध्ययन प्रस्तुत है।

5.3. संस्कृति और भौगोलिक परिवेश

किसी देश की संस्कृति का निर्माण करने में उसके भौगोलिक परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वहाँ के निवासियों के जीवन दर्शन, दिनचर्या, सामाजिक स्थिति पर भौगोलिक प्रभाव विशेष तौर पर पड़ता है। देश की जलवायु, भूमि और भौतिक समृद्धि ही वहाँ की सांस्कृतिक उन्नति की रूपरेखा बनाती है। प्रकृति की सुषमा, उसकी विविधता से उस देश के निवासी हर्षित होते हैं उसके प्रति अनुराग रखते हैं, प्रकृति भी उनके जीवन को प्रभावित

करती है। भारत जैसे विशाल देश में भौगोलिक विविधता और विस्तार उसकी संस्कृति की अनेकता में एकता का गुण प्रदान करती है। भारत के विस्तृत भूभाग में उत्तर में विशाल हिमालय तो दक्षिण में सागर का अनन्त विस्तार है। वहीं देश के भीतर बहने वाली तमाम नदियाँ, वन क्षेत्र, पर्वत, पठार, रेगिस्तान भी हैं। एक ही भूभाग में प्रकृति के इतने विविध रूप उस देश में निवास करने वाली विभिन्न जातियों को एकता के सूत्र में भी बाँधती है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को एक जीवन्त सत्ता के रूप में देखा गया है। वह हमारी स्मृतियों, परम्परा की वाहक है। वे हमारे जीवन को संचालित करने वाली है। हमारे बहुत से जीवन मूल्य, आस्थाएँ, रीति-रिवाज, लोक-कथाएँ प्रकृति से नाभिनाल बद्ध हैं।

इसी कारण एक भारतीय नागरिक जितना ही जुड़ाव हिमालय से अनुभव करता है उतना ही वह दक्षिण में रामेश्वरम् और कन्याकुमारी से। गंगा के ही जैसे पूज्य उसके लिए नर्मदा और यमुना भी है। हिमालय उसके गौरव और अस्मिता का प्रतीक है। इस तरह भारत का भौगालिक परिवेश उसके सांस्कृतिक बोध का एक अनिवार्य हिस्सा है, उसके बगैर भारतीय संस्कृति की परिकल्पना अधूरी ही रह जाएगी। गोपाल सिंह नेपाली ने संस्कृति के अनिवार्य तत्त्व के रूप में उसकी सुषमा, वैभव का वर्णन किया है। उनके लगभग सभी काव्य-संग्रहों में भारत की प्राकृतिक छटा, उसके विविध रूपों का चित्रांकन मिलता है। उनकी काव्य अनुभूतियों में हिमालय, गंगा, यमुना के बिम्ब प्रमुखता से उभरकर आते हैं। इनमें भी उन्होंने पर्वतराज हिमालय को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का मुख्य प्रतीक बनाया है क्योंकि हिमालय भारत का भाल है, उसके प्रत्येक नागरिक का गौरव है, प्रेरणास्रोत है। हिमालय की विराटता कवि को अभिभूत करती है। उसके उन्नत शिखर का सूर्य भी अभिनन्दन करता है। वह पूरी धरती का ऐश्वर्य है। हिमालय की विशालता कवि के भीतर राष्ट्रीयता के भाव को जाग्रत करती है। वह उसकी विराटता पर मुग्ध होकर कहता है—

"इतनी ऊँची इसकी चोटी कि सकत धरती का ताज यही

पर्वत पहाड़ से भरी धरा पर केवल पर्वतराज यही।"[9]

हिमालय सिर्फ विराटता का ही प्रतीक नहीं है वह जीवनदाता भी है। उसकी गोद में एक विशाल सभ्यता पलती है। असंख्य मूल्यवान पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियाँ हैं वहाँ। उसकी छाया में ऋषियों, मुनियों ने चिन्तन किया। जीवन के गूढ़ रहस्य खोजे। पतित पावनी गंगा उसकी गोद से निकली। उसकी अविचलता, अटलता मनुष्य को धैर्य, उद्दाम साहस की अनवरत प्रेरणा देती है। वह मनुष्य की जय यात्रा की साक्षी है। जो भी उसकी छाँव में रहा स्वयं को अर्थ सम्पन्न कर गया। कवि के शब्दों में—

"इसकी गोदी में जो रह ले, वह मन का दिया जलाता

गिरिराज हिमालय से भारत का, कुछ ऐसा ही नाता है।"[10]

हिमालय भारत का स्वाभिमान है। भारत की जिजीविषा है। वह मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसके नागरिकों को अविचलित रहने की प्रेरणा देता है। वह नैरारथ को दूर कर जीवन, ऊर्जा और ज्योति का संचरण करने वाला है। वह तो स्वयं ज्योति पुंज है। सूर्य की सुनहली किरणों में जगम होता हिमालय मनुष्य को कभी न हारने और थकने की प्रेरणा देता है। वह हमारा पथ प्रदर्शक है—

"पथ हाथ पकड़कर दिखा दिया

मंजिल तक दीपक जला

पर मुझको उठा लिया।"[11]

---

[9] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 18

[10] वही, पृष्ठ 19

[11] वही, पृष्ठ 21

कवि का मानना है सृष्टि के आरम्भ के साथ ही हिमालय का भी जन्म हुआ। वह अनादि काल से भारत का रक्षक है। उसका प्रहरी है। उसके विशाल वृक्ष के तले भारत की जनता निर्द्वंद्व होकर जीवन-यापन करती है।

"जब से हुई दुनिया शुरू चन्दा तने, तारे बने

नदियाँ, हिमालय, सिन्धु हिन्दुस्तान के तारे बने।

तब से हिमालय है खड़ा, सटकर हमारी ढाल से।"[12]

हिमालय का सौन्दर्य अखिल विश्व में अनुपम है। उसका धवल रूप मानव जीवन को आलोक से भर देता है। बर्फ की बिछी चादरें उसके तन पर तो मस्तष्क के ऊपर उड़ते उज्ज्वल बादल। यह शोभा ही निराली है। और उसके आँचल में तरु-वृक्षों की अकूत सम्पदा, गोद से निकलती शीतल नदियाँ, और सुरभित पवन के झोंके यह समग्र सुन्दरता भारत का अभिमान है। वह पूरे भारत वर्ष की हार्दिक अभिव्यक्ति है। उसकी अभिलाषाओं का पुंज है—

"नीचे हिम, ऊपर घन उज्ज्वल

यह संसार हिमालय है।

भारत का जो कुछ कहना है

उसका उद्गार हिमालय है।"[13]

हिमालय की चोटियाँ दूर-दूर तक फैली हुई हैं। उन चोटियों के बीच में तरह-तरह के वृक्ष-लता खिलते हैं। बर्फ से लदी चोटियों के संग वन-फूल् की रंगीन कतारें और उस पर पड़ती चन्द्र किरणों उसे अपूर्व सुषमा प्रदान करती है। हिमालय के इस अप्रतिम सौन्दर्य पर रीझता हुआ कवि कहता है -

---

[12] वही, पृष्ठ 107

[13] गोपाल, सिंह नेपाली, *नीलिमा*, पृष्ठ 75

"चली गई है दूर-दूर तक

यह ऊँची-ऊँची गरिमाला

नभ में मेघ उमड़ आया है

शिखर शिखर पर हिम छाया।"[14]

अपनी एक कविता 'भारत अखण्ड, भारत विशाल' में उन्होंने भारत के विस्तृत भू-दृश्य की समृद्धि को वर्णित किया है। भारत के भूगोल में भारत माता की छवि देखते हुए सुन्दर मातृ स्तवन रचा है। चारों दिशाओं में उसकी प्राकृतिक सुन्दरता कैसे हृदय को गर्वित, पुलकित करती है यह इस कविता में बहुत हार्दिकता के साथ अभिव्यंजित है। दक्षिण के बारे में जहाँ सागर निशिदिन भारत माता के चरण पखारता है, उन्होंने लिखा है –

"भारत-पद-तल

नील जलोत्पल

लंका का जल

लंका का स्थल

शुद्ध चरण-जल

हरता कलि-मल

निशदिन पल-पल।"[15]

भारत नदियों का देश है। इसकी सभ्यता नदियों के किनारे ही पल्लवित-पुष्पित हुई है। हिमालय की तलहटी से निकलने वाली अनेक नदियों ने भारत के प्राकृतिक परिवेश को खूब समृद्ध किया है। इन जीवनदायिनी नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा का भारतीय जनमानस में विशेष आदर रहा है। यह मात्र नदी ही नहीं भारतीय जन के जीवन का आधार

---

[14] नेपाली, गोपाल सिंह, *पंचमी*, पृष्ठ 45-46

[15] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 111

है। वह उसके इतिहास, परम्परा, जय-यात्रा की साक्षी है। भारतीय वाङ्मय में इसकी नदियों की स्तुति मिलती है। वेद, उपनिषद्, पुराण आदि साहित्य में भारत की नदियों का बहुविध स्तवन किया गया है।

गोपाल सिंह नेपाली ने भी अपनी कविताओं में भारत की नदियों के सांस्कृतिक महत्त्व को चित्रित किया है। उनकी कविताओं में गंगा, यमुना आदि नदियों की सतत उपस्थिति है। उन्होंने इनके महत्त्व पर अपनी कविताओं में अनूठे बिम्ब रचा है।

भारत के हर प्रान्त में बहने वाली नदियाँ जीवन की धाराएँ हैं। उनका कल-कल प्रवाह भारत माता का नानाविध अभिषेक करता है। यह नदियाँ भारत माता के आँचल की हरियाली है। जब तक इनका अविरल प्रवाह है, यह देश भी सदा ऊर्जावान है, इसकी शोभा भी इनके रहते कभी क्षीण नहीं हो सकती। नेपाली ने विभिन्न नदियों के महत्त्व पर लिखा है—

"गंगा लेकर चली अर्घ्य जल, यमुना लेकर फूल
सागर लेने चला उमड़कर जननी की पद-धूल
दीप लिए गण्डकी पधारी, पद्मा गाती वन्दन
भारत माता के मन्दिर में आज जननि-पद-पूजन।"[16]

तरह-तरह की एक-दूसरे के साथ चलती-बहती नदियाँ मनुष्य को एक सन्देश भी देती हैं एकता का। अपना भेद भुलाकर राष्ट्र-निर्माण में एक-जुट होने का। रूप-रंग हमारा भले अलग हो पर हम सब साथ चलते हुए राष्ट्र की उन्नति में उसके विकास में सहयोग करेंगे। हँसी-खुशी जीवन का सफर काटेंगे। एक-दूसरे के दुख-सुख को सांझा करेंगे। हरहराकर बहती हुई नदियाँ मनुष्य को यही सन्देश देती है -

---

[16] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 52

"यमुना का हाथ पकड़ गंगा तीरों से रोज निकलती है

झुरमुट-झुरमुट में गाँव बसे, चिड़ियों-सी नैया चलती है

ये अपने हैं, तुम अपने हो, फिर आनाकानी कहाँ हुई।"[17]

भारत की नदियों में गंगा का विशेष स्थान है। शताब्दियों से लोक मानस उसे अपना जीवन स्रोत मानता है। उसकी पवित्रता, शुद्धता लोकचित्त को आहलादित करती है। गंगा सिर्फ नदी ही नहीं मुक्तिदायिनी भी है। उसकी धारा में डूबकर व्यक्ति अपने को कृतार्थ समझता है। उसका अनवरत प्रवाह जीवन और मृत्यु के रहस्य को प्रकट करता है। उत्तर भारत के उनके शहरों से होकर बहने वाली गंगा ने मानव सभ्यता के कई गीत रचे हैं। उसकी धारा अनेक स्मृतियों को समेटे हुए हैं। बनारस, प्रयाग, कानपुर, हरिद्वार के घाट की सुषमा से आहलादित होते हैं। इन शहरों के सौन्दर्य को गंगा ने एक नया आयाम दिया है। उसके प्रवाह में नावों के बेड़े हैं तो कहीं शाम को गंगा आरती है तो कहीं किनारों पर मस्ती करते बच्चे बूढ़े और जवान। कुल मिलाकर वह जीवन का आधार है -

"छूकर गंगा की लहरों को

जब ठण्डे झोंके आते हैं,

हम मस्त-मगन हो जाते हैं,

दिल भर के झोंके खाते हैं!"[18]

गंगा जीवन जीने की कला सिखाती है। उसकी लहरों पर जीवन और मृत्यु दोनों ही उतरते हैं। एक ओर जीवन की हलचल मझेरे, वंशी, मादल, धोबी घाट, नौका-पतवार तो दूसरी ओर एक पंक्ति में जलती चिताएँ। उदय और अस्त के दो विरोधी बिम्ब वह एक साथ समेटे

---

[17] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 97

[18] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 58

हैं। राग-बिराग का सह अस्तित्व यह बताता है जन्म और मृत्यु एक क्रम है। मृत्यु का अर्थ सब कुछ शान्त हो जाना नहीं है वरन् पीछे से फिर एक लहर आएगी जीवन का नया सृजन होगा और यह प्रवाह अनवरत चलता रहेगा। गंगा की लहरें मनुष्य को यही सन्देश देती हैं। दुख और संताप को सहने का सन्देश। वह जीवन के प्रति आस्थावान बनाती है और कहती है, सुख-दुख सिक्के के दो पहलू हैं। जन्म की तरह मृत्यु भी अनिवार्य है, तो फिर इससे विचलित क्या होना। गंगा के इस मर्म को आत्मसात कर नेपाली ने लिखा है –

"हर रोज चिताएँ सजती हैं
हर रोज मुसाफिर आते हैं
दुनियावाले रोते रोते
दुनिया पर आग लगाते हैं,
गंगा को थोड़ी भस्म चढ़ा
फिर वे वापस हो जाते हैं।"[19]

पंजाब पाँच नदियों का प्रदेश है। इसका नामकरण ही इसमें बहने वाली पाँच नदियों रावी, सतलज, चिनाव, झेलम के नाम पर हुआ है। यह नदियाँ पंजाब का गौरव हैं। उसके गौरवपूर्ण इतिहास की साक्षी है। इस धरती के मानक, गुरुगोविन्द सिंह जैसे महापुरुष हमें दिए। पंजाब की नदियाँ इन महापुरुषों की करुणा, त्याग, वीरता की गवाह है। शताब्दियों से यह नदियाँ जनता को पंजाब के सपूतों की गाथा सुनाती है। 'पंचनद के तीर पर' कविता में नेपाली ने इस बारे में कहा है –

"हुआ ज्योति जीवन की लेकर नानक का अकार सखी
इसी पंचनद तीर हुआ था यौवन का शृंगार सखी।"[20]

---

[19] वही, पृष्ठ 59

नेपाली ने अपनी कविताओं में भारत में सांस्कृतिक स्थालों का भी वर्णन किया है। भारत के कुछ प्रमुख शहरों जहाँ की उन्होंने यात्राएँ की हैं अथवा प्रवास किया है उस पर कुछ अच्छी कविताएँ रची हैं। इनमें बम्बई, देहरादून, काशी, प्रयाग आदि शहरों के सौन्दर्य का वर्णन विशेष तौर पर हुआ है।

कवि का बचपन देहरादून में बीता है। देहरादून पर्वतीय नगर ही। उसकी प्राकृतिक छटा कवि को तरंगित करती रही है। उसके पहाड़-पशु, पक्षी, वन-नदी, कवि की चेतना में रचे-बसे हुए हैं। उसे याद करता हुआ कवि 'पहाड़ी कोयल' नामक कविता में लिखता है -

"पास के पहाड़ से

झाड़ियों की आट से

काली-काली कोयलिया, ऊँचे-ऊँचे बोलती

सो रहा सारा जहान

गुमसुम है आसमान।"[21]

सागर-तट पर बसा बम्बई भारत की आर्थिक राजधानी भी है। पूरे देश के लोग वहाँ बसे हैं। उसे सपनों की नगरी भी कहा जाता है। बम्बई के बन्दरगाह, सागर तट किसी को भी अपनी तरफ खींचने की क्षमता रखते हैं। उसके तट पर मछुआरों की अलग ही संस्कृति बसती है, जो भारतवर्ष की सांस्कृतिक विविधता में चार चाँद लगाती है। सागर तट पर मछेरों द्वारा फेंका गया जाल और उस पर डूबते सूरज की किरणें साथ ही बादलों की आवाज भी इस दृश्य से अभिभूत होकर कवि "चौपाटी का सूर्यास्त' कविता में लिखता है -

"यह रंगों का जाल सलोना, यह रंगों का जाल

---

[20] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 78

[21] नेपाली, गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 93

किरण-किरण में फहराता है

नयन-नयन में लहराता है

चिड़ियों-सा उड़ता आता है

यह रंगों का जाल।"[22]

काशी भारत की धार्मिक राजधानी है। प्राचीन काल से ही शिव की नगरी की पूरे विश्व में ख्याति रही है। दूर-दूर तक सैलानी यहाँ आते हैं। यह शहर भारत के नागरिकों को एकता के सूत्र में बाँधता है। यहाँ के शिवाले, घाट, लोक-संगीत, जिन्दादिली जग प्रसिद्ध है। यह मोक्ष की नगरी भी कहलाती है। जीवन की संध्या बेला यहीं पर गुजारना भारतीयों की अभिलाषा होती है। इस धरती ने कई सन्त दिए, कवि दिए। यहाँ दर्शन, संगीत, कलाओं का भी अनादि काल से आयोजन होता रहा है। काशी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नेपाली ने 'सलक' नाम से एक कविता लिखी है। इस कविता में वह काशी की पृष्ठभूमि में गंगा, उसके घाट और पड़ोस में खड़े सारनाथ, प्रयाग की छवियों को भी अंकित करते हैं। कविता के कुछ अंश देखिए –

"सामने पुरी काशी की रे संकीर्ण, सघन, सुन्दर अपार

नीचे प्रयाग में आ-आकर, कर जाती है गंगा दुलार

दीखता यहाँ से बौद्ध स्तूप है, कहीं पास सही में विहार

है वही हमारा सारनाथ, ऋषि पत्तन, वरूणा की कछार।"[23]

काशी की मस्ती, फक्कड़पना कवि को जीवन में एक नई प्रेरणा देती है। मस्ती के इस कवि को गंगा की लहरें उसकी भावनाओं को हिलोंरती हैं। वह उल्लास में भरककर कहता है –

---

[22] वही, पृष्ठ 65

[23] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 64

“ऐसे ही इस भव-सागर में खेला करता यह लघु जीवन

सागर की चंचल लहरों में बह जाते हैं सारे अभाव।”[24]

प्राकृतिक विविधता की तरह भारत में नगरों की भी बहुरंगी छटा है। यहाँ का हर शहर एक रंग लिए हुए है। सबका अपना स्वभाव अलग चालढाल है। किसी का पहनावा, खानपान, रीति-रिवाज निराला है तो किसी की भाषा। एक ही देश में इतने मिजाज के शहर विदेशियों के लिए कौतूहल का विषय रहा है। नेपाली ने अपनी कविताओं में भारतीय शहरों के इस वैविध्य को चिन्हित करने का सुन्दर प्रयास किया है। उनके लिए लखनऊ अगर तहजीब और जिन्दादिली का शहर है जो बनारस मस्ती का। एक कविता में उन्होंने लिखा है–

“हर शाम लखनऊ हँसता है, हर सुबह बनारस बसता है

कहते हैं हिन्द जिसे, उसको सारा संसार तरसता है।”[25]

5.4. संस्कृति और प्रकृति

नेपाली ने भारत के विभिन्न ऋतुओं का भी सुन्दर वर्णन किया है। भारत की ऋतुएँ उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं से भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। यहाँ कोई मौसम निरा सौन्दर्य का प्रतीक नहीं वह जीवन की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। फागुन में होली की धमक तो बसन्त में असंख्य प्रेम गीतों की गूँज, राधा-कृष्ण की छवियाँ हैं। ये सारे मौसम उसके लोक गीतों से जुड़े हैं। मानव जीवन के अलग-अलग संस्कारों के वाहक हैं। जन्म, मुण्डन, विवाह आदि। श्रम सम्बन्धी, धार्मिक गीत मौसम की पृष्ठभूमि में ही रचे गए हैं। इस तरह बसन्त, वर्षा, फागुन अपने साथ उल्लास, मस्ती नवजीवन लाने के अलावा इस संस्कृति की स्मृतियों को

---

[24] वही, पृष्ठ 65

[25] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 96

भी जीवित करते हैं। कवि नेपाली ने बसन्त, फागुन आदि के सौन्दर्य से अभिभूत होकर कई सारे सुन्दर गीतों की रचना की है। इन कविताओं, गीतों में उनके हृदय की उमंग देखते ही बनती है। इनका 'पंछी' नामक काव्य-संग्रह तो पूरी तरह से ऋतुओं को ही समर्पित है।

पावस ऋतु भारतीयों में नव जीवन का संचार करता है। कृषक संस्कृति के लिए तो वह अमृत तुल्य है। नौजवान दिलों को वह मस्ती और उमंग भरता है। वह अपने जीवन के नए गीत रचने को प्रेरित होता है। नेपाली ने पावस में गरजती काली घटाओं को देखकर लिखा है—

"उठीं घटाएँ काली-काली
पवन झूलता डाली-डाली
बादल गरजे बिजली चमके
सिहर उठे वन की हरियाली।"[26]

बसन्त प्रेम का ध्वजवाहक है। वह दग्ध हृदय को अपनी शीतल बयार से सुरभित करता है। नैराश्य की बदली बसन्त के आते ही छट जाती है। उसके पीलेपन से सारी धरती रंग जाती है। वह सारे भेद मिटाकर सभी को अपने रंग में रंग देती है। क्या मनुष्य क्या पशु-पक्षी सभी उसी के गीत गाते हैं। नेपाली ने बसन्त की इस अप्रतिम छटा पर मुग्ध होते हुए 'यह कली ग़ज़ब ढा रही आज' कविता में लिखा है—

"आया बसन्त मच गई धूम,
सज गई प्रकृति की रंग भूमि
हैं खिले फूल तो फूल, किन्तु
यह कली ग़ज़ब ढा रही आज।"[27]

---

[26] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 77

यह कविता प्रेम के कोमल नवांकुरों के बारे में बड़े सुन्दर ढंग से अपनी बात कहती है। नेपाली नवीनता के आग्रही हैं। नए भारत के नए तरुणों के हृदय में स्वप्न खिले, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा है।

बसन्त ऋतु में पूरी प्रकृति कैसे झूमने लगती है, हर कोई उसके गीत गाता है प्रेम की खुमारी में डूबा, इसे अभिव्यक्त करते हुए कवि ने 'बसन्त गीत' कविता में कहा है –

"अलि आज घूमता है
हँसमुख बसन्त आया
फैली मनोज्ञ माया
खग ने बसन्त गाया
जो मन्द गुनगुनाया।"[28]

मधु ऋतु नव जीवन का संचार करती है। वह पूरी धरती को पुनर्नवा करती है। पुराना जीर्ण-शीर्ण झूटता है ताजगी चारों ओर फैल जाती है विचारों में प्रकृति में, जीवन में। यह नव निर्माण का सन्देश देती है। कवियों की परिपाटी रही है, बसन्त के सन्देश को सुनाने की। यह इस बसन्त की वर्ष भर प्रतीक्षा करता है। बसन्त के आगमन से धरती ही हरियाली की चादर नहीं ओढ़ती पूरी मानव सृष्टि भी उसके उल्लास में डूब जाती है।

"अयि मधु ऋतु, तू आने लगती जब मेरे मधुवन में
सूखे पेड़ हरे हो जाते
मुर्झाये पल्लव तन जाते
भौंरे बिसरी कड़ियाँ गाते आ-आकर उपवन में।"[29]

---

[27] वही, पृष्ठ 25

[28] नेपाली, गोपाल सिंह, *पंचमी*, पृष्ठ 54

पीपल के पेड़ का भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान है। यूँ तो पूरा वनस्पति जगत ही अपने औषधीय एवं जीवनदायी गुणों के कारण महत्त्व का अधिकारी है पर पीपल के पेड़ से जुड़ी धार्मिक मान्यताएँ एवं इसके कुछ अन्य गुण भारतीयों की दृष्टि में इसे खास बनाता है। इसके पत्ते जहाँ ताप से पीड़ित जनों को अपनी शीतल बयार से आनन्दित करते हैं, वहीं यह प्राणियों को छाया देता है और स्वयं मासूम पंछियों का आवास भी है। सदियों से भारतीय जनमानस में पीपल के पेड़ की आस्था को याद करते नेपाली ने 'पीपल' शीर्षक कविता में लिखा है –

"पीपल के पत्ते गोल-गोल
कुछ कहते रहते डोल-डोल
बुलबुल गाती रहती चह-चह
सरिता गाती रहती बह-बह
पत्ते हिलते रहते रह-रह
जितने भी इसमें है कोटर
सब पंछी, गिलहरियों के घर।"[30]

बसन्त, सावन और पावस की चर्चा हो और राधा-कृष्ण न हो तो पूरी कविता ही उनके बिना अधूरी है। राधा-कृष्ण प्रेम के अधिष्ठाता है। लोकमानस में उनकी प्रेमपूर्ण छवि अंकित है। राधा-कृष्ण मन्दिरों और पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा प्रकृति के खुले रंगमंच पर शोभित होती है उनकी प्रेम-लीला, कौओं, कदम्ब के पेड़, काले मेघों, बरसात की बूँदों, भौंरों की गुंजन और मोर-मोरनी के उल्लासपूर्ण नृत्य के बीच में ही खिलती है। जयदेव, विद्यापति, सूरदास, भारतेन्दु आदि कवि परम्परा ने बड़े मनोयोग से राधा-कृष्ण की प्रेमलीला को प्रकृति की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है।

---

[29] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 74

[30] वही, पृष्ठ 53

प्रकृति में गूँजते राधा-कृष्ण के प्रेमगीतों की गूँज जनता को आह्लाद से भर देती है। नेपाली ने लिखा है –

“हवा में जल बुन्दों में आज

बजे पावन सावन के साज

कि जिसमें बजा श्याम का बेणु

और राधिका-नाम का बेणु

गगन वन में कदम्ब अभिराम

छिपा है फिर पातों में श्याम।”[31]

5.5. संस्कृति, पर्व और त्यौहार

भारत उत्सव प्रधान देश है। यहाँ के हर प्रान्त में प्रतिदिन कोई-न-कोई त्यौहार पड़ता ही रहता है। अपने दैनिक कार्यों में रत व्यक्ति इन त्यौहारों से प्रेरणा ग्रहण कर जीवन को नई ऊर्जा से भरता है। लोक जीवन में श्रम सम्बन्धी प्रायः सभी कवि ही किसी न किसी त्यौहार या गीत से जुड़े हैं। यह उत्सव धर्मिता उसे जीवन में कभी निराश नहीं होने देती और कर्म पथ पर चलते रहने का सन्देश देती है। भारत के लोकजीवन में इतनी सारी कथा-गाथाएँ हैं, त्यौहारों, उत्सवों की लड़ियाँ हैं कि पूरे वर्ष भर जनमानस इनकी मस्ती में डूबा रहता है। इनकी परम्पराओं से जुड़ा व्यक्ति कभी अपने को अकेला पाता ही नहीं वह दुख, बाधाओं में भी इनके कारण अपनी आशा, उम्मीद को बचा ले जाता है। भारत के उत्सवधर्मी चरित्रों को रेखांकित करते हुए नेपाली ने एक कविता में लिखा है—

“फागुन रंगों का है यहीं

त्यौहार दियों का है यहीं

क्या जवानियों क्या रवानियों

[31] नेपाली, गोपाल सिंह, *पंचमी*, पृष्ठ 36

घर कहानियों का है यहीं

यह मेरा हिन्दुस्तान है।"[32]

होली को मस्ती और उमंग का त्यौहार कहते हैं। यह दिलों की दूरियों को मिटाकर सबको प्रेम के रंग में रंग देता है। इस त्यौहार में न कोई छोटा है न बड़ा है। न अमीर न गरीब सब प्रेम के पुतले हैं। मस्ती और उल्लास के पंछी हैं। जीवन में मस्ती और अल्हड़ता को विशेष महत्त्व देने वाले नेपाली ने होली के त्यौहार पर रीझते हुए कहा –

"बचपन, जरा, विहँसता यौवन

हो-हो कर मस्ताना

खेलें होली मिल आपस में

गावें मीठा गाना।"[33]

5.6. संस्कृति और लोक जीवन

नेपाली ने भारत के लोक जीवन पर भी कुछ सुन्दर कविताएँ रची हैं। लोक ने भारत की बहुमूल्य सांस्कृतिक विरासत सहेजी है। प्रकृति का साहचर्य, लोक कलाएँ-चित्रकारी, लोकनाट्य, लोकगीत, समरसता, सहजता, उत्सवधर्मिता, जिन्दादिली यह लोकचित्त की अमूल्य निधियाँ हैं। गाँधी जी भी मानते थे असली भारत गाँवों में बसता है। नेपाली ने भारतीय लोक जीवन की विशिष्टताओं से प्रभावित होकर 'देहात' शीर्षक रचा, जिसमें उसकी सामाजिक सौहार्द, आत्मीयता, प्रकृति प्रेम, उत्सवधर्मिता आदि को अभिव्यक्ति किया है। उनका मानना है कि सीधे सादे ग्रामीणों और उनके सादगी से बने फूस के घर में ही भगवान बसते हैं; क्योंकि ईश्वर तो प्रेम का भूखा है। और यह देहात छल-कपट से दूर रहकर

---

[32] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 37

[33] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 73

सिर्फ प्रेम के मन्त्र जानता है। यह असली तीर्थ है जो अपने परिश्रम से अन्न उगा जग का पेट पालता है-

"फूस का यहीं बसा घरबार
प्रकृति का यहीं सदन अभिराम
यही है सब तीर्थों का तीर्थ
यहीं पर नर देवों का धाम।"[34]

देहात की धरती सिर्फ अन्न ही नहीं उगाती स्नेह और प्रेम के गीत भी दुनिया को देती है। वह दिनरात हाड़-तोड़ मेहनत करती है। विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति उसकी अगाध आस्था से अभिभूत होकर नेपाली ने लिखा है –

"यहीं के खेतों में उत्पन्न
हुआ करता है मधुर स्नेह
धूल में लोट-लोटकर यहीं
हुआ करती सोने की देह।"[35]

यह शस्य श्यामला धरती ही सोने की बालियाँ हैं। परिश्रम के स्वेद ही स्वर्ण बिंदु हैं, ऐसा नेपाली का मानना है।

सामूहिक कण्ठों से रचे गए ये लोकगीत मनुष्य के अपार कष्ट में भी धैर्य की सीख देते हैं। इन्हें गुनगुनाते हुए मनुष्य अपना पहाड़ जैसा जीवन सहजता से काट लेता है—

"यह गीतों का है देश जहाँ चरवाहा विरहा गाता है
सुख हो, दुख हो, सौन्दर्य यहाँ गीतों में गाया जाता है।"[36]

---

[34] वही, पृष्ठ 68

[35] वही, पृष्ठ 69

5.7. संस्कृति और मानव मूल्य

संस्कृति का मूल्यांकन करते हुए नेपाली ने मनुष्य की जय-यात्रा की कथा भी कही है। इस देश में मानव सभ्यता पर अनेक आक्रमण हुए कभी प्राकृतिक आपदाओं का हमला तो कभी विदेशी आक्रमणकारियों का। लेकिन मनुष्य ने उसे अपने अदम्य साहस से सदा चुनौती दी और बार-बार गिरने के बाद भी वह उठा और नए पथ की ओर चला। उसकी जय-यात्रा का क्रम आज भी जारी है। मनुष्यता पर अटूट विश्वास रखने वाले कवि नेपाली ने भारतीय जन के इस साहस और संकल्प की खूब प्रशंसा की है। इस जन ने बार-बार एक नया इतिहास रचा है, आने वाली पीढ़ियों का प्रेरणा-स्रोत बना है और इस सन्दर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय है कि उसका कर्म हमेशा मानवता के पक्ष में रहा है। एक कविता में भारतीय चित्र के इस स्वभाव को इंगित करते हुए उन्होंने कहा है –

“फिर मानव ने जन-सेवा में
अपनी लगत लगाई होगी
बन्धु-भाव का पुष्प दिखाकर
जीवन ज्योति जगाई होगी।”[37]

नेपाली का मानना है कि मानव का उद्यम मनुष्यता के पक्ष में होना चाहिए। वह कोई भी असाधारण कार्य जो मनुष्य को मनुष्य का गुलाम बनाए, एक दूसरे के ऊपर शासन करना सिखाए, उनकी दृष्टि में त्याज्य है। वह समानता के पक्षधर है। मनुष्य के साहसिक कार्य गुलामी की जंजीरों को तोड़ने वाले होने चाहिए। वह अपने प्रयत्न से परिश्रम से समता की जमीन तैयार करे, एक ऐसा आह्वान उन्हें काम्य है। कोई शोषक हो न कोई शोषित हो –

“दुनिया में न गुलामी होगी
मानव की मानव पर कायम

---

[36] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 96

[37] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 65

बढ़ो तुम्हारे संघर्षों से

एक नया संसार बसेगा।"[38]

दुनिया निराली है यह भारतीय तहजीव जो घोर दैन्य और अभाव के बावजूद जीवन का रस छककर पीना जानती है। मस्ती और फकीरीपना इसका मूल स्वभाव है। अपने संकट-काल में भी जीवन की कोंपलों को फूटता देख लेती है। और प्रेम के गीत गाती है। भारतीयों की इस जिजीविषा को रेणु ने अपने उपन्यास मैला आँचल और परती परिकथा में बड़े मनोयोग से दिखलाया है। जहाँ विपन्नता के बावजूद भी उसके पात्र कोसी की लहरों को प्यार करता नहीं भूलते और दिन रात वहाँ विद्यापति के गीत गूँजते रहते हैं। वही जीवन ऊर्जा नेपाली की कविताओं में मिलती है जहाँ जीवन का उत्कट राग हर क्षण छाया हुआ है। प्रेम-पथ पर काँटों को भी फूल बना लेने की सीख देते हुए उन्होंने कहा –

"ध्यान कर गुण-गान कर, मृदु प्रेम का यह योग रे

शूल पथ के फूल हैं, यह प्राण का उद्योग रे।"[39]

यहाँ अभाव तो है पर उसका स्वभाव आत्मसम्मान का है। दैन्य के बावजूद कर्म से अर्जित एक दीक्षित है इस लोकचित्त के पास। इस संस्कृति ने कभी किसी का शोषण नहीं किया। किसी की दुर्बलता का उपहास उड़ाकर उस पर अधिकार कर लेना यह भारतीय चरित्र का स्वभाव नहीं है। यह देश आदर्शों का है। आत्म सम्मान के साथ जीने वालों का है। इसके ढंग ही निराले हैं –

"मेरा देश बड़ा गर्वीला, रीति-रसम-ऋतु रंग-रंगीली

नीले नभ में बादल काले, हरियाली में सरसों पीली।"[40]

---

[38] वही, पृष्ठ 72

[39] नेपाली, गोपाल सिंह, *रागिनी*, पृष्ठ 49

इस संस्कृति की विविधता उसका प्राण तत्त्व है। प्रकृति की सतरंगी छटा, अनगिनत त्यौहार, मौसम के तमाम रंग, बोली-बानी, पहनावा, रीति-रिवाज, परम्परा - ये सब मनुष्य को अवसाद में जाने ही नहीं देते। अपनी सतत आवृत्ति में लोक को व्यस्त रखने, नई-नई कल्पनाशीलता में जाने का उद्यम करते हैं। परम्पराओं की सतत आवृत्ति लोकजन को रचनाशील बनाती है। यहाँ आप किसी की भी आराधना कर सकते हैं कोई भी भाषा चुन सकते हैं एक परम्परा से दूसरी परम्परा में आवाजाही कर सकते हैं, कहीं कोई बन्दिश नहीं। भारत की इस सांस्कृतिक विविधता पर 'मेरा देश बड़ा गर्वीला' में नेपाली ने लिखा है –

"लो गंगा-यमुना-सरस्वती, या लो मन्दिर मस्जिद-गिर्जा

ब्रह्मा-विष्णु-महेश भजो या, जीवन-मरत-मोक्ष की चर्चा

सबका यहीं त्रिवेणी संगम, ज्ञान गहनतम, कला रसीली।"[41]

यद्यपि इस संस्कृति के उज्ज्वल रूप में भेदभाव, जातिप्रथा, पाखण्ड आदि के तमाम काले धब्बे भी हैं, जिनकी चर्चा किए बगैर हम यथार्थ के एक पहलू को नजरअन्दाज ही करेंगे। लेकिन नेपाली ने संस्कृति के इन अन्तर्विरोधों को न उठाकर मुख्य रूप से उसकी अच्छाइयों की ही चर्चा की है, क्योंकि उनका लक्ष्य है भारत का नवनिर्माण जिसके लिए वे पूरे प्राणप्रण से समर्पित हैं। इसीलिए उन्होंने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा –

"चाहो कि एकता बनी रहे, जनम जनम

तुम भेद ना करो, मनुष्य भेद ना करो।"[42]

---

[40] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 38

[41] वही, पृष्ठ 39

[42] वही, पृष्ठ 41

विविधता में एकसूत्रता अथवा अनेकता में एकता नेपाली का मूलमन्त्र है। जिस मस्ती के गीत वह निशिदिन गाते हैं वह जनता के सामूहिक कंठ के बिना सम्भव नहीं। विविधता को ही अपनी ताकत बनाना है, यह पूरी दुनिया को दिखा देता है, इस भाव से भर कर उन्होंने कहा –

“हिन्दू मुस्लिम क्रिस्तान है
लेकिन पहले इंसान हैं
हैं सिक्ख यहीं पारसी यहीं
जो हैं मिल्लत की शान हैं।
हैं रंग-रँगीले लोग, तिरंगा सबका एक निशान है।”[43]

इस तरह हजार रंगों के ऊपर एक तिरंगा निशान जो दूर से ही पहचान में आ जाए, जो सब एक ही चेतना से बाँध दे, वही नेपाली को काम्य है। तो इस तरह अलमस्ती नेपाली के काव्य का स्थायी भाव है। भारतीय संस्कृति में परिव्याप्त उस अलमस्ती, बेफिक्री को पाना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। यह अल्मस्ती ही मनुष्य को अपार दुःख सहने की क्षमता प्रदान करता है। वह राग और विराग में समदशा को प्राप्त हो जाता है और कभी जीवन के प्रति कुंठित नहीं होता। मनुष्य को उसकी कुंठाओं से मुक्त कर देने वाली भारतीय संस्कृति की इस अनूठी विशेषता पर यह एक कविता में कहा है –

“रो ले मोती चमकाये जा
हँस ले फूल खिलाए जा
नाच-नाचकर अलमस्ती में
गाये जा, रंग लाये जा।”[44]

---

[43] वही, पृष्ठ 35

भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों की छाया भी इनकी कविताओं में दिखती है। इस महान संस्कृति ने विश्व को अपनी अमूल्य निधियाँ दी हैं। मानव प्रेम, करूणा, दया, शान्ति, तप, त्याग, क्षमा, नैतिकता यह इसके जीवन आदर्श हैं। भारतीय सन्तों, महापुरुषों ने सकल विश्व को इन मूल्यों का सन्देश दिया है। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, नानक, गाँधी, विवेकानन्द आदि विभूतियों ने अपने जीवन मूल्यों से समस्त विश्व को प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति के इस समुज्ज्वल पक्ष के बारे में नेपाली ने भी अपनी कविताओं में लिखा है। भारत के नवनिर्माण के लिए उन्होंने इन जीवन-मूल्यों को आवश्यक समझा है। एक कविता में उन्होंने इन मूल्यों के लिए संवर्ग कहा है –

"सुख, शान्ति, नेह, करूणा, दुलार

वत्सलता, संवेदना, प्यार

बहती है इनकी विमल धार

इस वसुधा में रे लगातार।"[45]

नेपाली ने करूणा को जीवन का सबसे बड़ा मूल्य समझा। यह करूणा जीवन का आधार है। करूणा ही मनुष्य को पाशविकता से मुक्त करती है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को और समस्त विश्व से प्रेम करना सिखाती है। इसीलिए हमारे साहित्य में भी करूण रस को सबसे बड़ा और श्रेष्ठ रस कहा गया है। जीवन में करुणा के महत्त्व पर कवि नेपाली ने लिखा है –

"क्या कभी किसी को दुख में पाकर छलती है करूणा

निशिदिन सिरहाने बैठी पंखा झलती है करूणा।"[46]

---

[44] नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 44

[45] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 16

[46] वही, पृष्ठ 44

जीवानाभिमुखता के कवि नेपाली ने मानव जीवन में सदा प्रेम और करूणा की बरसा होता देखना चाहा है। उनकी इच्छा है प्रत्येक मनुष्य का हृदय करूणापूरित हो, वह अपने यौवन को प्रेम से सराबोर कर दे। समरसता और सौहार्द की पूरे भारतवर्ष में धूम हो। क्योंकि इस करूणा के प्रसार से सभी हिन्दजन एक होंगे और देश की प्रगति, खुशहाली का एक नया अध्याय लिखेंगे—

"करूणा का निर्झर झरता हो, उमड़े मस्ती का सागर

एक बूँद पाने का जग में, कोई भी हकदार रहे।"[47]

और करूणा ही नहीं सेवा के भाव से भी उसका हृदय पूरित रहे। हमारे महापुरुषों ने प्राणिमात्र की सेवा की सीख दी है। असहाय, अशक्त, रूग्ण की सेवा करना श्रेष्ठ मानव मूल्य है। सेवा भाव रखने वाला मनुष्य कभी हिंसक और स्वार्थी नहीं हो सकता। वह अपने से ऊपर उठकर समस्त जग के कल्याण की सोचता है। भारतीय नायकों ने सेवा भाव के आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उसी भाव से उभरकर नेपाली ने यह कामना प्रकट की है –

"सेवा का व्रत लेकर विचरूँ जग के कोने-कोने में

मैं न रहूँ, न सही, पर मेरा भारत यह गुलजार रहे।"[48]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है– परहित सरस धरम नहीं भाई तो परहित, परदुखकातरता ही सबसे बड़ा मानव मूल्य है। नेपाली का भी यही मानना है। जो सुखी है, सबल है उनकी तरफ हर कोई दौड़ता है पर असहायों से वही लोग जी चुराते हैं। कवि ने इसलिए यह आह्वान किया है—

"यहाँ सुखी हैं थोड़े मानव,

---

[47] वही, 95

[48] वही, पृष्ठ 25

ज्यादे मानव यहाँ दुखी हैं,

चलो दूर सुखियों को छोड़ो,

तुम दुखियों की पीड़ा हर दो।"[49]

भारतीय संस्कृति व्यर्थ के रक्त-पात, हिंसा में यकीन नहीं करती। वह जग में शान्ति चाहती है। तामसिक वृत्तियों से शान्ति। अहंकार, मिथ्या अभिमान के कोलाहल से शान्ति। उसका संगीत उसकी ध्वनि प्रेम की ध्वनि है। यह ध्वनि शान्ति की सृष्टि करने वाली है। आत्मा को मानसिक परितोष प्रदान करने वाली है। शान्ति और करूणा की इस पृष्ठभूमि में ही मानवता का सच्चा विकास होता है। आधुनिक भारत को ऐसा ही नवीन समाज गढ़ना है जहाँ सिर्फ एक मस्ती की धुन हो प्रेम और करूणा से भीगी मस्ती की धुन—

"एक नया संसार कि जिसमें एक नवीन समाज

एक नई जिन्दगी कि जिसका एक नया अन्दाज

जग में अनुज-रूधिर के बदले

बहती रहे स्नेह की धारा

शान्ति बुलाती रहे पथिक को

वन जीवन नभ का ध्रुवतारा।"[50]

5.8. संस्कृति और दर्शन

गोपाल सिंह नेपाली की कविताओं में मृत्यु सम्बन्धी चिन्तन भी मिलता है। भारतीय संस्कृति में मृत्यु विमर्श की लम्बी परम्परा रही है। उपनिषदों से लेकर भगवदगीता एवं अन्य कवि मनीषियों के ग्रन्थों में मृत्यु के रहस्यों को समझने की चेष्टा है। अपनी परम्परा के ही अनुरूप नेपाली ने मृत्यु को एक अनिवार्य तथ्य के रूप में देखा है। मृत्यु का वहाँ भय नहीं

---

[49] नेपाली गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 71

[50] नेपाली गोपाल सिंह, *नवीन*, पृष्ठ 32

स्वीकार है। जैसे रात और दिन का क्रम अनिवार्य है वैसे ही जन्म और मृत्यु का क्रम भी चलता रहता है। इस निरंतरता के बीच से ही जीवन का सौन्दर्य खिलता है। पौधे से बीज का जन्म होना फिर क्षरित होकर मिट्टी में मिल जाना और पुनः अंकुर का रोपण। यही जीवन है। कवि के शब्दों में–

"जन्म-मरण दो छोर दूरतर

और बीच का जीवन सुन्दर

जग में यह सुरसरि की धारा

डुबा रही जो कूल किनारा।"[51]

नेपाली जीवन में नवीनता के आग्रही हैं। उन्होंने पुरानी रूढ़ियों को त्यागकर नये जीवन के सन्देश को सुनने की बात की है। जो नया है, जिसमें स्फूर्ति है वही जीवन संग्राम में टिकेगा। रुग्ण मूल्य हवा के झोंके की तरह वह जाएँगे। भारत के नवनिर्माण के लिए नव संकल्पों की जरूरत है। नई कल्पनाओं, योजनाओं से भरा हुआ मन उत्साह के साथ आगे बढ़ता है। वही प्रकाशवान होता है –

"जो जलता है वह नवीन है, जला-बुझा प्राचीन।"[52]

प्रकृति भी पुराने पत्तों को त्याग देती है। नई कोंपले धारण करती है। नदी लगातार बहती रहती है इसीलिए वह हर क्षण ताजी होती है। जो पुराने से चिपका रहा नष्ट हो जाएगा। इसलिए नई चेतना से सम्पन्न करना आवश्यक है जीवन को। प्रसंगवश नेपाली ने अपनी कविता में जवानी, यौवन की भी खूब बात किया है। यह जवानी और कुछ नहीं कुछ नया रचने की आकांक्षा है। पुरानी लीक को तोड़कर एक नए समाज एक नए जीवन की कल्पना है। यह पुरातनता और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह है। भारतीय संस्कृति में जहाँ परम्परा का

---

[51] वही, पृष्ठ 27

[52] वही, पृष्ठ 30

आग्रह है वहीं पुरातन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भी भाव है। नवीनता और यौवन के महत्त्व पर नेपाली ने लिखा है –

"जीवन नियम, जवानी अनियम - तोड़ चली जो बाँध
बिना जवानी के इस जग में जीना है अपराध
जीवन-कानन की मधुऋतु का, रस का जय-जयकार
यौवन बने स्वयं जीवन के यश का जय-जयकार।"[53]

नेपाली ने यौवन को भरपूर जी लेने की बात की है। यह समय व्यर्थ न जाए, कुछ नया रचे, नया इतिहास लिखे अपने साहस से, संकल्प से। पूरे प्रकृति में इस जवानी के धुन की गूँज हो यह भावना उनकी कविताओं में गहराई से अंकित है। प्रकृति का साहचर्य, उसके क्रिया-व्यापार उनके इन मनोभावों को परवान चढ़ाते हैं। वह नई भावनाओं, नई सृष्टि का जय-जयकार करती है।

नेपाली ने अपनी कविताओं में जीवन मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की भी बात की है। कुछ शाश्वत मूल्य होते हैं जैसे कि सदाचार, न्याय, शान्ति आदि। लेकिन कभी-कभी परिस्थितियों के सन्दर्भ में उनके अर्थ बदल जाते हैं। भारत वर्ष सदा ही शान्ति और अहिंसा का पक्षधर रहा है। सीमा विस्तार के लिए उसने न तो कभी किसी देश पर आक्रमण किया न ही युद्ध को न्यौता दिया। उसकी नीति शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की रही है। लेकिन देश रक्षा के लिए शौर्य और पराक्रम के भाव को भी वह अनिवार्य मानता है। 1959 में जब चीन ने देश की सीमा पर गोलाबारी की और उसकी अस्मिता पर चोट पहुँचाई तो शौर्य का भाव भारतीयों में जाग्रत करना उस वक्त जरूरत बन गई। इस बारे में नेपाली ने 'हिमालय ने पुकारा' शीर्षक कविता में कहा है –

---

[53] वही, पृष्ठ 28

"अम्बर के तले हिन्द की दीवार हिमालय

सदियों से रहा शान्ति की मीनार हिमालय

अब मांग रहा हिन्द से तलवार हिमालय।"[54]

बेवजह बल प्रयोग करना भारतीय संस्कृति का अंग कभी नहीं रहा। वह पहले शत्रु को यथासम्भव प्रेम की भाषा सिखाता है। नहीं मानने पर शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। रामचरितमानस में राम ने समुद्र को पहले विनय की भाषा में समझाया। जब वह नहीं माना तो उस पर बल प्रयोग किया है।

कवि नेपाली ने भी इस बारे में कहा है कि यदि कोई नासमझी में गलत व्यवहार करे तो उसे प्रेम से समझाओ लेकिन अपने अभिमान में चूर लुटेरे आततायी के साथ शक्ति का प्रयोग करना ही उचित है। हिंसक चरित्र वाला हिंसा की ही भाषा समझता है -

"भूला है पड़ोसी तो उसे प्यार से कह दो

लम्पट है लुटेरा है तो ललकार से कह दो

जो मुँह से कहा है वही तलवार से कह दो।"[55]

चीन भारत के साथ भ्रातृ धर्म की बात करता था। जो साम्यवाद का पैरोकार था उसी चीन ने तिब्बत को गुलाम बनाया। भारत में रक्त-पात किया। सन् 1962 में चीन ने भारत पर धोखे से आक्रमण किया और उस रक्तपात में तमाम निर्दोष भारतीय सैनिकों की जान गई। उसके इस कपट से आहत नेपाली ने कहा है यह देश बेशर्म लुटेरा है जो दया-धर्म नीति को नहीं मानता तो फिर हम इसके प्रति उदारता क्यों दिखाएँ। उन्होंने चीन के साथ बातचीत करके युद्ध की समस्या का समाधान होते नहीं देखा। उनका मानना है - चीन धोखेबाज देश है, वार्ता की आड़ में वह फिर भारत को छलेगा। इससे युद्ध के जरिए ही निपटा जा सकता है। नेपाली ने इस बात को जोर देकर स्थापित किया है कि बेवजह हिंसा भारतीय संस्कृति

---

[54] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 15

[55] वही, पृष्ठ 17

का चरित्र नहीं है। कभी हमने ही चीन को बुद्ध यानी अहिंसा और शान्ति का सन्देश दिया था जिस चीन में बुद्ध को मानने वाले तमाम अनुयायी हैं आज वही हम पर हमला कर रहा है, हमारी अस्मिता को खंडित कर रहा है। यह चीन लुटेरा है भारत के भौतिक संसाधनों पर कब्जा करना चाहता है। ये शान्ति का मुखौटा लगाए चीन लातों का पुजारी है बातों से नहीं मानेगा। शक्ति और शौर्य ही उसका उत्तर है -

"हमने ही कभी चीनियों को बुद्ध दिया था

अब युद्ध दो, तलवार का जलवा तो दिखा लो

इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो।"[56]

5.9. संस्कृति और राष्ट्रीयता

नेपाली ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत को याद करते हुए कहा है कि इस देश ने आक्रमणकारियों का मुँहतोड़ जवाब दिया है। जब भी इसकी अस्मिता पर हमला हुआ तो जनता ने संगठित होकर उसका प्रतिरोध किया। शान्ति और न्याय की पक्षधर यह संस्कृति शत्रु को उत्तर देना जानती है। इसलिए उन्होंने जनता का आह्वान करते हुए कहा कि इस दुष्ट चीन को जवाब दो। उसे इस पवित्र हिमालय से खदेड़ो। अपने पराक्रम को एक बार फिर याद करते—

"नादिर को निकाला जी 'सेल्युकस' को निकाला

अंग्रेज बहादुर का भी निकाला जी दिवाला

सदियों से लुटेरों की कबर खोदनेवालों

इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो।"[57]

---

[56] वही, पृष्ठ 24

[57] वही, पृष्ठ 26

अपने अतीत को याद करते हुए नेपाली ने भारतीय जनता को झकझोरते हुए कहा है कि एक समय राम ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए लंका पर आक्रमण किया था और आज हम (1962 में चीन युद्ध के समय) इतने असहाय हो गए कि शत्रु हमारी सीमा में घुस आया और निर्दोष सैनिकों, नागरिकों का संहार किया। उन्होंने जनता का आह्वान करते हुए कहा —

> *"लंका में राम पहुँचे, तू घर में मार खाये*
>
> *पुरखों की याद है तो, उनके अवतारो जागो*
>
> *हाथों में गीता लेकर, पापी को मारो जागो।"*[58]

कलिंग के युद्ध में अशोक ने जो तलवार फेंकी थी अर्थात् युद्ध का त्याग कर अहिंसा को अपना लिया था। आज देश रक्षा के लिए वह तलवार धारण करने का फिर से समय आ गया है। इस कपटी चीन को तलवार के बल से ही काबू किया जा सकता है -

> *"रण में अशोक ने जो, फेंकी तलवार थी रे*
>
> *सदियों के पार से, वह तुझको पुकारती रे*
>
> *बढ़ के बलैयाँ ले ले, उसको उठा ले बेटे।"*[59]

चीन युद्ध के समय नेपाली ने भारतीयों को गीता स्मरण कराया है। भारतीय संस्कृति में भगवद्-गीता बेहद सम्मान की पात्र रही है। यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्य को उसका दायित्वबोध याद दिलाती है। कर्म के पथ पर चलने को कहती है। मोह, लोभ से ऊपर उठकर अपने कर्म के पालन की बात करती है। महाभारत युद्ध के समय जब अर्जुन रणभूमि में अपने ही परिजनों को सामने देखकर युद्ध से पीछे हटने लगे तो भगवान कृष्ण ने उन्हें उनके अन्तर्द्वन्द्व से उबारा और जीवन का रहस्य समझाया। बिना फल की चिंता किये अनवरत कर्म-पथ पर

---

[58] वही, पृष्ठ 29

[59] वही, पृष्ठ 29

चलना जीवन का उद्देश्य बताया। नेपाली ने भारतीय जनता को, जो उस समय (1962 में) जड़ता, मोह, अहिंसा के प्रभाव से शिथिल हो चुकी थी यह सीख दिया कि अपनी संस्कृति से कर्तव्य का पाठ पढ़ो। यह समय गीता को स्मरण करने का है। रणभूमि में उतरने का है। आओ हम सब डटकर इस लुटेरे चीन का मुकाबला करें –

"पढ़ता है गीता पर, मरने से डरता है

दुश्मन घर में घुसके, धन-धरती हरता है।"[60]

नेपाली का सन्देश साफ है कि अपने क्षणिक स्वार्थों और प्राणभय से हम देश की अस्मिता दाँव पर नहीं लगा सकते। हमने गीता पढ़ा है जो मृत्यु पर विजय करना सिखाती है तो आज फिर प्राणों का मोह कैसा? देश के लिए उत्सर्ग होना ही भ्रष्टाचार, उसके खोखले वादों और बेपरवाही की भी कटु आलोचना करता है। उनके अनुसार हमारे नेताओं की बड़ी-बड़ी बातें, कूपमंडुकता और आलस्य के कारण ही चीन को भारत पर आक्रमण करने का दुःसाहस हुआ। अभी भी वक्त है अगर उसके छल पर तुम्हारा हृदय नहीं विचलित होता तो सम्भलो। देखो हिमालय की बाँह फड़क रही है, छाती भी धड़की है। हिमालय ने पुकारा है। उसकी पुकार को सुनो।

"अब छोड़ो कायरता, लो केसरिया बाना

कायर का दुनिया में, क्या आना क्या जाना।"[61]

जो अपनी कायरता लिए ही मर गए उनको कोई नहीं याद करता। ऐसा जीना भी क्या जीना। देश के सम्मान के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वालों का ही जीवन सार्थक है। इतिहास के पन्नों में वह स्वर्ण अक्षरों में दर्ज हो जाते हैं—

---

[60] वही, पृष्ठ 33

[61] वही, पृष्ठ 34

"आजादी है तो फिर, स्वर्ग यही धरती है

जो रण से डरती है, जाति वही मरती है।"[62]

अपनी आजादी के लिए संघर्ष करने वाली जातियाँ ही समय के प्रवाह में टिक पाती हैं बाकी तो धूल कंकड़ की तरह इतिहास में कहीं विलीन हो जाती हैं। इसलिए आत्मसम्मान, स्वतन्त्रता के लिए तलवार उठाना जरूरी हो जाता है।

नेपाली ने अपनी कविता में स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति का बड़ा सूक्ष्म मूल्यांकन किया है। स्वतन्त्रता एक बार हासिल हो जाने पर, उसके अस्तित्व को लगातार कायम रखने के लिए हमेशा सतर्क रहना पड़ता है। जहाँ हम स्वतन्त्रता के मद में चूर हुए वह हाथ से निकली। भारत की आजादी के समय भी यही हुआ। नेपाली ने तत्कालीन सरकार की आलोचना करते हुए लिखा है कि आजादी के बाद सरकार योजनाएँ बनाने में लग गई। देश की भौतिक समृद्धि की खूब बातें हुईं। कल-कारखाने, नहरें, सड़कें। और इसी के साथ वह आजादी की छाँव में दुनिया को शान्ति सद्भाव का सन्देश भी भेज रही थी। पर पड़ोसी देशों ने उसकी शिथिलता का लाभ उठाकर हमले करने शुरू किए। हमारे नेता अपनी कुर्सी बचाने की लड़ाई लड़ रहे थे। सीमा की रक्षा के लिए अहो-रात्रि जो सतर्कता चाहिए थी वह हवाई बातों और योजनाओं में खो गई और ऊपर से हमारी शान्ति और अहिंसा की खोखली नीति। पंचतन्त्र में भी एक कथा है खरगोश लक्ष्य करीब देखकर सो गया। तो भारतीय शासन भी आजादी पाते ही सो गया। देश रक्षा के प्रयत्न से बेपरवाह हो गया। उसके हवाई किले बनाने की नीति भी भारतेन्दु जी अपने नाटक 'भारत-दुर्दशा' में आलोचना कर चुके हैं जहाँ एक पात्र अपने बड़बोलेपन में कहता है कि 'वह पिसान लेकर स्वेज नहर पाट देंगे।' तो इस तरह नेपाली का मानना है कि देश रक्षा दृढ़संकल्पों के बूते चलती है। खोखले प्रवचनों के सहारे नहीं। 'शासन चलता तलवार से' कविता में उन्होंने कहा –

---

[62] वही, पृष्ठ 34

"फिर कहीं गुलामी आई तो, क्या कर लेंगे हम निर्भय भी

स्वातंत्र्य सूर्य के साथ अस्त हो जाएगा सर्वोदय भी

इसलिए मोल आजादी का नित सावधान रहने में है।"[63]

भारत में अनेक उपासना पद्धतियों के लोग रहते हैं। इस देश ने सभी धर्मों के मानने वालों ने अपने तरीके से जीवन-यापन की सुविधा प्राप्त की है। सत्य एक है उसकी खोज के रास्ते अनेक, यह घोषणा करने वाले देश ने साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम की हैं। जब भी धर्मों के बीच वैमनष्य बढ़ा तो उसी के नीचे से निकले तमाम समाज सुधारकों ने सुलह की राह भी दिखाई है। चाहे मध्यकाल में भक्ति के आचार्य या कवि हों अथवा नवजागरण काल में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज जैसी संस्थाएँ। इन सभी के सम्मिलित प्रयास से भारतीय संस्कृति में तमाम दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बावजूद विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों का परस्पर सौहार्द बना रहा। धार्मिक एकता राष्ट्र के स्थायित्व और सुरक्षा के लिए भी बेहद जरूरी है। आन्तरिक एकता के मजबूत होते बाहरी हमलावर कभी देश पर आक्रमण करने का दुःसाहस नहीं करेगा। भारतीय जनता से आपसी भेद भुलाकर एकजुट होने का आग्रह करते हुए नेपाली ने कहा है —

"हिन्दू के अगर साथ मुसलमान न होगा

फिर साथ मुसलमान के क्रिस्तान न होगा

संसार में आजाद हिन्दुस्तान न होगा

हर धर्म के इन्सान को सीने से लगा लो।"[64]

अनेकता में एकता ही तो पूरी दुनिया में भारत को सबसे अलग बनाती है। समरसता की यह भावना संस्कृति की अमूल्य निधि है। तमाम विभेदों के रहते भी लोग एक दूसरे के त्यौहार

---

[63] वही, पृष्ठ 61

[64] वही, पृष्ठ 25

में शरीक होते हैं। भाषाओं की सरहदें टूटती हैं, खान-पान, पहनावा, मनोरंजन, कला, संगीत इन सबकी इतनी किस्में, इतनी शैलियाँ हैं कि आदमी की पूरी उम्र बीत जाएगी पर इनसे ऊबेगा नहीं। यह विविधता उसे नई-नई कल्पनाओं, रचनात्मकता के लिए भी प्रेरित करती है। भारत जैसे विशाल देश की सांस्कृतिक समृद्धि का एक बड़ा कारण लोगों का खुशी-खुशी अपनी विविधता को बचाए रखने की अभिलाषा भी है –

"हैं सिक्ख यहीं पारसी यहीं
जो हैं मिल्लत की शान है
हैं रंग-रंगीले लोग
तिरंगा सबका एक निशान है।"[65]

नेपाली भारत की सांस्कृतिक विविधता पर अभिभूत होते हैं, तो उसकी एकता को बचाए रखने के लिए दृढ़ संकल्पित भी हैं। हमारी साझी विरासत के कारण ही कोई मुल्क हमारा वजूद नहीं मिटा सका। इसलिए नेपाली की कामना है –

"जब जन्म लिया भारत में तो, फिर भारतवासी एक रहे हैं
संग-संग जीना-मरना है तो, फिर कावा-काशी एक रहें।"[66]

नेपाली ने अपनी कविताओं में धार्मिक एकता के साथ सामाजिक एकता की भी बात की हैं। उन्होंने चाहा है कि भारत की उन्नति के लिए सामाजिक नींव भी मजबूत हो, वर्ग-भेद खत्म हो। बराबरी, भाईचारे का बोलबाला हो। आर्थिक साधनों पर किसी एक का आधिपत्य ना रहे। राजा-रंक एक समान परस्पर चाव से देश निर्माण में अपना सहयोग करें। उन्होंने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की भी बात की है, जो किसी भी लोकतान्त्रिक देश के लिए अनिवार्य है –

---

[65] वही, पृष्ठ 35

[66] वही, पृष्ठ 103

"अब एक जगह एकत्र नहीं, धन दौलत हो चाहे सत्ता

हैं साझीदारी बहारों के, अब कली-कली, पत्ता-पत्ता

जो दिए जलेंगे महलों में, वे दिये जलेंगे कुटियों में।"[67]

हमारे जीवन का एक ही लक्ष्य हो देश की सम्प्रभुता। नेपाली ने इस बात पर बल दिया है कि अपने-अपने धर्मों, मान्यताओं का पालन करते हुए भी राष्ट्र रक्षा के लिए एकजुट रहे। धर्म अनेक हैं, पन्थ अनेक हैं पर हमारा लक्ष्य एक है, वह है स्वराज। स्वतन्त्र, अविचल भारत –

"है देश एक, लक्ष्य एक, कर्म एक है

चालीस कोटि हैं शरीर, मर्म एक है

पूजा करो, पढ़ो नमाज, धर्म एक है।"[68]

भारतीय संस्कृति के बिना वजह किसी अन्य को अपना गुलाम बनाना अथवा उस पर आक्रमण करने की सीख नहीं दी है। वह 'वसुधैव कुटुम्बकम' का आदर्श लेकर चलता है। शरणागत की रक्षा करना अपना धर्म मानता है। अगर उसके लिए अपनी मातृभूमि पूज्य है तो दूसरे की मातृभूमि भी उसके लिए वन्दनीय है। देशों के बीच परस्पर घृणा, वैमनस्य फैलाना उसका स्वभाव नहीं। नेपाली ने अपनी कविता में पाकिस्तान के लिए कहा कि हम तुमसे बैर भाव नहीं चाहते –

"ओ भाई पाकिस्तान के

मत बैर करो यों जान के

---

[67] वही, पृष्ठ 32

[68] वही, पृष्ठ 41

अब रोज पड़ोसी हो तुम तो

जन्मों तक हिन्दुस्तान के।”[69]

पाकिस्तान ने भारत पर दो बार आक्रमण किया। मुँह की खाई। फिर भी नेपाली उसका बुरा नहीं चाहते। क्योंकि वह पड़ोसी है और पड़ोसी के साथ शान्ति का सम्बन्ध बनाना भारत को खूब आता है, ऐसा नेपाली का मानना है। पाकिस्तान की हार पर नसीहत देते हुए नेपाली ने लिखा है –

“पहले घर-घर बरबाद किये

अब घूम रहे फरियाद लिये

किस मुँह से रोते जाते हो

खुद झगड़े की बुनियाद लिए।”[70]

कवि नेपाली ने अपनी कविताओं में जिस स्वतन्त्रता की बात की है, उसके अर्थ पर भी विचार किया है। उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता का अर्थ समानता से है। कोई किसी के अधीन न रहे। नर-नारी, अमीर-गरीब, सवर्ण-अवर्ण, परस्पर सौहार्दपूर्वक रहते जीवन यापन करे और राष्ट्र की प्रगति में सहयोग दे। यही स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ है।

“स्वतन्त्रता मिली हमें कि देश में सुराज हो

मनुष्य एक आज हो कि वर्ग एक आज हो

समाज के लिए समाज का अखण्ड राज हो।”[71]

---

[69] वही, पृष्ठ 46

[70] वही, पृष्ठ 43

[71] वही, पृष्ठ 78

हमारी संस्कृति में त्याग और बलिदान को बड़ा महत्त्व दिया गया है। अपने सुख के लिए ही जीने वाले और दूसरे के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने वाले व्यक्तियों में बड़ा अन्तर है। समाज त्यागी व्यक्ति को पूजता है। इस संस्कृति ने त्याग, तपस्या, बलिदान के कई आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। मिथकीय चरित्रों - शिवजी का विषपान, दधीची का व्रजदान, महाराजा दिलीप का गौरक्षा हो या आधुनिक स्वतन्त्रता सेनानियों का बलिदान जिसमें भगतसिंह, आजाद, सुखदेव, राजगुरु आदि शहीदों की एक लम्बी परम्परा रही है। ये सब भारतीय संस्कृति में त्याग के अनुपम उदाहरण रहे हैं। नेपाली ने 'यहाँ शहीद समय का ज्ञानी' कविता में शहीदों का सबसे बड़ा धर्म बलिदान बताया है –

"किन्तु शहीदों का मरना, धर्म-भजन, ध्यान
सबसे बड़ा वही है जग में, जो होता बलिदान है।"[72]

नेपाली ने बलिदान को सबसे बड़ा जीवन मूल्य माना है। बलिदानी व्यक्ति जग के भले के लिए अपार कष्ट सहता है लेकिन उसका चरित्र देवता का हो जाता है। संसार उसे युगों तक याद रखता है –

"जो चाहे, शंकर बन जाऊँ, वह करता विषपान है
सबसे बड़ा वही है जग में, जो होता बलिदान है।"[73]

देश के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने की कामना रखने वाले नेपाली ने सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र धर्म को माना है। वह राष्ट्रधर्म के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार करने को तैयार हैं। क्योंकि अगर राष्ट्र रहा तो उसके देवी-देवता भी रहेंगे। धार्मिक स्थल और उनकी

---

[72] वही, पृष्ठ 110

[73] वही, पृष्ठ 110

निर्बाध इबादत बिना स्वतन्त्रता और स्वत्व के नहीं हो सकता। तो पहले राष्ट्र की रक्षा में अपनी आहुति दें आजाद हुए तो पूरी उम्र पड़ी है प्रार्थना के लिए –

"आजाद रहा देश तो फिर उम्र बड़ी है
मन्दिर भी है गिरजा भी है मस्जिद भी खड़ी है
संग्राम बिना जिन्दगी आँसू की लड़ी है।"[74]

देश के सांस्कृतिक विरासत बिना प्रतिरोध किए नहीं बचाए जा सकते। चाहे मानसरोवर हो या अमरनाथ उनकी रक्षा के लिए बुद्ध के मैदान में उतरना ही होगा –

"जागो कि बचाना है तुम्हें मानसरोवर
रख न ले कोई छीन के कैलाश मनोहर।"[75]

नेपाली ने अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति में समाहृत मिथकीय एवं ऐतिहासिक चरित्रों को याद किया है एवं उससे प्रेरणा ग्रहण किया है। शिवजी, राम, कृष्ण की कोल कल्याण की भावना, राणा, प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मीबाई, भगतसिंह की वीरता, गाँधी जी की करुणा उनके जीवन को एक दिशा देती है –

"यह घर प्रताप का है, शिवाजी का वतन है
गुलशन है भगत सिंह का, गाँधी का चमन है।"[76]

भारतीय दर्शन में चरैवेति-चरैवेति के सिद्धान्त को बहुत महत्त्व दिया गया है। जीवन के अस्तित्व के लिए चलते रहना जरूरी है जो रूका तो तालाब का गंदा पानी बनकर सड़

---

[74] वही, पृष्ठ 16

[75] वही, पृष्ठ 16

[76] वही, पृष्ठ 23

जाएगा। गंगा पवित्र है, ताजगी से भरी है क्योंकि लगातार बहती रही है। यौवन और उमंग के कवि नेपाली ने राष्ट्र के निर्माण और जीवन्ततर के लिए चलते रहने को आवश्यक माना है, जो चलेगा वही टिकेगा बाकी सब समय के प्रवाह में बिला जाएँगे –

“गंगा की धार जवानी, मत रोक डगर अज्ञानी

आकाश झुका, लेकिन न रूका, गंगा का बहता पानी।”[77]

5.10. संस्कृति और साहित्य

किसी संस्कृति के निर्धारक तत्त्वों में उसकी भाषा और साहित्य की भी प्रमुख भूमिका होती है। भाषा-साहित्य में राष्ट्र की आकांक्षाओं, अनुभूतियों का प्रतिबिम्बन होता है। नेपाली ने हिन्दी भाषा के महत्त्व पर लिखते हुए इस बात को लक्षित किया है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा ही नहीं वह अनेकता में एकता के आदर्श का भी जीवन्त उदाहरण है। अनेक बोलियाँ, उपभाषाओं को समेटे हिन्दी पूरे भारत की धड़कन है।

“इसमें मस्ती पंजाबी की,
गुजराती की कथा मधुर
रसधार देववाणी की है
मंजुल बंगला की व्यथा मधुर!”[78]

उन्होंने कवि-कर्म की बात भी की है। उनके लिए कविता निरे मनोरंजन की वस्तु नहीं जीवन को दिशा देने वाली एक जरूरी घटना है। कवि न्याय के पक्ष में खड़ा होता है। सत्य, सुन्दर, कल्याण का सृजन ही कवि कर्म है। उनकी कविता लोक जीवन की कविता है। वह

---

[77] वही, पृष्ठ 93

[78] वही, पृष्ठ 64

दुखी जनों, और निर्बलों के पक्ष में खड़ी है। उसमें स्वाधीनता की अंगड़ाई है। देश का स्वाभिमान है। नेपाली के अनुसार –

"हुआ देश खातिर जनम है हमारा

कि कवि हैं, तड़पना करम है हमारा

कि कमजोर पाकर मिटा दे न कोई

इसी से जगाना धरम है हमारा।"[79]

उन्होंने अपनी कलम को स्वाधीन कलम कहा है, जो सत्ता के आगे कभी घुटने नहीं टेकती बल्कि उसे झुकने पर मजबूर कर देती है। वह जन के कवि हैं दरबार के नहीं। भक्त कवियों ने भी दरबार को ठुकराया था और जनता के पक्ष में अपनी कविताएँ लिखी थीं। नेपाली ने भी सगर्व घोषणा किया कि मेरी कलम स्वाधीन कलम है, जिसमें एक अनाहत स्वाभिमान है और ईमानदारी की दीप्ति बोलती है। यह कलम इतिहास बदलने वाली है। उन्होंने अपनी मर्जी से लिखा है। हृदय की आवाज पर देश की आवाज पर। चाटुकार को ललकारते हुए कहा –

"तुझ-सा लहरों में बह लेता

तो मैं भी सत्ता गह लेता।"[80]

लेकिन उनकी कलम गुलामी की नहीं स्वतन्त्रता की है। इसीलिए उन्होंने कहा –

"तलवार हमारी है निर्भय-आजाद कलम

हम लड़ते आए जोर जुल्म से जनम-जनम

हम निर्बल का सन्यास बदलने वाले हैं

---

[79] वही, पृष्ठ 85

[80] वही, पृष्ठ 75

हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।"[81]

5.11. निष्कर्ष

नेपाली ने अपनी अधिकतर कविताएँ राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में लिखी हैं। राष्ट्र की सम्प्रभुता, स्वाभिमान, स्वत्व, अखण्डता को पाना ही उनकी काव्य साधना का लक्ष्य है। गुलामी की लम्बी कारा से आजाद हुए तरुण भारत के नवनिर्माण की हार्दिक अभिलाषा लिए वह प्रतिबद्ध है। परतन्त्रता से मुक्ति की आकांक्षा के कारण ही उनके यहाँ नवीनता, नवलता, नूतनता, सृजन, ध्वंस, वेग आदि के बिम्ब प्रमुखता से मिलते हैं। वह इस क्रम में भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं को भी लक्षित करते चलते हैं क्योंकि राष्ट्र और संस्कृति का अनिवार्य सम्बन्ध होता है। एक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के माध्यम से ही प्रतिबिम्बित होता है, अपनी पहचान बनाता है। हमारी एकता उसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नेपाली ने अपनी कविताओं में भारत राष्ट्र के इन सांस्कृतिक विशेषताओं को भरसक चिन्हित करने का प्रयास किया है। नेपाली के यहाँ देशानुराग के अलावा प्रकृति प्रेम का निदर्शन भी खूब हुआ है अतएव उन्होंने भारत की प्राकृतिक सुषमा का बड़े मन से चित्रण किया है। प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य पर रीझते हुए उन्होंने उसके प्रेम एवं उल्लास की कई कविताएँ रची हैं। इनमें भारत के भौगोलिक परिवेश की विविधता एवं भव्यता प्रमुखता से अंकित है। नेपाली ने प्रकृति के माध्यम से शस्य श्यामला भारत माता की छवि इन कविताओं में गढ़ी है।

भौगोलिक परिवेश के अतिरिक्त नेपाली ने भारत के सांस्कृतिक स्थलों, विरासत आदि का भी वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति के विविधता से भरे पर्व, त्यौहार, उत्सव का भी जिक्र किया है। इसके अलावा संस्कृति के निर्धारक तत्त्वों जिनमें चिन्तन, परम्परा जीवन मूल्य आदि आते हैं उन पर भी उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। भारतीय संस्कृति की कतिपय विशेषताएँ जो उसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से एक अलग दर्जा प्रदान करती है, उसे भी

---

[81] वही, पृष्ठ 77

नेपाली ने रेखांकित किया है। सहिष्णुता, न्यायप्रियता, आतिथ्य सत्कार, करुणा, सर्वधर्म समभाव, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व आदि के बारे में उन्होंने अपनी कविताओं में लिखा है। नेपाली के सांस्कृतिक यथार्थ की एक प्रमुख विशेषता है परम्परा का पुनर्मूल्यांकन। नेपाली ने परम्परा की बात की है, पर रूढ़ियों को छोड़ने की बात भी उठाया है, वह नवीनता के आग्रही हैं, प्रकृति भी नवीनता को अपनाती है। समय के प्रवाह में पुराने पत्तों को त्याग देती है नूतन धारण करती है। इस तरह सतत चलते रहना अपने को पुनर्नवा करते रहना उसका स्वभाव है। नेपाली के चिन्तन में भी यही बात मिलती है। अहिंसा, करुणा भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्य है। नेपाली की आस्था अहिंसा और गाँधी में थी। लेकिन समय के अनुरूप वह उसके पालन की बात करते हैं। चीन ने जब धोखे से भारत पर आक्रमण किया तो उन्होंने उसके लिए भारतीयों की अतिरिक्त सहिष्णुता और अहिंसा की नीति को ही जिम्मेदार माना है। उन्होंने चीन जैसे शत्रु से निपटने के लिए बल-प्रयोग और शक्ति के प्रदर्शन को ही उचित माना है। राष्ट्रहित के लिए तलवार उठाना उन्हें गलत नहीं लगता। उन्होंने बुद्ध की करुणा के साथ-साथ शिवाजी, प्रताप, लक्ष्मीबाई जैसे वीरों को भी अपना आदर्श माना है।

नेपाली के सांस्कृतिक यथार्थ में यह कतिपय बिन्दु हैं, जिनसे उनकी कविताओं में उनकी सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय मिलता है। नेपाली ने संस्कृति की बात तो की है पर वहाँ वह गहराई और व्यापकता नहीं मिलती जो उनके पूर्व के छायावाद युग अथवा इससे पहले के द्विवेदी युग एवं भारतेन्दु युग में था। इन युगों में भी राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में भारत की संस्कृति को चित्रित करते हुए कई कविताएँ लिखी गईं। छायावादी कविता का एक प्रमुख आधार ही उसका सांस्कृतिक आयाम था। इस युग के सभी कवियों ने संस्कृति की पृष्ठभूमि में अपनी कविताओं का सृजन किया। प्रसाद की कामायनी में शैव दर्शन का पूरा विमर्श ही है। उसमें भारतीय वाङ्मय और संस्कृति के बिम्ब गहराई से अंकित हैं। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों एवं उसमें आए गीतों में कई ऐतिहासिक चरित्र एवं भारतीय जीवन मूल्यों का विस्तृत चित्रण मिलता है। निराला की तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा जैसी कविताएँ

सांस्कृतिक चिन्तन की ही कविताएँ हैं। उनकी कविताओं में भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्य, कला, आध्यात्म, संगीत, परम्परा, स्मृति, मिथक आदि जैसी छवियाँ चित्रित हैं वह बहुत प्रभावित करती हैं। पन्त के यहाँ भी अरविन्द दर्शन के आलोक में भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्त करती कविताएँ हैं। तो महादेवी वर्मा में भी बौद्ध दर्शन से प्राप्त करुणा, प्रेम, अहिंसा के बिम्ब मिलते हैं। इन कवियों में संस्कृति का वर्णन उनके काव्य-नाटकों, कथानकों, प्रतीकों, मिथकों भाषा आदि के माध्यम से बहुत विस्तृत रूप में हुआ है। नेपाली के यहाँ इसका अभाव मिलता है। उन्होंने संस्कृति की बात तो की है पर उसे छूकर किनारे से निकल गए हैं। संस्कृति का बोध करते हुए न तो उन्होंने कोई चरित्र रचा है, जो देर तक प्रभावित करता, न ही घटनाक्रम के माध्यम से उन्होंने कोई परिदृश्य निर्मित किया है। वहाँ सिर्फ उद्गार है। हार्दिक अनुभूतियाँ नहीं हैं जहाँ कोई कवि अपने सांस्कृतिक साक्षात्कार के दौरान करता है। जैसा कि निराला आदि कवियों के यहाँ मिलता है। प्रकृति-प्रेम सम्बन्धी कविताओं में जहाँ उन्होंने मातृस्तवन अथवा भारत-माता की कल्पना की है, वहाँ इसकी कुछ झलक अवश्य मिलती है। अन्यत्र उन्होंने भारत के सांस्कृतिक विरासत को नाम गिनाते हुए मात्र समेट दिया है। जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में वह समन्वय, धार्मिक एकता, सामंजस्य की भावना, न्याय, सदाचार, जिन्दादिली, जिजीविषा आदि की चर्चा करते हैं परन्तु वह भी बहुत गहराई नहीं पा सकी है। इसके लिए जिस सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, भाषा पर पकड़, लोक जीवन से सम्पृक्ति आदि होनी चाहिए थी, उसका अभाव खटकता है।

फिर भी उन्होंने अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति में निहित उत्सव प्रियता, उमंग, नवीनता, सहिष्णुता आदि तत्त्वों के बारे में तमाम सुन्दर कविताएँ रची हैं और स्वाधीन कलम की आकांक्षा की जो कविताएँ हैं, वहाँ भी संस्कृति के प्रति गौरव का जैसा भाव प्रकट हुआ है, उनका स्वागत किया जाना चाहिए।

पाँचवा अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में आर्थिक यथार्थ

6.1. प्रस्तावना

6.2. भारत का आर्थिक परिवेश

6.3. औपनिवेशिक सत्ता की अर्थ-नीति

6.4. स्वतन्त्र भारत में साम्यवाद की कामना

6.5. भूमि समस्या और भूदान आन्दोलन

6.6. नेहरू काल की आर्थिक नीतियाँ

6.7. निष्कर्ष

छठा अध्याय

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में आर्थिक यथार्थ

6.1. प्रस्तावना

मानव-जीवन को व्यवस्थित करने में निश्चय ही अर्थ-व्यवस्था की विशेष भूमिका होती है। यदि अर्थ-व्यवस्था को मानव-जीवन का प्राण-तत्व कहा जाए, तो अनुचित नहीं होगा; क्योंकि समस्त संसार की व्यवस्था ही अर्थतन्त्र पर आधारित होती है। भारत की सामाजिक स्थिति भी इससे अधिक भिन्न नहीं है। लेकिन विदेशी शासन-व्यवस्था और उसकी दोहरी नीतियों के फलस्वरूप भारत की आर्थिक स्थिति निरन्तर चरमराती गई। विदेशी शासकों का ध्यान निरन्तर चरमराती अर्थ-व्यवस्था की ओर ही नहीं गया; अपितु कारखानों को बढ़ावा देकर सामान्य जन का शोषण करके देश को आर्थिक पराधीनता की खाई में धकेल कर अर्थोपार्जन-लिप्सा की ओर भी गया। इस नीति पर चलते हुए पूँजीवादी व्यवस्था निरन्तर उन्नति करती गई और अमीर एवं गरीब के बीच असमानता की खाई निरन्तर और गहरी होती गई। जिसके परिणामस्वरूप लोगों की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो सकी। इन आधारभूत आवश्यकताओं से वंचित रहते हुए शोषित एवं पीड़ित लोग भूख से तड़प-तड़प कर मरते रहे।

एक तरफ तो पूरा का पूरा देश विभिन्न प्राकृतिक प्रकोपों-अकाल, महामारी इत्यादि की चपेट में आया, तो दूसरी तरफ आर्थिक-विषमता, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, अन्धविश्वास तथा जातीयता इत्यादि समाज-विरोधी आन्दोलन पनपने लगे। ये आन्दोलन लोक-मानस का ध्यान अर्थ-विषमता से हटा कर अनेक प्रकार के षड्यन्त्रों में लगाए रखते हैं। इन

विपरीत परिस्थितियों में नेपाली जैसे अनेक जागरूक कवियों ने जन-मानस को आर्थिक-सामाजिक विषमता से पूर्णरूपेण परिचित करवाया। उनकी कविता में जन-जन के अन्तस में छिपी वेदना अभावों की पीड़ा के साथ अभिव्यक्त होने लगी। कवि गोपाल सिंह नेपाली ने आर्थिक-विषमताओं से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को पहचाना, उनके दुख-दर्द को अनुभव करके उसे अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी। काव्य में इन अभिव्यक्तियों को देखने से पहले उनके युग का आर्थिक परिवेश पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

6.2. भारत का आर्थिक परिवेश

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि पर आधारित थी। गाँव हमारे अर्थतन्त्र की धुरी थे, जिनके चारों ओर कृषि उद्योग व्यापार घूमते थे। अंग्रेजों के आने से पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल सत्य आत्मनिर्भर गाँव था, जिसमें किसान हल व बैल से खेती करते थे और दस्तकार साधारण औजार की मदद से उत्पादन करते थे । भूमि राजा के अधीन नहीं बल्कि गाँव पंचायत के अधीन होती थी। राजा भूमिकर प्राप्ति का अधिकारी माना जाता था और पंचायतें उपज का निश्चित भाग लगान के रूप में राज्य के खजाने में जमा कराती थी। डॉ. ताराचन्द्र लिखते हैं कि "भारतीय गाँव पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर इकाई के रूप में स्थित थे जहाँ कृषि जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन था। इसके अतिरिक्त ग्रामीणों के छोटे-छोटे उद्योग थे।"[1] ग्रामीण कारीगरों को गाँव से ही अपने उद्योग के लिए कच्चे माल जैसे लकड़ी, मिट्टी, चमड़े का प्रबन्ध करना पड़ता था। देश के प्रत्येक भाग में रूई की खेती होती थी। समाज का एक तबका इसमें कार्यरत था। बदले में उन्हें फसल होने पर कुछ अनाज मिलता था। भारत का विदेशी व्यापार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। विशेष रूप से वहाँ कारीगरों के हाथ से कते-बुने कपड़ों की देश भर में माँग थी। इस प्रकार कृषि उद्योग एवं व्यापार के समन्वय से भारत की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। इण्डस्ट्रियल कमीशन

---

[1] चन्द्र, तारा, *भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास*, खण्ड-1, पृष्ठ 115-116

में लिखा हुआ है कि सन् 1757 में जब क्लाइव ने मुर्शिदाबाद नगर में प्रवेश किया तो वह वहाँ के वैभव को देखकर चकित रह गया।[2]

सन् 1857 की क्रान्ति के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के समय धीरे-धीरे एक शासन व्यवस्था स्थापित हो रही थी। जिसकी नींव लार्ड कार्नवालिस ने डाली। क्रान्ति के बाद भारत में केन्द्र व प्रान्तों में एक शासन तन्त्र का विकास हुआ। केन्द्रीय भारतीय नौकरियों में भारतीय सिविल सर्विस (आई.सी.एस) भारतीय पुलिस सर्विस (आई.पी.एस.) और भारतीय मेडिकल सर्विस (आई.एम.एस.) भारतीय ऑडिट और एकाउन्ट्स सर्विस (आई.डी.ए.ए.एस.) भारतीय इंजीनियरिंग सर्विस (आई.ई.एस) आदि थे और प्रान्तीय नौकरियों में माल-विभाग और न्याय-विभाग की नौकरियों ने ऐसे शासनतन्त्र को सम्भाल लिया। मुगल साम्राज्य के पतन के कारण जो राज्य विच्छिन्न हो गए थे, उन्हें अंग्रेजों ने पुनर्स्थापित कर लिये थे। अंग्रेजी शासन के प्रभाव से भारतीय समाज में कुछ परिवर्तन हुए। पूँजीवाद का विकास हुआ, कृषि एवं कुटीर उद्योग का ह्रास हुआ।

यूरोप में हुई औद्योगिक क्रान्ति के कारण तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए अंग्रेजों को भारत में पूँजी लगाने की न केवल सुविधाएँ प्राप्त थीं, अपितु यहाँ श्रम का मूल्य भी कम था। श्रमिक कम मजदूरी पर उपलब्ध थे। अंग्रेजों ने रेल, सड़क परिवहन, डाक-तार, बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा बागानों में बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश किया। परिणामतः अंग्रेजों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित हो गया तथा भारतीय बचत का 75 प्रतिशत ब्रिटिश बैंकों में जमा हो गया। सन् 1899 में वाइसराय लार्ड कर्जन ने कहा था कि "भारत के राष्ट्रीय विकास के लिए विदेशी पूँजी एक अनिवार्य शर्त है।"[3] लेकिन शुरू में राष्ट्रवादियों ने इसका विरोध किया और कहा कि विदेशी पूँजी एक ऐसी

---

[2] *Industrial Commission Report*-1916-18. Page No. 249

[3] चन्द्र, बिपिन, *आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद*, पृष्ठ 85-86

बुराई है, जो निरन्तर फैलती जा रही है, उसे कम नहीं किया जा सकता है। यह देश का विकास तो करती ही नहीं, बल्कि उसका शोषण भी करती है और दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। दादाभाई नौरोजी ने कहा था कि "पूँजी भारतीय संसाधनों की लूट और शोषण का जरिया है।"[4] पूँजीवादी राष्ट्र सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तौर पर सामन्ती जन-जीवन से अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली होता है।

भारत की सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश संसद के हाथों में चली गई। साम्राज्यवादियों ने इस देश में कूटनीतिक शासनपटुता तथा आधुनिक सैनिक शस्त्रों की सम्पूर्ण रक्षा के साथ शासन किया और जिसने भारतीय राजनीति में प्रलय मचा दी। साम्राज्यवादी शासकों की कार्यप्रणाली, मनोवृत्ति व आकांक्षाएँ आदि किसी से छिपी नहीं थी। देश अकाल, बाढ़, भुखमरी से ग्रस्त था। किन्तु ब्रिटिश अधिकारी महंगे शान-शौकत भरे दरबारों का आयोजन करते रहे। अंग्रेजों ने पुरानी अर्थ-व्यवस्था का विघटन व नए आर्थिक रूपों को नई दिशा प्रदान की। पुराने भूमि सम्बन्धों और हस्तशिल्प उद्योगों के ह्रास और उनकी जगह नए भूमि सम्बन्धों और आधुनिक उद्योगों का उद्भव हुआ। ब्रिटिश शासन से आर्थिक असन्तोष उत्पन्न हुआ और भारत की गरीबी बढ़ी। ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था ने ब्रिटिश हितों को आगे बढ़ाया। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार का आधुनिक राजनैतिक चिन्तन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। आधुनिक विज्ञान, शिल्प तथा मध्यम वर्ग की वृद्धि ने राजनैतिक क्रान्ति के आधार और साधन प्रस्तुत किए। ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन के लाभ के लिए निर्दयता से भारत का शोषण किया। बाद में उसने हस्तक्षेप नीति का अवलम्बन किया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के हितों को नष्ट करना, भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में बिक्री के लिए भारी कर लगाना, भारत के कच्चे माल का निर्यात करना, सीमा शुल्क और परिवहन कर लगाना, भारत में रहने वाले अंग्रेजों को विशेष

---

[4] नौरोजी, दादाभाई, *पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया*, पृष्ठ 125

सुविधाएँ प्रदान करना, भारत में रेलवे का निर्माण करना, भारतीय कारीगरों को अपने रोजगार की गुप्त बातें बतलाने को बाध्य करना, प्रदर्शनियों का आयोजन आदि आरम्भ किया। उन्नीसवीं सदी में अफ्रीका और एशिया में साम्राज्यवाद का रूप क्रूर और हानिकारक हो गया था। साम्राज्यवाद के कारण ब्रिटेन धनी और शक्तिशाली हो गया। लड़ाई की तैयारियों के कारण ब्रिटेन के सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा, सफाई और जन-कल्याण के कार्यों में खर्च कम होकर युद्ध में धन लगने लगा। जिसके कारण प्रगति और धीमी हो गई। साम्राज्यवाद का उद्देश्य आर्थिक शोषण करना था। साम्राज्यवादी ब्रिटेन के अधीन भारत को अपना दास मानता था। साम्राज्यवाद ने भारत के हितों की अवहेलना की। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश नीति को अनुचित बताया।[5]

भारत में मुगलों के साम्राज्य स्थापना से हमारी प्राचीन कृषि, उद्योग एवं वाणिज्य व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आया था। आर्थिक स्तर पर इनका संतुलन परम्परागत ढंग से बना रहा, अंग्रेजी शासन के आते ही सदियों पुराना आर्थिक ढाँचा लड़खड़ाने लगा। उन्होंने अपने हित के लिए अपना माल महंगे दामों में बेचना व भारतीय माल कौड़ियों के दाम खरीदना प्रारम्भ किया। सरकार ने ब्रिटिश निर्माताओं के हितों की रक्षा के लिए भारतीय उद्योगों को चौपट करने के उद्देश्य से अपनी आर्थिक नीतियाँ तय की। विदेशी शासन ने विदेशी व्यापार को भारतीय उद्योगों और कृषि के शोषण का हथियार बना लिया। विदेशी व्यापार के नाम पर भारत से केवल कच्चे माल का निर्यात किया जाता था और उसके बदले में उत्पादित वस्तुओं का आयात किया जाने लगा। सबसे बड़ा धक्का भारत के कपड़ा उद्योग पर लगा। जवाहरलाल नेहरू के विचार थे कि 'लंकाशायर की मिलों को जीवित रखने के लिए भारत के कुटीर उद्योगों की बेरहम हत्या हुई है।'[6] सभी कारीगर बेकार होकर भूमिहीन श्रमिक बन गए। इस तरह भारत की लूट से आधुनिक इंग्लैण्ड का निर्माण हुआ। भारत जो मुख्यतः निर्यातक देश था। अब उसकी गणना आयात करने वाले देशों में होने लगी है।

---

[5] वही, पृष्ठ 125

[6] नेहरू, जवाहरलाल, *विश्व इतिहास की झलक*, पृष्ठ 11

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने बेरोजगारी बढ़ाई क्योंकि रोजगार कम थे। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था को पूर्णतया तहस-नहस कर अपने हितों को देखते हुए ऐसी अर्थव्यवस्था की स्थापना की जिससे अधिकांश भारतीय जीवन की मूल आवश्यकताओं से वंचित होते चले गए।[7] भारतीय जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि था। ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में भूमि के उपज का अधिकारी जमींदार होता था। ब्रिटिश सरकार ने मालगुजारी के रूप में निश्चित रकम लेनी प्रारम्भ कर दी। कृषकों के अतिशय शोषण से किसानों की आवश्यकतानुसार महाजन की उत्पत्ति हुई थी। महाजन कृषक का लगान चुकाने तथा कृषि सम्बन्धी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्याज पर ऋण देता था। वह अनुचित ढंग से ब्याज बढ़ाकर किसानों की भूमि हड़पता था।[8] ब्रिटिश भारत का कच्चा माल सस्ते दामों पर इंग्लैण्ड ले जाते और वहाँ का बना माल अनेक देशों का निर्यात करते थे। इससे इंग्लैण्ड उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने लगा। अंग्रेजों ने अपने देश की अर्थव्यवस्था उन्नत करने के लिए भारत की अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया। भारतीय नेतृत्वविहीन होने के कारण इस शोषण का विरोध नहीं कर पाते थे। यही कारण था कि भारत में गरीबी बढ़ती चली गई। सन् 1865-66 में उड़ीसा में अनेक अकाल पड़े। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में पड़े दुर्भिक्षों ने देश को बुरी तरह जकड़ लिया था। सन् 1881 में दादाभाई नौरोजी ने भारत की दर्दनाक स्थिति की भर्त्सना की और दुखी होकर कहा कि “इस समय जहाँ तक अंग्रेजों का सम्बन्ध है, उसमें आज प्राप्त वैभव की बात एक स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं।”[9]

ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ काल में भारतीय बुद्धिजीवियों का विश्वास था कि ब्रिटेन संसार का सर्वाधिक विकसित देश है और यह भारत का निर्माण करेगा। किन्तु शीघ्र ही यह भ्रम टूट गया जब उन्होंने देखा कि भारतीय उद्योग-धन्धों को चौपट कर यहाँ की अपार सम्पत्ति अंग्रेज ब्रिटेन ले जाने लगे। इससे भारतीय बेकार होते गए। दादाभाई नौरोजी ने कहा कि

---

[7] सुन्दरम्, रुद्रदत्त, *भारतीय अर्थव्यवस्था*, पृष्ठ 549

[8] दत्त, रजनी पाम, *आज का भारत*, पृष्ठ 12

[9] नौरोजी, दादाभाई, *पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया*, पृष्ठ 16

"भारतीय उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करने से ही भारत का आर्थिक विकास सम्भव है। तभी भारतीयों की स्थिति में सुधार आ सकता है।"[10] सन् 1880 में भारत की स्थिति बहुत खराब थी। एक तिहाई काश्तगार ऋण ग्रस्त थे। किसानों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता के कारण रैयतवारी इलाकों में बड़े पैमाने पर जमीन काश्तगारों के हाथों से निकलकर महाजनों के हाथ में जाने लगी और किसानों की बेदखली हुई। किसानों का पैसा चूसने के लिए ये साहूकार कानूनी तरीकों के अलावा जालसाजी जैसे मूल से अधिक शर्तनामा लिखवाना, गलत हिसाब रखना इत्यादि कार्य करने लगे। उन्होंने किसानों की गरीबी व अज्ञानता का फायदा उठाया। अज्ञानता व अशिक्षा के कारण किसानों को जालसाजी का पता नहीं लग पाता था और न ही वह कानूनी कार्यवाही कर पाता था।[11] ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी। जिसके लालची सौदागरों को राजकाज चलाने का बिलकुल अनुभव नहीं था। इसलिए भारत जब कम्पनी शासन के अधिकार में आया तो उसकी विस्तारवादी एवं अर्थ-दोहन की अमानवीय नीतियों के कारण सम्पूर्ण देश में असन्तोष व अव्यवस्था व्याप्त हो गई। सन् 1857 का राजनीतिक विद्रोह हुआ, लेकिन कुशल नेतृत्व के अभाव में असफल हो गया। रानी विक्टोरिया के समय में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की जड़े मजबूत होती चली गई। राजनीतिक अधिकारों से वंचित जनता में महंगी न्याय व्यवस्था, पुलिस के अबाध दमन चक्र और समाचार पत्रों पर सरकारी नियन्त्रण के विरुद्ध विरोध बढ़ने लगा। राजनैतिक बुद्धिमता तथा दूरदृष्टि का तकाजा यह था कि लोगों पर विश्वास किया जाए और कौंसिलों को जनमत की प्रतिनिधि संस्था बनाया जाए। उस समय होने वाली सारी राजनीतिक गतिविधियों में यह एक प्रमुख मांग थी और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह माँग मजबूत होती गई। ब्रिटिश शासन ने भारतीयों का सामाजिक व आर्थिक शोषण करके अपना लाभ किया और भारत को निर्धन बना दिया। जाति-व्यवस्था में अनेक दोष आ गए संयुक्त परिवार टूटने लगे, अशिक्षा में कोई सुधार नहीं

---

[10] वही, 16

[11] देसाई, ए. आर., *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, पृष्ठ 50-51

आया। साम्प्रदायिकता, आपसी द्वेष बढ़ा और राष्ट्रीय एकता में बाधा आई, जिससे आर्थिक हानि होने लगी जैसे- दुकानें लूटना, राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट करना, नारी का शोषण करना।

लार्ड लिटन का कार्यकाल भारतीयों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। सन् 1877 में जब दक्षिण भारत में भयंकर अकाल पड़ा था तब लार्ड लिटन ने दिल्ली दरबार का एक विशाल आयोजन किया। जिसमें महारानी विक्टोरिया को भारत साम्राज्ञी घोषित किया।[12] कलकत्ता के समाचार पत्र में टिप्पणी करते हुए सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने लिखा था कि "जब रोम जल रहा था तब नीरों बंसी बजा रहा था।"[13] इस संक्रमण काल में वायसराय ने अपार जन-धन का अपव्यय किया और भारत में व्यय का भार भूखी जनता पर पड़ा, जिससे और गरीबी बढ़ गई। अंग्रेजी सरकार की कर नीति तथा भूमि व्यवस्था के कारण भारतीय कृषकों में असन्तोष व्याप्त था अपने असन्तोष को भारतीय किसानों ने अनेक आन्दोलनों द्वारा प्रकट किया। किसान आन्दोलन के अन्तर्गत अनेक छोटे-बड़े आन्दोलन हुए। संथाल लोगों पर बहुत लगान बाँधा गया था। जिसके फलस्वरूप उन्हें साहूकारों से कर्ज लेना पड़ता था। कुछ लोगों ने उनकी सादगी, सद्भावना और अनभिज्ञता का लाभ उठाकर उनका शोषण किया। वे उनकी स्त्रियों की इज्जत से भी खेलते थे, जिससे क्षुब्ध होकर संथाल लोगों ने विद्रोह किया। संथाल लोगों ने जंगल को काटकर खेती करना प्रारम्भ किया, किन्तु इस जमीन पर भी जमींदारों का अधिकार हो गया। साहूकार, पुलिस तथा सरकारी कर्मचारियों की अत्याचारपूर्ण नीति के कारण संथाल लोगों में असन्तोष फैल गया। अतः उन्होंने सूदी व कान्हू के नेतृत्व में विद्रोह किया। सैनिक कार्यवाही के कारण यह विद्रोह शीघ्र दबा दिया गया।[14] नील विद्रोह भारतीय कृषकों द्वारा बंगाल में नील उत्पादकों (अंग्रेजों) के विरुद्ध किया गया। कूकी विद्रोह साहूकारों की भ्रष्ट नीति तथा अंग्रेजी सरकार की अत्याचारी नीति

---

[12] मजूमदार, ए. सी., *नेशनल इवल्यूशन*, पृष्ठ 31

[13] बैनर्जी, सुरेन्द्रनाथ, *ए नेशन इन मेकिंग*, पृष्ठ 50

[14] लाल, सुन्दर, *भारत में ब्रिटिश राज*, पृष्ठ 497

के विरुद्ध असम के कूकियों ने विद्रोह किया। कोल विद्रोह, भील विद्रोह, गोंड विद्रोह, खोंद विद्रोह, चुनार विद्रोह, खासी विद्रोह, सिपाही विद्रोह, नागा विद्रोह आदि आन्दोलन किसानों द्वारा किए गए। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही ब्रिटिश सत्ता और उसके नियमों के विरुद्ध भारतीयों ने विरोध किया। हड़ताल, शान्तिमय, अहिंसक प्रदर्शन और याचिकाओं आदि साधनों का प्रयोग किया।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई। इससे पूर्व भारत में अनेक संगठन थे। सन् 1835 में द्वारका नाथ टैगोर ने 'भूधारी समाज' (लैण्ड होल्डर सोसाइटी) की स्थापना की। सन् 1839 में द्वारकानाथ टैगोर ने जार्ज थामसन से सम्पर्क कर ब्रिटिश 'इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना लन्दन में की। द्वारकानाथ के निमन्त्रण पर थामसन सन् 1843 में भारत आए और उन्होंने 'बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना की। सन् 1851 में भूधारी समाज का विलय बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी के साथ कर ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन का निर्माण किया। सन् 1866 में लन्दन में दादाभाई नौरोजी ने 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना की जिसका उद्देश्य जनता को भारत की समस्याओं से अवगत कराना था।[15] सन् 1875 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की थी, जो मध्यमवर्गीय शिक्षित जनता की आवाज को उठाने वाली थी। इसका उद्देश्य देश में शक्तिशाली जनमत का निर्माण करना, हिन्दू और मुसलमानों के बीच मैत्रीपूर्ण भावना उत्पन्न करना तथा जन-आन्दोलनों से जनता को जोड़ना था।[16]

सन् 1885 से लेकर सन् 1905 तक का समय उदारवादी युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में कांग्रेस का नेतृत्व मिस्टर ए.ओ. ह्यूम, विलियम वेडरबर्न, व्योमेश चन्द्र चटर्जी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, दादाभाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रास बिहारी घोष और मदन मोहन मालवीय जैसे नेताओं के हाथ में था। अनेक नेताओं का अंग्रेजों की न्यायप्रियता में अटल विश्वास था। उदारवादी नेताओं को

---

[15] मसानी, आर. पी. दादाभाई नौरोजी, द ग्रांड ओल्डमेन ऑफ़ इण्डिया, पृष्ठ 10-12

[16] मजूमदार, आर. सी. गिल्मसर्स ऑफ़ बंगाल इन द नाइनटिन्थ सैन्चुरी, पृष्ठ 03

विश्वास था कि अंग्रेजों को जब भारतीयों की वास्तविक दुर्दशा का ज्ञान हो जाएगा तो वे अवश्य ही उनकी दशा को सुधारने का प्रयत्न करेंगे। इन नेताओं की कार्यविधि सरकार तक सुझाव, प्रस्ताव, दलील, प्रार्थना-पत्र, स्मरण-पत्र आदि भेजने अथवा नई रियायतों, सुधारों एवं विशेषाधिकारों के लिए नम्र शब्दों में माँग करने तक ही सीमित थी। शुरू में कांग्रेस को अंग्रेजों का आशीर्वाद प्राप्त था। सन् 1885 से 1915 तक कांग्रेस द्वारा पारित किए गए प्रस्तावों से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि यह संस्था बहुत लम्बे समय तक अपने उदारवादी स्वरूप से मुक्त नहीं हो पाई थी। कांग्रेस द्वारा इस अवधि में पास किए गए विविध आर्थिक प्रस्तावों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है -

- सेना पर खर्च कम किया जाए और ब्रिटिश सेना की संख्या कम की जाए।
- नमक पर टैक्स कम कर दिया जाए।
- पुराने उद्योगों को पुर्नजीवित किया जाए तथा कुछ नए उद्योग स्थापित किए जाए ताकि कृषि पर दबाव कम हो और बेरोजगारी दूर हो।
- भारतीय नागरिक सेवा की परीक्षाएँ भारत में भी हो और भारतीयों को सरकारी नौकरियाँ प्रदान की जाए।
- भूमि कर में कमी।
- जमींदारों के शोषणों से किसानों की रक्षा की जाए।
- कृषि बैंक खोले जाए जहाँ से किसानों को सस्ते सूद पर ऋण मिल सके।
- भारत की निर्धनता के कारणों का पता लगाकर उसको दूर किया जाए।
- इंग्लैण्ड से आने वाले कपड़े पर आयात कर लगाया जाए।
- तीसरे दर्जे के रेल यात्रियों को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान की जाए।
- देश में उद्योग सम्बन्धी और टैक्नीकल स्कूल खोले जाएँ।

उदारवादियों की माँगों में अनेक महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रस्ताव पास हुए और कानून बने लेकिन अंग्रेजी सरकार की “फूट डालो व राज्य करो” की नीति से सन् 1905 में बंगाल का विभाजन हो गया। इसके विरोध में बंगाल में विद्रोह भड़क उठा। इस आन्दोलन ने विदेशी बहिष्कार

नीति ग्रहण कर स्वदेशी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। उदारवादियों की माँगें पूरी न होने पर उग्रराष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद महात्मा गाँधी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया। इस समय बिहार के चम्पारण जिले में किसानों की आर्थिक हालात बहुत ख़राब हो गई थी। उनकी स्थिति भुखमरी वाली हो गई थी, गुजरात के खेड़ा जिले में अनावृष्टि के कारण किसान के हालात अच्छे नहीं थे। दूसरी तरफ प्रथम विश्वयुद्ध के खर्च का भार भी भारतीयों पर अधिक से अधिक कर लगाकर डाल दिया गया। किसान अपने दयनीय हालत तथा प्रकृति के मार से आहत होकर लगान माफी की माँग कर रहे थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कोई सहानुभूति नहीं दिखाई और अपना रुख उग्र रखा। कृषक वर्ग के असन्तोष के कारण उग्रतावादी विचार को कुचलने के लिए सरकार ने रौलेक्ट एक्ट पास किया।

गाँधीजी ने इस आर्थिक रूप से कमजोर किसानों को अपने साथ लेकर सत्याग्रह आन्दोलन का रास्ता अपनाया। उस समय गाँधीजी के इस रास्ते पर पूरी जनता चलने को तैयार खड़ी थी। गोपाल सिंह नेपाली भी गाँधीजी के इस रास्ते का समर्थन करते थे। उन्होंने सत्याग्रह प्रति आस्था रखते हुए लिखा-

“है अपूर्व यह युद्ध हमारा, हिंसा की न लड़ाई है
नंगी छाती की तोपों के ऊपर विकट चढ़ाई है
तलवारों की धार मोड़ने गर्दन आगे आई है
सर की मार से डण्डों की होती यहाँ सफाई है
मर मिटने में ही होता है मान यहाँ बलवानों का
ऐसी-वैसी यह न लड़ाई, महासमर मरदानों का
जिसमें अन्त नहीं आहुति का प्राणों के बलिदानों का”[17]

---

[17] नेपाली, गोपाल सिंह, उमंग, 83

सन् 1918 में उन्होंने अहमदाबाद के मिल मालिकों और मजदूरों के बीच समझौता कराने के लिए अनशन प्रारम्भ कर दिया, जिसमें उन्हें सफलता मिली। इन्हीं सब घटनाओं से गाँधीजी को असहयोग आन्दोलन की प्रेरणा मिली ।

सन् 1920 से 1930 तक महात्मा गाँधी सम्पूर्ण काल में कांग्रेस और देश के भी सर्वमान्य पथ प्रदर्शक रहे। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, ऐनी बेसेन्ट आदि नेताओं इनका साथ दिया। ये सब समाज में परिवर्तन करना चाहते थे। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार के अविश्वास के कारण महात्मा गाँधी को अंग्रेजों की दृष्टतापूर्ण रवैये का पूरी तरह से ज्ञान हो गया था तो उन्होंने सरकार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन चलाने का निश्चय किया।

- सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में बच्चे पढ़ाने की बजाए, अपनी शिक्षण संस्थाएँ खोलना और उनमें बच्चों को पढ़ाना।
- सरकारी न्यायालयों की बजाए अपनी अदालतें स्थापित करना जहाँ पंच उन झगड़ों का फैसला करें जिनको लोग सरकारी न्यायालयों में ले जाते हैं।
- घर-घर में चर्खा चलाना और सूत कातना।
- हिन्दू-मुस्लिम एकता को पक्का करना और छुआछूत को दूर करना।

जब असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास हो गया तो देशबन्धु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल, सरदार बल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि ने अपनी-अपनी वकालत छोड़कर इस आन्दोलन में भाग लिया। यह आन्दोलन हिंसात्मक होने के कारण स्थगित हो गया। महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा की अमूर्त मूर्ति थे उन्होंने सम्पूर्ण सत्याग्रह में सत्य, अहिंसा और संयम को बनाये रखने पर बहुत जोर दिया। उन्होंने प्रत्येक सत्याग्रही के लिए कुछ शर्तों का उल्लेख किया -

- वह चर्खा चलाना जानता हो।
- विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो।

- खद्दर पहनता हो।
- हिन्दु-मुस्लिम एकता के विश्वास रखता हो।
- अहिंसा में विश्वास रखता हो।
- अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता कलंक समझता हो।

गाँधीजी के आन्दोलन का एक मुख्य उद्देश्य अंग्रेजों की अर्थ-व्यवस्था को कमजोर करना था। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल देना था। अंग्रेजों के बाजार को कमजोर करना भी था। साथ ही अपनी वस्तुओं के प्रयोग से भारतीय किसान तथा काश्तकारों को रोजगार देना था।

गाँधीजी ने किसानों और मजदूरों के साथ आजादी की लड़ाई तेज की। किसानों और मजदूरों को भी गाँधीजी में एक आशा दिखाई दी और उन्होंने सत्याग्रह, असहयोग तथा सविनय अवज्ञा में शामिल होकर अंगेजों को भारत से बाहर निकाला। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ और भारतीय शासन-व्यवस्था के साथ भारतीय अर्थ-व्यवस्था का नियंत्रण भी नेहरू के हाथ में आ गया। नेहरू ने भारत के आर्थिक विकास के लिए सन् 1951 में पहली पंचवर्षीय योजना बनाई।

किन्तु पंचवर्षीय योजना का आशानुरूप प्रभाव नहीं दिखा। जिस समाज-राज के सपने नेहरू ने दिखाए, वे फलीभूत नहीं हुए।

6.3. औपनिवेशिक सत्ता की अर्थ-नीति

अट्ठारहवीं शताब्दी के औद्योगिक क्रान्ति के बाद अंग्रेजों की आर्थिक नीति और शोषण की प्रक्रिया से देश की आर्थिक स्थिति में शोचनीय परिवर्तन हुए। देश की प्राचीन अर्थव्यवस्था एकदम नष्ट हो गई और एक नई पूँजीवादी व्यवस्था का जाल तन गया, जो सर्वथा जनहित के प्रतिकूल था। परिणामत: धनधान्य से पूर्ण देश के आर्थिक विकास की स्थिति अत्यन्त हीन हो गई और उसकी प्राचीन समृद्धि का स्रोत तिरोहित हो गया।

अंग्रेज भारत में केवल व्यापारिक उद्देश्य से आए थे। उनका एक मात्र उद्देश्य अपनी व्यापारिक वृद्धि के साथ धन कमाना था। भारत व्यापार के लिए आदर्श क्षेत्र था। इसलिए

अंग्रेजों ने औद्योगिक उत्पादन बढ़ाकर एवं उत्पाद्य वस्तुओं के बदले में अपनी आवश्यकता की वस्तुओं एवं उत्पादन के कच्चे समान के लिए अपना व्यापार बढ़ाना प्रारम्भ किया। अत: आर्थिक स्वाथों की पूर्ति के लिए उनके द्वारा अनेक हथकण्डे अपनाये गए। यूरोपीय व्यापारी भारत की ओर आने लगे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन्हें पराजित कर इस क्षेत्र के व्यापार पर एकाधिकार जमा लिया तथा अंग्रेजों ने सामन्तवादी व्यवस्था के स्थान पर पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया । अंग्रेजों की स्वार्थ भावना पर लार्ड डलहौजी ने एक पत्र में लिखा था कि "नागपुर राज्य का शासन ठीक-ठिकाने के साथ हो तो, इंग्लैण्ड का एक बड़ा भारी अभाव दूर हो सकता है यहाँ रूई बहुत पैदा होती है। यदि यहाँ से खूब काफी तादाद में रूई विलायत भेजी जाया करे, तो इंग्लैंड के व्यापार की बड़ी उन्नति हो। जब मैं इंग्लैण्ड से चला था, तब मैनचेस्टर के व्यापारियों ने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री ने भी कई बार इस ओर मेरा ध्यान खींचा है। मैं स्वयं भी इस ओर से उदासीन नहीं हूँ। यहाँ से रूई चालान होने लगे तो इंग्लैण्ड को फिर किसी देश का मुँह न ताकना पड़े।"[18]

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत की प्राय: अधिकतर जनसंख्या गाँवों मे निवास करती थी । गाँव ही भारतीय अर्थ-व्यवस्था के मूल आधार थे। भारत कृषि प्रधान देश था। गाँव का आर्थिक ढाँचा प्राय: अपरिर्वनशील और स्थिर था, गाँव अपने आप में स्वत: पूर्ण आर्थिक इकाई थे। इस अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करते हुए सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा है कि 'गाँव छोटे-छोटे गणतन्त्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव में पूरी हो जाती थी। बाहरी दुनिया से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे ।'[19] गाँव की

---

[18] शुक्ल, भानुदेव, *भारतेन्दु-युगीन हिन्दी नाट्य-साहित्य*, पृष्ठ 29

[19] वही, पृष्ठ 440

जमीन पर सबका समान अधिकार था। किसान खेती करता था, लुहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, तेली आदि गाँव की अन्य आवश्यकताएँ पूरी करते थे। पेशा जाति के अनुसार निश्चित होता था। एक जाति दूसरी जाति का पेशा नहीं करती थी, क्योंकि इसके लिए वह स्वतन्त्र नहीं था। नगर और गाँव अपनी-अपनी इकाइयों में पूर्ण और एक-दूसरे से असम्बद्ध थे।

अंग्रेज व्यापारियों ने इस देश को अपना बाजार बनाने के लिए यहाँ से बारीक धन्धों को बहुत कुछ नष्ट कर दिया। जो कुछ बाकी बचे थे, वे नई सामाजिक व्यवस्था के कारण नष्ट हो गए । जमींदारी व्यवस्था के द्वारा जहाँ नित्य नए करो का बोझ पड़ा, वहीं पर कृषक वर्ग इन जमीदारों के हाथ का खिलौना बन गया। सिक्कों के प्रचलन से अनाज के स्थान पर पैसों का महत्त्व बढ़ा तथा खेतों में उन वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हुई, जिनसे अधिकाधिक व्यावसायिक लाभ प्राप्त हो। पैसे का महत्त्व इतना बढ़ गया कि जहाँ पारिवारिक उद्योग-धन्धे नष्ट हुए, नौकरीपेशा तथा मजदूर वर्ग बढ़ने लगे तथा बन्धुत्व एवं सहकारिता के स्थान पर समाज में प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ गई । पारिवारिक व ग्रामीण इकाईयाँ टूटने लगी। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े होने लगे थे। प्रति परिवार भूमि का औसत घटता जा रहा था। इधर उद्योग-धन्धों से बेकार व्यक्ति कृषि को व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए विवश हो गए, जिससे कृषि पर बोझ बढ़ने लगा। इस प्रकार भारत की सम्पूर्ण कृषि-प्रणाली को बिगाड़ दिया गया। नित्य नए-नए कर तथा लगान बढ़ने लगे। इधर प्राकृतिक-साधनों पर निर्भर रहने वाला किसान अति वृष्टि, अनावृष्टि, भूख, अकाल तथा भूकम्पों के प्रकोप से इतना बेहाल हो गया कि उसके पास खाने तक को अनाज नही रहता था। आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी।" कृषकों के पास खाने की कौन कहे, बोने के लिए बीज भी नहीं बच पाता था। एक ओर भारतीय जनता अकाल से मर रही थी, दूसरी ओर अन्न का निर्यात हो रहा था ।

अंग्रेजों द्वारा भारत का धन आर्थिक दुरव्यवस्था के बावजूद पानी की तरह बहाया जा रहा था। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम तक ब्रिटिश सरकार की नीति मुख्य रूप से नई भूमि और लगान-व्यवस्था के निर्धारण से सम्बन्धित थी । 1857 के बाद तत्कालीन शासन ने जमींदारों और भूस्वामियों को खुश करने वाली नीति को अपनाया। जमींदारों और भूस्वामियों ने मेहनतकशों का जमकर शोषण आरम्भ किया। तत्कालीन कृषि-व्यवस्था का चित्र यथार्थ रूप से अंकित है। 'लगान-उपजीवी भू-स्वामियों' के हाथों में जमीन काफी मात्रा में एकत्र हो जाने के कारण काश्तकारों पर लगान का बोझ गढ़ गया।

भूस्वामी कृषि में कोई सक्रिय उत्पादक-भूमिका अदा करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते थे, क्योंकि, बिना काम किए उन्हें काफी आमदनी लगान के रूप में प्राप्त हो सकती थी। जमीन के भूखे, भूमिहीन, ग्रामीण बेरोजगारों की फौज से जमींदार ऊँची दरों पर लगान वसूल करके ही सन्तुष्ट थे। यही नहीं भारत को औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था मे अपना धन और पूँजी , जमीन खरीदने में लगाना और उससे बिना किसी प्रकार के लगान वसूल करना, सबसे लाभदायक व्यवसाय बना।'[20] कवि नेपाली ने उन सामन्तों जमींदारों, जो बैठे-बैठे बिना श्रम के लगान वसूल कर अपनी ऐयासी करते थे, को किसानों और मजदूरों के श्रम का आभास कराने के लिए 'तत्त्व' कविता में लिखा—

"छील-छील थाली में रक्खा
फल खाया, तो क्या खाया

** **

हो आनन्द मगन सुख में
गाना गाया तो क्या गाया
घर बैठे-बैठे कुबेर का

---

[20] अष्टेकर, गणेश तुलसी राम, *भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं विष्णु शास्त्री चिपलूणकर*, पृष्ठ 34

धन पाया तो क्या पाया

छिदा-छिदा काँटों से फल

खाओ, मधु लाओ तो जानूँ

दुःख में गाओ, छान-छान

बालू धन पाओ तो जानूँ"[21]

अंग्रेजों की आर्थिक नीति के फलस्वरूप देश में अर्थ भेद बढ़ने लगा। एक ओर अंग्रेजों तथा उनके समर्थकों के पास अथाह धन व सम्पत्ति थी तो दूसरी ओर किसान व काश्तकार के पास भूखे मरने के सिवा कोई चारा नहीं था। कवि नेपाली ने इस विषमता को दर्शाते हुए लिखा—

"खा-खा के मरती है दुनिया,

कितने बे-खाए जीते हैं!

बोलो बाबा, अलख निरंजन,

जाड़ा है, बोरा सीते हैं!"[22]

अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई व्यापार-पद्धति में आयात-निर्यात नीति भी इस प्रकार बनाई गई जिससे भारत के उद्योग धन्धों को न पनपने दिया जाए तथा अंग्रेजों को अधिकाधिक लाभ हो। भारत का वस्त्र उद्योग बिल्कुल नष्ट कर दिया गया । यहाँ से कच्चा माल निर्यात सस्ते दामों पर करके विदेशों से निर्मित माल की खपत महंगे दामों पर की जाने लगी। विदेशी वस्तुओं की खपत के लिए अंग्रेज भारत में बाजार का निर्माण कर रहे थे। माल ढोने के लिए रेल चलाए, मोटर लाए, दिल्ली जैसे नगरों में बाजार सजाए। बाजार में भी गरीबों का शोषण किया। नेपाली ने इस बाजार का सत्य उजागर करते हुए लिखा—

"बनी देहली नई, किनारें

लगीं बत्तियाँ, रौनक छाई

---

[21] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 19

[22] नेपाली, गोपाल सिंह, *रागिनी*, पृष्ठ 34

रूपए के चौंसठ पैसे हैं,

ढली अठन्नी, आना, पाई।"

रेल चल गई मोटर दौड़ी,

शाम-सुबह नित चिट्ठी आई;

हाँके ठेले बिस्तर ढोए,

भूखे लेटे-बीन बजाई।"[23]

उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का चरित्र यही है कि वह अपने लाभ के लिए अपनी मानवता खोकर अपना विस्तार करता रहता है। नेपाली ने उपनिवेशवाद द्वारा अपने अर्थ लाभ के लिए किए जा रहे लूट-खसोट को रेखांकित करते हुए लिखा है –

"सुख है पर सन्तोष नहीं है

इस पापी को जग-जीवन भर

और कपट कर छीन-झपटकर

भरता रहता है अपना घर"[24]

किसान, मजदूर और काश्तकार की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी, भूख ने उन्हें इतना कमजोर कर दिया था कि वे विद्रोह भी नहीं कर पा रहे थे। नेपाली ने लिखा है—

"वह दरिद्र है, वह नंगा है

इसी वजह से फर्क आ रहा,

जग-जीवन का भार वहन कर

भूखा-प्यासा चला जा रहा"[25]

किसानों और मजदूरों की दरिद्रता इतनी थी कि उनके लिए तो सब कुछ सिर्फ दो मुट्ठी अन्न में था। नेपाली ने लिखा कि

---

23 वही, पृष्ठ 34

24 नेपाली, गोपाल सिंह, *नीलिमा*, पृष्ठ 66

25 वही, पृष्ठ 68

"भूखों के भगवान् खड़े हैं दो-दो मुट्ठी अन्नों में"[26]

नेपाली उन 'कमजोर पड़ी हड्डियों को कड़ा कर', भूख को भूलकर अंग्रेजों द्वारा बनाए गए इस विषम नीतियों के विरुद्ध खड़े होने को उकसाया। उनमें उमंग का संचार किया—

"पाँव बढ़ोतरी अंगारों पर, हँस-हँस गाओ गान प्रिय!
यों ही नहीं बदलने का यह जग का विषम विधान प्रिय"[27]

नेपाली ने शोषकों को आगाह कर किसानों-मजदूरों में क्रान्ति की चिनगारी भड़काकर दी—

"ऐ अनिष्ट के संगी-साथी, स्वर्ग की कल्पना न कर;
ऐ विनाश के नव स्फुलिंग, चन्दन टीकों से बना न कर।
अरे धृष्ट, कर जमा टोपियाँ, सी ले, रंग ले गेंद बना;
ऐ असभ्य, ऐ उच्छृंखल, शृंखला बजा मोद मना।
मरण-घड़ी, घड़ियाल बजा, उठ विदोही रच सुघड़ चिता;

** ** **

जग के क्षणिक बुलबुले फूटें, चिर-विप्लव का राग जगे;
अट्टहास कर विग्रह, सोने की लंका में आग लगे"[28]

गाँधी के आगमन के पश्चात् किसानों और मजदूरों को अपनी इस आर्थिक दशा से छुटकारा पाने के लिए एक आश जगी। और वे गाँधीजी के सत्याग्रह, असहयोग और सविनय अवज्ञा का हिस्सा बनाने लगे। गाँधी को पता था कि अंग्रेज अपना साम्राज्य का विस्तार भारत में इसलिए कर रहे थे कि यहाँ कच्चे माल के साथ एक बड़ा बाजार भी था। अंग्रेजों के साम्राज्य से मुक्ति के लिए जरूरी था कि उनके बाजार पर हमला किया जाए। इसके लिए गाँधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन चलाया और विदेशी वस्तुओं का बहिस्कार किया। गाँधी के मार्गदर्शन में देश ने आन्दोलन किया और सन् 1947 को अपने एक शोषक 'अंगेज' को भारत छोड़ने पर

---

[26] नेपाली, गोपाल सिंह, *उमंग*, पृष्ठ 87

[27] नेपाली, गोपाल सिंह, *रागिनी*, पृष्ठ 19

[28] वही, पृष्ठ 22

मजबूर किया। नेपाली ने मेहमान लुटेरों जिन्होंने 'भारत का मानचित्र किसानों की कृश काया पर अंकित कर' दिया था, के जाने पर ख़ुशी जताई—

"मेहमान लुटेरे थे जितने दिल्ली की गलियाँ छोड़ गए
आवाज लगाई हमने तो काँटों में कलियाँ छोड़ गए
वे दुश्मन गए गरीबों के, रखवारे गए गरीबी के
आबाद गरीबी थी जिनसे, वे गरीब-नवाज नहीं
है ताज हिमालय के सिर पर, अब और किसी का राज नहीं"[29]

6.4. स्वतन्त्र भारत में साम्यवाद की कामना

भारत जब स्वाधीन हुआ तो सबके अपने-अपने सपने थे। स्वाधीनता के बाद सबको यह विश्वास हो गया कि अब देश में कोई किसी का शोषण नहीं करेगा। नई स्व-सत्ता में अर्थ, भूमि आदि पर सबका समान अधिकार रहेगा। नई व्यवस्था साम्यवादी व्यवस्था होगी। अगर अमीर हैं तो सभी अमीर रहें और गरीब तो सभी गरीब। जो धन-सम्पदा है, उसका समान वितरण किया जाए। स्वाधीनता के पश्चात् देश की सत्ता साम्यवादी नीति पर चले गोपाल सिंह नेपाली की यही कामना थी। उन्होंने अपने इस मंशा को स्पष्ट किया—

"धनवान बनो तुम सबके सब, या धर लो भेष फकीरी का
पर भेद मिटा दो भारत से, कंगाली और अमीरी का"

आरम्भ में नेपाली जिस समाजवाद की कामना करते हैं वह गाँधी का समाजवाद है। गाँधी का समाजवाद मार्क्स के समाजवाद से अधिक भिन्न नहीं है। मार्क्सवादी समाजवाद के अनुसार हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा समाज से हर प्रकार की विषमताओं को मिटाया जा सकता है। "मार्क्सवाद समाज को दो-वर्गों में भेद कर देखता है। पूँजी के निजी उपभोग के कारण उत्पन्न विषमताओं से एक संघर्ष की स्थिति आती है। दोनों में संघर्ष होता है। जबकि गाँधी के समाजवाद में संघर्ष नहीं होता। वे अहिंसा और प्रेम के द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करते

---

[29] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 32

हैं। उनके अनुसार जो अहिंसात्मक होगा वह सामाजिक समता का समर्थन करेगा।"[30] इसलिए गाँधीवादी समाजवाद के समर्थक होने के कारण नेपाली पूँजीपतियों को मिटाने की बात नहीं करते, वे बस ये चाहते हैं कि पूँजीपति भी बढ़ें, किन्तु किसी का शोषण करके नहीं या किसी के विकास में बाधक बनकर नहीं। इसलिए नेपाली लिखते हैं—

"ऊँचे-ऊँचे महल और भी
ऊँचे हो आपत्ति नहीं कुछ,
किन्तु जरूरी है क्यों, उजड़े
इन महलों के लिए ग्राम ही?"

लेकिन आगे चलकर जब नेपाली को यह अहसास हुआ कि इस पूँजीवादी समाज में मानव का मूल्य रुपयों पैसों से होता है तो उन्होंने हर व्यक्ति के लिए बराबर का हक़ हो की कामना की। उन्होंने लिखा—

"ऊँचा हो न धनी निर्धन से, गाँव ने बिछड़े सिंहासन से
मानव का हो मोल न अब तो केवल रुपयों के खन-खन से"[31]

नेपाली ने उस समाजवाद की स्थापना के लिए क्रान्ति का आह्वान किया जिसमें अर्थ, जमीन सब बराबर-बराबर हो सबके पास। और मनुष्य की समानता बनी रहे।

"अशान्ति है कि क्रान्ति की नवीन आग चाहिए
स्वराज के विधान में नवीन राग चाहिए
कि अर्थ का जमीन का समान भाग चाहिए
समाज पर कभी रहे न व्यक्ति की प्रधानता
मनुष्य माँगता यही, यही मनुष्य मानता
कि हो समाज-राज में मनुष्य की समानता"[32]

---

[30] वर्मा. (प्रो.) अशोक कुमार, *प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन*, पृष्ठ 109

[31] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 55

6.5. भूमि समस्या और भूदान आन्दोलन

आजादी से पूर्व भारत में एक बड़ा वर्ग साम्राज्यवादी नीति के कारण भूमिहीन हो गया था। उन्हें भूमि दिलाने के लिए 'विनोबा भावे' ने सन् 1951 में स्वैच्छिक भूमि सुधार आन्दोलन आरम्भ किया, जिसे भूदान आन्दोलन कहते हैं । विनोबा भावे की कोशिश थी कि भूमि का पुनर्वितरण सिर्फ सरकारी क़ानूनों के जरिए नहीं हो, बल्कि एक आन्दोलन के माध्यम से इसकी सफल कोशिश की जाए। बीसवीं सदी के पचासवें दशक में भूदान आन्दोलन को सफल बनाने के लिए विनोबा भावे ने गाँधीवादी विचारों पर चलते हुए रचनात्मक कार्यों और ट्रस्टीशिप जैसे विचारों को प्रयोग में लाया। उन्होंने सर्वोदय समाज की स्थापना की। यह रचनात्मक कार्यकर्ताओं का अखिल भारतीय संघ था। इसका उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से देश में सामाजिक परिवर्तन लाना था।

विनोबा भावे ने गाँव-गाँव घूमकर भूमिहीन लोगों के लिए भूमि का दान करने की अपील करने लगे और उन्होंने इस दान को गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त से सम्बन्धित कार्य बताया। विनोबा भावे के अनुसार, यह भूमि सुधार कार्यक्रम हृदय परिवर्तन के तहत होना चाहिए न कि इस ज़मीन के बँटवारे से बड़े स्तर पर होने वाली कृषि के तार्किक कार्यक्रमों में अवरोध आएगा, लेकिन भावे ने घोषणा की कि वह हृदय के बँटवारे की तुलना में ज़मीन के बँटवारे को ज़्यादा पसंद करते हैं।

भूमिहीन की समस्या बिहार में बहुत बड़ी थी।[33] फलस्वरूप वहाँ भूदान आन्दोलन बहुत जोर पकड़ा। "लेकिन वहाँ भी अधिकतर यह दान कागज से कागज तक ही रह गया।" जमीन धारक अपने परिजनों के नाम पर जमीन बाँट-बाँट कर छोटे-छोटे भूखण्ड के स्वामी बन गए। इन स्थितियों से खिन्न होकर नेपाली ने 'भू-दान के याचक से' शीर्षक से एक कविता लिखी, जो '*धर्मयुग*' अगस्त, 1957 में छपी। जिसमें उन्होंने लिखा—

---

[32] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 78

[33] राय, (डॉ.) लल्लन, *हिन्दी की प्रगतिशील कविता*, पृष्ठ 144

"किसने तुझसे कहा था कि भिक्षा माँग करोड़ों के लिए
किसने कहा कि भीख है मलहम जग के फोड़ों के लिए
राष्ट्र पले कबतक चन्दों से
लाज बचे क्या पेबन्दों से
मिटे न दुखड़ा इन धन्धों से
नया बसन्त बुला ला फिर तू, सौरभ-सुमन सुमन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग, गगन से माँग"[34]

नेपाली को यह समझ में आ चुका था कि इस भूदान से कोई विशेष लाभ भूमिहीनों को नहीं मिलेगा। नन्दकिशोर नन्दन ने भू-दान के याचक से' कविता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "यह जन-संघर्ष को दिग्भ्रमित कर उसे कमजोर करने की कोशिश है, जिससे कभी कोई सकारात्मक परिवर्तन की आशा आकाश-कुसुम है।"[35] इस कविता में नेपाली स्पष्ट करते हैं कि साम्यवाद याचना से नहीं क्रान्ति से आती है।

"भीख माँगने से निर्धनता जाती तो क्या बात थी
लेने-देने से क्रान्ति चली जो आती तो क्या बात थी
जब-जब याचक भिक्षा लेगा
निर्धनता को जीवन देगा
धन की सत्ता अमर करेगा
साम्यवाद के लाना है तो, छोड़ धनी निर्धन से माँग
मुसाफिरों से क्या माँगे, धरती से माँग, गगन से माँग"[36]

नेपाली ने इन पंक्तियों में कह दिया कि साम्यवाद भिक्षा से नहीं क्रान्ति से आएगी।

6.6. नेहरू काल की आर्थिक नीतियाँ

---

[34] राय, (डॉ.) सतीश कुमार, *गोपाल सिंह नेपाली,* पृष्ठ 96 पर उद्धृत

[35] नन्दन नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि*, पृष्ठ 77 पर उद्धृत

[36] वही, पृष्ठ 77 पर उद्धृत

आजादी के बाद भारत की बागडोर प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के हाथों में आ गई। नेहरू साम्यवाद के समर्थक थे। देश के आर्थिक विकास के लिए उन्होंने केंद्रीय मन्त्रीमण्डल के एक प्रस्ताव द्वारा सन् 1950 में योजना आयोग की स्थापना की। योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजना (1951-1956) बनाई, जिसमें उन्होंने समाजवादी आर्थिक मॉडल को आगे बढ़ाया। इस परियोजना में कृषि क्षेत्र पर विशेष ज़ोर दिया गया; क्योंकि उस दौरान खाद्यान्न की कमी गम्भीर चिन्ता का विषय थी।[37] नेपाली ने इस योजना के लिए प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू को तारणहार के रूप में देखा।

“निर्धन का अरमान जगाएँ, बाँटें स्वप्न फकीरों को
दुखियारी का भाग्य न समझें, युग-युग घिसी लकीरों को
सींचे धरा, नहर खुदवाएँ
खोलें बाँध, नदी बन्धवाएँ
कुटी महल को पास बुलाएँ
कैसे क्रान्ति बुझे भारत में, जब अंगार जवाहरलाल
तीर मिले, मझधार बुझाए, तारनहार जवाहरलाल”[38]

पहली पंचवर्षीय योजना के कारण किसानों की आँखों में जो सपने दिए गए वे पूरे नहीं हुए। आम-जनता, को, गरीब-किसानों को इसका कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तो खिन्न होकर नेपाली ने पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि पूरी होने पर फरवरी 1956 को ‘योजना’ की आलोचना की और लिखा—

“आज हिन्द को लाल किले-सा लाल बनाया जा रहा
इसीलिए हर पाँच साल पर, साल मनाया जा रहा
शोर मचा दे चलिये-उठिये

---

[37] रेड्डी के. कृष्ण, *भारत का इतिहास*, पृष्ठ 263

[38] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 69

बनना है तो मिटिये-लूटिये"[39]

इसी वर्ष 'प्रो. पी. सी. महालनोबिस' के मॉडल पर आधारित द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961) लागू की गई, जिसका लक्ष्य 'तीव्र औद्योगिकीकरण' था।[40] इस पंचवर्षीय योजना का लाभ मुख्य रूप से शहरों को मिलना था। इस योजना में ग्राम की उपेक्षा की गई। योजना में ग्राम की उपेक्षा से निराश होकर नेपाली ने कटाक्ष किया—

"नगरों के मस्त गली-कूचे
सबके छज्जे ऊँचे-ऊँचे
फिर कौन बिना खिड़की आँगन
के, मिट्टी के घर को पूछे"

इस दोनों योजनाओं के काल में भारत को दो युद्धों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण जिस गति से विकास होना था, वह हो न सका। योजना का लाभ न तो ग्राम को मिल सका और न नगर को। नेपाली ने इस असफलता पर क्षोभ प्रकट करते हुए लिखा—

"घनश्याम कहाँ जाकर बरसे, हर घाट गगरिया प्यासी है
उस ओर ग्राम इस ओर नगर चहुँ ओर नजरिया प्यासी है"[41]

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा उनकी केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल के सदस्य के द्वारा सबके विकास की बात की जा रही थी। वह झूठी साबित हो रही थी। इसलिए नेपाली ने उन सब को अपनी योजनाओं की समीक्षा कर वस्तुस्थिति जानने के लिए कहा कि क्यों सारे योजनाओं के बाद भी आज निर्धन, निर्धन ही है, क्यों उसका विकास नहीं हो पा रहा है—

"सूरज से घर-घर उजियाला
नभ में सबकी दीपक-माला

---

[39] वही, पृष्ठ 52

[40] रेड्डी के. कृष्ण, *भारत का इतिहास*, पृष्ठ 264

[41] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 104

पर क्यों निर्धन का निर्धन है

अन्न जगत को देने वाला"[42]

6.7. निष्कर्ष

समाज की आर्थिक स्थिति समस्त सामाजिक-विषमता का मूलभूत कारण है। अर्थ-व्यवस्था मानव जीवन की कार्य-प्रणाली को तो प्रभावित करती ही है, साथ ही लोक-जीवन भी उससे अछूता नहीं रहता और कवि जो कि एक सामाजिक एवं भावप्रवण प्राणी होता है वह भी इस दायरे में आता है। वह समाज की आर्थिक स्थितियों से प्रभावित होता है और उसकी अभिव्यक्ति अपनी रचना में करता है।

अंगेजी साम्राज्यवाद के द्वारा भारत में इतनी लूट मची की, यहाँ किसान, मजदूर और काश्तकार आदि निर्धन व विपन्न होते चले गए। विपन्नता लोक-जीवन में विभिन्न कठिनाइयाँ तथा अत्यन्त विकट स्थिति पैदा कर देती है। कवि गोपाल सिंह ने सम्पन्नता और विपन्नता के आधार पर अपना लक्ष्य निर्धारित किया और आर्थिक विषमता से उत्पन्न इन समस्याओं को सटीक वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया।

नेपाली ने समाज की सहज अभिव्यक्ति द्वारा उसकी परम्परागत मान्यताओं एवं आर्थिक विषमता का प्रसार करने वाले गढ़ों को तोड़कर पूँजीवाद को समाप्त करना चाहा है। इसके लिए नेपाली ने दीन-हीन, शोषितों, पीड़ितों किसानों व मजदूरों की दशा को करीब से देखा और उनके साथ खड़े होकर उनके के हृदय में शक्ति का संचार किया है। समाज में साम्यवाद की प्रतिष्ठा की पृष्ठभूमि तैयार की है।

नेपाली ने बार-बार इस तथ्य की ओर ध्यान खींचा और सोचने पर मजबूर किया कि जो वर्ग वस्तुओं का निर्माण करता है, वही उनसे दूर क्यों रहता है। *अन्न जगत को देने वाला क्यों निर्धन का निर्धन है।* नेपाली ने इस दूरी को समाप्त करने का अथक प्रयास किया ताकि

---

[42] वही, पृष्ठ 101

परिवर्तन द्वारा समाजवादी देश का नव-निर्माण हो सके। आर्थिक विषमता समाप्त हो सके, शोषण एवं उत्पीड़नकारी नीतियों का सफाया हो सके। उन्होंने शोषक व शोषित वर्ग की तत्कालीन स्थिति को अपना काव्य-विषय बनाया। और शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों की भर्त्सना की है।

नेपाली ने आजादी के बाद भारत में साम्यवाद की कामना की। किन्तु नेहरू की आर्थिक नीतियों तथा कुछ स्वार्थी लोगों के कारण साम्यवाद का सपना अधूरा रह गया और दीनहीन किसानों, मजदूरों की निर्धनता जस की तस बनी रही तो उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की आर्थिक नीतियों की भी आलोचना की। नेपाली की स्पष्ट धारणा थी कि *"लेकर दरिद्रता स्वतन्त्रता न चल सके/दीवार सामने खड़ी, दिया न जल सके/जो क्रान्ति से समाजवाद तक उछल सके/ इतिहास दीन देश का वही बदल सके।"*[43]

[43] नेपाली, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, पृष्ठ 41

उपसंहार

उपसंहार

किसी कविता को पढ़ना जितना सरल है, उतना ही कठिन है उसके भीतर प्रवेश करना।

किसी भी कविता का कोई अन्तिम अर्थ नहीं होता। कविता समय विशेष के साथ अपने अर्थ बदलती रहती है। एक पाठक, एक शोधार्थी या एक विद्वान किसी कविता में क्या पाता है, यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि वह कविता के पास किस उद्देश्य से जाता है। कई बार हम एक निश्चित दृष्टि के साथ कविता के पास जाते हैं तो कई बार कविता हमारी दृष्टि का निर्माण करती है। यही कारण है कि एक ही कविता में विभिन्न खोजियों एवं भावकों को अलग-अलग बातें दिखलाई पड़ती हैं।

कला का अपना जीता-जागता एवं किसी सीमा तक स्वायत्त संसार होता है। निर्मल वर्मा ने लिखा है कि "कला का सामना करते हुए हम एक दुनिया का सामना करते हैं- एक ऐसी दुनिया जो एक साथ ही यथार्थ और अयथार्थ दोनों है, हालाँकि यह हमारी रोजमर्रा की दुनिया से मिलती-जुलती हुई भी हू-ब-हू बिल्कुल वैसी नहीं होती। यह सपने की तरह होती है और सपने की दुनिया बावजूद इसके कि उसमें हमारी चेतन जिन्दगी के अंश होते हैं, जीती, जागती दुनिया से अलग होती है।"[1]

कला के अपने नियम, कायदे-कानून होते हैं, अपनी दुनिया होती है, किन्तु वह दुनिया जीवन-सापेक्ष होती है, उसे अपने अस्तित्व के लिए बाह्य जीवन का सहारा लेना पड़ता है। एक ओर यदि उसकी दुनिया अद्भुत, स्वप्निल, ऐन्द्रजालिक, अयथार्थ है तो दूसरी ओर वह जीवन के गहरे यथार्थ से है। नेपाली ने लिखा है; *"कवि का जीवन एक जगत है जग के भीतर जग के बाहर।"* अर्थात् कला या कविता की दुनिया आन्तरिक चेतन के साथ-साथ बाह्य चेतन से जुड़ी होती है। कविता समाज के यथार्थ से ही पनपती है। नेपाली ने कविता के इस सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए लिखा है कि *"विश्व-जीवन है तरु की डाल/कला है कली कला है फूल।"* एक पाठक (शोधार्थी) कविता की दुनिया से गुजरते हुए, उसे एक नए सिरे से

---

[1] वर्मा, निर्मल, कला का जोखिम, पृष्ठ 33

जीता है और कविता उसकी चेतना में एक बार फिर जी उठती है। कौन-सी कविता किस पाठक में, किस रूप में जी और जाग सकती है, यह कविता की युगीन परिस्थिति के साथ-साथ पाठक की अपनी स्थिति और युगीन परिस्थिति पर निर्भर करता है। जैसे; नेपाली की कुछ कविताएँ अपने युगीन परिस्थिति में भारत-पाकिस्तान (1947-48) तथा भारत-चीन युद्ध (1962) का सत्य हैं, तो आज के पाठक के सामने वर्तमान समय के भारत-पाकिस्तान तथा भारत-चीन के तनावपूर्ण सम्बन्ध हैं। कविता की दुनिया का यथार्थ हमें बाहरी दुनिया के यथार्थ से कहीं अधिक प्रभावित करने की शक्ति रखता है; क्योंकि उसका यथार्थ बार-बार नए सिरे से उठ खड़ा होता है। कविता की दुनिया के भावात्मक आन्दोलन, भाव-चित्र एवं चरित्र तथा कवि के स्वप्न आदि कालातीत अवस्था में निरूपित होते हैं।

नेपाली की कविता 'जल रहा है गाँव', 'दुखिया, 'देख रहे हैं महल तमाशा' आदि कविता में परतन्त्र देश के किसानों, मजदूरों आदि का दुःख उस खास काल में बँधा हुआ नहीं है। आज भी यह दुःख फिर से नए सिरे से जीवित हो जाता है और मानव उस दुःख से मुक्ति का प्रयास करने लगता है।

यह क्षमता ही कला के यथार्थ को बाह्य दुनिया के यथार्थ से अधिक स्थायी एवं प्रभावी बना देती है। कविता का संसार और उसका प्रभाव पुनर्नवा होता रहता है, किन्तु यह प्रभाव हर बार एक-सा नहीं होता। यह सम्भव है कि एक ही पाठक अथवा समीक्षक के लिए एक कविता का संसार आज जिस रूप में उद्घघाटित हुआ, कल उस रूप में उद्घाटित न हो, आज उससे जो प्रभाव उत्पन्न हुआ, कल न हो। कला अथवा कविता के संसार की अपनी विलक्षणता होते हुए भी उसका मूल्यांकन करते समय हम उसका सम्बन्ध आज के अपने जीवन से, परिवेश से अवश्य जोड़ते हैं, क्योंकि कविता की दुनिया कितनी ही स्वायत्त, स्वतन्त्र एवं विलक्षण क्यों न हो वह "दुनिया इसी दुनिया के अन्दर है, इस दुनिया से बाहर

या परे नहीं। कविता की दुनिया की सार्थकता इसी में है कि वह अपने जादू में ग्रस्त करने के बावजूद पाठक को इस दुनिया की ओर उन्मुख करती चलती है।"[2]

कविता को परिवेश से अलग काटकर देखने की चेष्टा की जा सकती है, किन्तु ऐसा करने पर उसकी शक्ति सीमित हो जाती है। कविता में कोई क्या पाता है, इसका वास्तविक मूल्य परिवेश में वापस आने पर ही मालूम होता है। कविता में मिला हुआ भाव-सत्य, अनुभव, विचार आदि यदि परिवेश से जूझने की हमारी शक्ति में वृद्धि नहीं करते तो उसकी सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है। जब हम किसी कवि की समाज-चेतना की बात करते हैं, तो वास्तव में कविता की इसी शक्ति की बात करते हैं। जो कविता अपनी विलक्षणता, स्वायत्तता आदि के बावजूद हमें हमारे परिवेश से जूझने की शक्ति देती है, उसका साक्षात्कार कराती है, परिवेश के सन्दर्भ में हमारे भावों को आन्दोलित करती है, विवेक-निष्कर्ष देती है और हमारी मानवीय संवेदनाओं को जगाती है, वह वास्तव में उसी कवि-व्यक्तित्व से जन्म लेती है, जिसको समकालीन परिवेश से अत्यन्त गहरी सम्पृक्ति है। परिवेश से गहरी सम्पृक्ति को ही दूसरे शब्दों में उसकी युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति कह सकते हैं, जो उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना के उद्भव का मूल एवं प्रधान कारण है। समाज के प्रति चेतन कवि कई स्तरों पर समाज से जुड़ा होता है। वह युगीन सामाजिक व्यवस्था की गहरी पहचान रखता है, सांस्कृतिक-मूल्य, युगीन राजनीति एवं तजन्य परिणतियों का साक्षात्कार करता है तथा अपनी पहचान एवं साक्षात्कार का कविता में सर्जनात्मक उपयोग करता है। ऐसा करने के लिए कवि को आत्मचेतस होने के साथ-साथ संवेदनशील होना होता है। एक संवेदनशील कवि का प्रधान लक्ष्य मानवीयता की रक्षा करना होता है।

'गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता में युगीन यथार्थ' विषय का अध्ययन करते हुए यह देखने की प्रयास क्या गया है कि कवि नेपाली की कविता में सामाजिक-व्यवस्था, सांस्कृतिक-

---

[2] सिंह, नामवर, कविता के नए प्रतिमान, पृष्ठ 228

मूल्य, युगीन राजनीति तथा देश की आर्थिक-स्थिति आदि की पहचान तथा अभिव्यक्ति का स्वरूप क्या है? व्यापक युगीन परिवेश के सन्दर्भ में उनकी कविता किस सीमा तक अपने दायित्व का निर्वाह कर पाई है?

गोपाल सिंह नेपाली के युगीन काव्य प्रवृतियों को देखने पर स्पष्ट होता है कि कवि ने सभी कालों का अतिक्रमण किया है। उनके चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य है, इसलिए उन्हें वे सभी कविताएँ अप्रिय लगीं, जिसके चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य नहीं था। परिणाम स्वरूप उन्हें हाला का स्वाद नहीं भाया, उमंग को नीरस विराग के फन्द में जकड़ने वाली छायावाद भी और प्रयोगवादी कविता में मनोरोग दिखाई पड़ा।

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ के विविध सन्दर्भों को देखने के उपरान्त यह नि:संशय कहा जा सकता है कि नेपाली की कविता में समाज-सम्पृक्ति सर्वाधिक गहरी है। मानव-स्वतन्त्रता एवं राष्ट्र-स्वतन्त्रता के लिए उनकी आत्मा कविता के माध्यम से संघर्ष करती है। नेपाली की सामाजिक चेतना का मूलाधार है- उनकी मानव स्वतन्त्रता एवं राष्ट्र-स्वतन्त्रता की कामना है। मानव स्वतन्त्रता की कामना उन्हें दलितों, असहाय किसानों एवं मजदूरों से जोड़े रखता है। वैसे भी जो कवि अपने को जन से सम्बद्ध नहीं करता वह प्राय: मानवीयता की स्थापना नहीं कर पाता। नेपाली की कविता में जन-सम्बद्धता सैद्धान्तिक अथवा साधारण कोटि की नहीं है, वह मानवीय ऊष्मा से भर कर 'उमंग' का रूप धारण कर लेती है और 'नवीन कल्पना' करने को उकसाती है।

नेपाली सामाजिक-वैषम्य को केवल जानते ही नहीं, उसे भुगत चुके हैं। इसलिए उन्होंने उसका सतही या ऊपरी चित्रण नहीं किया, बल्कि शोषित जन की आन्तरिक हालत को सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। कवि नेपाली की कविता का महत्त्व इस बात से भी बढ़ जाता है कि वह 'दलितों' का दुःख लेकर निष्क्रियता अथवा नियतिवादिता की शरण में नहीं जाती, मुक्ति हेतु क्रान्ति की चेतना से युक्त दिखती है। यही कारण है उनकी कविता में समाज को बदलने की छटपटाहट मौजूद है। वह 'नवीन और प्राचीन' का भेद करती है। वह

यह भी स्पष्ट करती है कि *‘जो जलता है वह नवीन है, जला बुझा प्राचीन’* है। वह प्राचीन का वह हिस्सा त्याग कर *‘नए रंग का नए ढंग का, एक नया संसार’* बसाने की कोशिश करती है।

नेपाली अपनी कविता में सदैव नवीनता के साथ चलने के पक्षधर रहे। इसलिए उनका आग्रह है कि नवीन युग में अपनी अतीत की ‘घिसी हुईं तमाम नीतियाँ व रीतियाँ, जो हैं दे रहीं चुनौतियाँ बन कुरीतियाँ’ को त्याग कर स्वयं के लिए और ‘राष्ट्र के सिंगार के लिए तुम कल्पना करो।’ क्योंकि जो अतीत में *‘नियम बनाए थे उसने ही / अपने हित में अति सुन्दर / अहित कर रहे अब वे ही खुद / उसकी गतिमति कुण्ठित कर।’* समाज की ये घिसी हुई नीतियाँ और रीतियाँ मानव में भेद पैदा करती हैं। इन्हीं के माध्यम से समाज का एक वर्ग शोषित होता रहता है। स्त्री का शोषण हो या दलित का, ये नियम ही हथियार के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। नेपाली की कविता उस व्यवस्था को दिखलाती है, जिसमें स्त्री ने *‘जन्म लिया तो जले पिता-माँ / यौवन खिला ननद भाभी / ब्याह रचाया तो जला मुहल्ला, पुत्र हुआ तो बन्ध्या भी’।* यह व्यवस्था स्त्री को भी स्त्री का शोषक बना देती है।

उपनिवेशवादी सत्ता तथा पूँजीवादी व्यवस्था केवल समाज में वैषम्य ही उत्पन्न नहीं करती, वह राजनीति को भ्रष्ट करती हुई मानव-मूल्यों को निगल जाती है तथा पूँजी, सत्ता, स्वतन्त्रता, सुविधा आदि को कुछ ही लोगों तक सीमित करती हुई सम्पूर्ण जन-समाज को अलगाव का शिकार बनाती है, उसे आत्मनिर्वासित करती है। यह व्यवस्था समाज को उस दिशा में ले जाती है, जहाँ *‘निर्धन का निर्धन है / अन्न जगत को देने वाला’।* इस व्यवस्था में जिस नरक की सृष्टि होती है, उसका गहरा साक्षात्कार नेपाली ने किया है। यह सत्य है कि जिस दीन व निर्धन को बेतिया और मालवा में देखा उसे मुम्बई जाकर भी भूला न सके। इसलिए उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था की इस माया जाल को तोड़ने का कठिन पथ चुन लिया और अपने आरम्भिक काव्य-संग्रह से अन्तिम काव्य-संग्रह तक इस पथ पर चलते रहे।

कवि की सामाजिक चेतना पर यथार्थ-दृष्टि एवं रोमानी भावबोध दोनों का गहरा प्रभाव पड़ता है। कई बार कवि रोमानी भावबोध का इतना शिकार होता है कि वह अनायास कवि व्यक्तित्व की सामाजिकता खो बैठता है और उसका सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ-दृष्टि से कट जाता है। कुछ आलोचक नेपाली में यथार्थ के स्थान पर रोमानी भाव अधिक देख पाते हैं फलस्वरूप नेपाली 'निर्विवाद रूप से प्रेम और प्रकृति के कवि हैं' की घोषणा करते हैं। नेपाली का काव्य लेखन छायावादी दौर में शुरू हुआ साथ ही उनका बचपन मसूरी की वादियों में बीता। इस कारण उनकी कविता प्रकृति के प्रति आकर्षण स्वभाविक है। किन्तु उनकी कविता में प्रकृति छायावादी रोमानियत के साथ 'जूही की कली' के रूप धारण नहीं करती, बल्कि की जगह 'जंगल', 'झाड़', 'पीपल के पत्ते' तथा 'बेर' आदि के रूप में आती है। नेपाली की कविता की सामाजिक चेतना की प्रखरता रोमानी भावबोध से जुड़े होने के बावजूद अपने युग के यथार्थ से विमुख नहीं होती। वह रोमानी भावों से युक्त यौवन को 'उमंग का वाहन' बना लेती है। और यौवन के इस उमंग को युगीन राजनीति के साथ जोड़कर मानव-मुक्ति के साथ राष्ट्र मुक्ति के लिए क्रान्ति करने को प्रेरित करने लगती है।

नेपाली की कविता में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना के केन्द्र में भी मानव-मुक्ति के साथ राष्ट्र मुक्ति है। उसके राजनीति यथार्थ के दो पहलू हैं—पहला औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के लिए चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन और दूसरा स्वाधीनता पश्चात् भारत में लोकतन्त्र की स्थापना और पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध का निर्वहन। इन दोनों पहलुओं में नेपाली की कविता का प्रधान लक्ष्य राष्ट्र की अस्मिता और उसकी स्वाधीनता की रक्षा है। नेपाली की दृष्टि में *"सिद्धान्त, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज / सब कुछ हैं तरु-डाली-पत्ते, आजादी है बुनियादी-बीज"*। इस कारण उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति हेतु गाँधी के सत्याग्रह, असहयोग और अहिंसा के साथ-साथ भगत सिंह और सुभाषचन्द्र बोस के उग्रवाद को अपना समर्थन दिया। पाकिस्तान व चीन के साथ युद्ध में अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अहिंसा का रास्ता छोड़ सीधे लड़ने की सलाह दिया और देश-भर में घूम-घूमकर 'वन-मैन आर्मी' बन आम जनता को देश की स्वाधीनता की रक्षा फनफना उठने के लिए प्रेरित किया।

नेपाली की कविता के कई पक्ष हैं। नेपाली ने एक सजग नागरिक की भाँति देश की स्वाधीनता की कामना अपनी कविता के माध्यम से किया। स्वाधीनता के पश्चात् वे राष्ट्रवादी बन जाते हैं और पड़ोसी देश के साथ युद्ध के समय पड़ोसी देशों को हद में रहने की सलाह देते हैं। चूँकि युद्ध लगातार नहीं चलता बीच-बीच में अवकाश भी हो जाता है। नेपाली इस अवकाश में देश की आन्तरिक व्यवस्था की आलोचना के साथ पण्डित जवाहरलाल नेहरू शासन-व्यवस्था की आलोचना करते हैं।

नेपाली का विश्वास प्रजातन्त्र में था। एक ऐसा प्रजातन्त्र जो साम्यवादी हो। जिसमें जनता को अधिकार, सम्पत्ति आदि में बराबर का हक हो। नेपाली ने भारत में ही नहीं नेपाल तथा पाकिस्तान में भी समाजवादी प्रजातन्त्र की कामना की।

नेपाली की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सरलता और सहजता है। उन्हें अपनी बात रखने के लिए किसी मिथक या इतिहास का सहारा नहीं लेना पड़ता, न उन्होंने कविता को दार्शनिक शब्दवाली आदि में उलझाकर दुरूह बना दिया। जो कुछ कहना है, उसे सीधे-सीधे कहने की कला उनकी कविता को सहज और बोधगम्य बनती है।

यह कहा जा सकता है कि नेपाली के युगीन यथार्थ-चित्रण में जो व्यापकता और गहराई है, वह छायावादोत्तर कविता की एक उपलब्धि है। भारतीय विषम यथार्थ की विकृत आकृति की सहज अभिव्यक्ति भरी उनकी कविता सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था तथा जन की अवस्था को उघाड़ कर रख देती है। युगीन समाज के विषम यथार्थ के जिस स्याह पहाड़ एवं युगानुयुग की बहती वेदना-नदी का साक्षात्कार नेपाली ने किया वह अपने आप में एक मिसाल है।

ग्रन्थ सूची

आधार-ग्रन्थ

1. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *उमंग*, दिल्ली, ऋषभचरण जैन, बाज़ार सीताराम, प्रथम संस्करण, 1934
2. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *पंछी*, लखनऊ, गंगा पुस्तक माला, प्रथम संस्करण, 1934
3. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *रागिनी*, पटना, युगान्तर प्रकाशन समिति, प्रथम संस्करण, 1935
4. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *पंचमी*, बेतिया, कविवासर, प्रथम संस्करण, 1942
5. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *नीलिमा*, मुजफ्फरपुर, वैशाली निकुंज, प्रथम संस्करण, 1944
6. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *नवीन*, पटना, पुस्तक भण्डार, प्रथम संस्करण, 1944
7. 'नेपाली', गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, दिल्ली, हिमालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1963
8. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), 'नेपाली', गोपाल सिंह, *उमंग*, नई दिल्ली, राजदीप प्रकाशन, 2011
9. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), 'नेपाली', गोपाल सिंह, *पंक्षी*, नई दिल्ली, पुस्तक भवन, 2011
10. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), 'नेपाली', गोपाल सिंह, *रागिनी*, नई दिल्ली, राजदीप प्रकाशन, 2011
11. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), 'नेपाली', गोपाल सिंह, *पंचमी*, नई दिल्ली, साहित्य संसद, 2011

12. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), ‘नेपाली’, गोपाल सिंह, *नीलिमा,* नई दिल्ली, पुस्तक भवन, 2011

13. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), ‘नेपाली’, गोपाल सिंह, *नवीन*, नई दिल्ली, साहित्य संसद, 2011

14. नन्दन, नन्दकिशोर (सं.), ‘नेपाली’, गोपाल सिंह, *हिमालय ने पुकारा*, नई दिल्ली, साहित्य संसद, 2011

सहायक ग्रन्थ

1. कुमार, अजित, कविता का जीवित संसार, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, 1972
2. अरगड़े, रंजना (सम्पा.) शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और गद्य रचनाएँ, नई दिल्ली, राधाकृष्ण, 2013
3. अरुण, (डॉ.) अवधेश्वर, सिंह, डॉ.रामप्रवेश, (सम्पा.), *स्वाधीन कलम नेपाली*, मुजफ्फरपुर, हंसराज प्रकाशन, 1982
4. अहमद, प्रो. एजाज, *नवसाम्राज्यवाद का सांस्कृतिक प्रतिरोध*, भोपाल, प्रगतिशील लेखक संघ, 2008
5. किशोर, (डॉ.) श्यामनन्दन, *पुंडरिक*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
6. किशोर, (डॉ.) आशा, *आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास*, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1971
7. कुमार, केशरी, *साहित्य के नए धरातल : शंकाएँ और दिशाएँ*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1980
8. कुमार सुवास, *गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2010
9. कौर, कुलदीप, *बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ*, नई दिल्ली, अनंग प्रकाशन, 2006
10. कॉडवेल, क्रिस्टोफर, भगवान सिंह (अनु.), *विभ्रम और यथार्थ,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1998
11. गाँधी, महात्मा, *सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका,* अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 1960
12. गुप्त, डी. सी., *इण्डियन कौंस्टीट्यूशन डेवलपमेंट एण्ड नेशनल मूवमेंट*, दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, 1970
13. ग्रोवर बी. एल., आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन *मूल्यांकन*, एस. चंद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1997

14. चन्द्र, बिपिन, *आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति*, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 1997,
15. चन्द्र, बिपिन, *भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद*, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 2001
16. चन्द्र बिपिन, *साम्प्रदायिकता : एक परिचय, नई दिल्ली*, अनामिका पब्लिशर्स, 2004
17. चन्द्र बिपिन, *आधुनिक भारत में राजनीति,* दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996
18. चन्द्र, बिपिन, *समकालीन भारत,* नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 2001
19. चन्द्र बिपिन, *भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास*, दिल्ली, अनामिका प्रकाशन, 1977
20. चन्द्र, बिपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, *आजादी के बाद का भारत*, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011
21. जमुआर, सुरेन्द्र प्रसाद, *बिहार के दिवंगत हिन्दी साहित्यकार*, पारिजात प्रकाशन, 1987
22. जालान, बिमल, कुमार अशोक (अनु.), *भारत का भविष्य (राजनीति, अर्थशास्त्र और शासन)*, नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स इंडिया, यात्रा बुक्स, 2007
23. जोशी, श्रीकांत (सम्पा.), *माखनलाल चतुर्वेदी : समग्र कविताएँ,* दिल्ली, किताबघर, 2006
24. जैन, प्रेमलता, *समाजवादी, यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य,* दिल्ली, शब्द सृष्टि, 2012
25. जैन, निर्मला (सम्पा.), *साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन*, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009

26. जैन, नेमिचन्द्र, बदलते परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1968
27. झा, द्विजेन्द्र नारायण, *प्राचीन भारत : सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल*, नई दिल्ली ग्रन्थ शिल्पी, 2000
28. झा, रमेशचंद्र, *चम्पारन की साहित्य–साधना*, सुगौली, भारती प्रकाशन, 1956
29. झा, रमेशचंद्र, *चम्पारन: साहित्य और साहित्यकार*, सुगौली, प्रेम पुस्तकालय, 1967
30. झा, रमेशचंद्र, *चम्पारन की साहित्य–यात्रा,* सुगौली, इंडी सहयोगी प्रकाशन
31. झा, (डॉ.) शोभाकान्त, *हिन्दी साहित्य को चम्पारन की देन*, बेतिया, ललिता प्रकाशन, 1994
32. ठाकुर, खगेन्द्र, *आज का वैचारिक संघर्ष और मार्क्सवाद,* स्वराज प्रकाशन 2005
33. ठाकुर, खगेन्द्र, रामधारी सिंह दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रकाशन मन्त्रालय, 2014
34. तिवारी, डॉ.उमाशंकर, *आधुनिक गीतिकाव्य*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1997,
35. तिवारी, नित्यानन्द, *आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1982
36. दामोदर, (डॉ.) श्री हरी, *आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना*, भागलपुर भारत बुक डिपो
37. दिनकर, रामधारी सिंह, *संस्कृति के चार अध्याय*, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 2008
38. दिनकर, रामधारी सिंह, *शुद्ध कविता की खोज,* दिल्ली, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 1987
39. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *निबन्धों की दुनिया*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2009
40. देवताले, चन्द्रकांत, *मुक्तिबोध : कविता और जीवन विवेक*, दिल्ली, राधाकृष्ण, 2003
41. (डॉ.) देवराज, छायावाद का पतन, छपरा, वाणी मन्दिर प्रेस, 1948
42. देसाई, ए.आर., *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, दिल्ली, प्रगति प्रिंटर्स, 1961

43. 'नन्दन', डॉ. नन्दकिशोर, *गायक स्वच्छंद हिमांचल का,* नई दिल्ली राजेश प्रकाशन

44. 'नन्दन', डॉ. नन्दकिशोर, *गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि*, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, 2012

45. नवल, नन्दकिशोर (सम्पा.), *हिन्दी साहित्यशास्त्र,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2003

46. नवल, नन्दकिशोर, *शब्द जहाँ सक्रिय हैं,* दिल्ली, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 1986

47. नगेन्द्र (डॉ.), *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, दिल्ली, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 1976

48. डॉ. नगेन्द्र, *आस्था के चरण*, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1968

49. (डॉ.) नगेन्द्र, *आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ*, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966

50. नयाल, (डॉ.) मधुबाला, *छायावादोत्तर हिन्दी कविता : एक अन्तर्यात्रा,* अलीगढ़, ग्रंथायन, 2003

51. पटेल, सरदार बल्लभभाई, डॉ. प्रभा चोपड़ा (सम्पा.) *भारत विभाजन,* नई दिल्ली प्रभात प्रकाशन 2010

52. प्रभाकर, माचवे, हिन्दी ही क्यों तथा अन्य निबन्ध, पटना, परिजात प्रकाशन, 1981

53. प्रभाकर, विष्णु, *गाँधी : समय, समाज और संस्कृति,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2003

54. प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र, *तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2005

55. पाटिल, रेखा वसन्त, *समान्तर कहानी में यथार्थबोध,* उ.प्र., जवाहर पुस्तकालय, 2005

56. पांथरी, शैलेन्द्र प्रसाद, *आधुनिक भारतीय नवजागरण*, दिल्ली, स्वराज्य प्रकाशन, 1994

57. पाण्डेय, (डॉ.) अखिलेश्वर, *स्वतंत्र भारत में हिन्दू मुस्लिम समस्या के आयाम,* दिल्ली, राज पब्लिकेशिंग हाऊस, 1998

58. पाण्डेय, (डॉ.) रामखेलावन, *गीतिकाव्य*, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी

59. पामदत्त, रजनी, रामविलास शर्मा (अनु.), *आज का भारत,* नई दिल्ली, ग्रन्थ शिल्पी, 2012

60. पालीवाल, कृष्णदत्त, *अज्ञेय विचार का स्वराज*, नई दिल्ली प्रतिमा प्रतिष्ठान, 2010

61. पालीवाल, कृष्णदत्त (सम्पा.), *अज्ञेय रचनावली, खण्ड 9*, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

62. पालीवाल, कृष्णदत्त (सम्पा.), *अज्ञेय रचनावली, खण्ड 10*, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

63. पालीवाल, कृष्णदत्त (सम्पा.), *अज्ञेय रचनावली, खण्ड 11,* नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

64. पालीवाल, कृष्णदत्त (सम्पा.), *अज्ञेय रचनावली, खण्ड 12*, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

65. पालीवाल, कृष्णदत्त (सम्पा.), *अज्ञेय रचनावली, खण्ड 13*, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

66. फास्ट, हावर्ड, विजय सुषमा (अनु.), *साहित्य और यथार्थ,* दिल्ली अरुणोदय प्रकाशन, 1993

67. बन्धोपाध्याय शेखर, *प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास*, हैदराबाद, ओरियंट लॉंगमैन, 2007

68. बाबू, गुलाबराय, *भारतीय संस्कृति की रूप रेखा*, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2009

69. बाबूराम, *हिन्दी निबन्ध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2002

70. बोउवार, सिमोन द, प्रभा खेतान (अनु.), *स्त्री : उपेक्षिता*, नई दिल्ली, हिन्दी पाकेट बुक्स, 1998

71. भट्टाचार्य, सव्यसाची, *आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

72. भारती, धर्मवीर, *मानव मूल्य और साहित्य*, काशी, भारतीय ज्ञानपीठ, 1960

73. भारती, पुष्पा (सम्पा.), *धर्मवीर भारती से साक्षात्कार*, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 1998

74. मर्टन, के.एम. जससन, *समाज शास्त्र एक विधिवत विवेचना*, दिल्ली, कल्याणी पब्लिकेशन्स, लुधियाना, 1970,

75. मंत्री, गणेश, मार्क्स, गाँधी और समसामयिक सन्दर्भ, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली

76. मार्क्स, कार्ल, नामवर सिंह (सम्पा.), गोरख पाण्डेय (अनु.) कला और साहित्य चिन्तन, नई दिल्ली

77. राजकमल प्रकाशन,

78. माथुर, गिरजा कुमार, *नई कविता सीमाएँ और संभावनाएँ,* दिल्ली, अक्षर प्रकाशन 1966

79. माहौर, (डॉ.) भगवान दास, *1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव,* अजमेर, कृष्णा ब्रदर्स, 1976

80. मिश्र, गिरीश्वर (सम्पा.), विद्यानिवास मिश्र, *साहित्य के सरोकार*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2007

81. मिश्र, शिवकुमार, *यथार्थवाद*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2009

82. मिश्र, (डॉ.) बलराम, कुमार, (डॉ.) सतीश, *नेपाली की काव्य चेतना*, पटना, बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, 1992

83. मेघ, रमेश कुन्तक, *मिथक और स्वपन,* कानपुर, ग्रंथम, 1967

84. मोहन, डॉ. नगेन्द्र, *कविता की वैचारिक भूमिका*, दिल्ली, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, 1994,

85. मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *भारत : इतिहास और संस्कृति*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009

86. मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *एक साहित्यिक की डायरी*, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2007

87. मुक्तिबोध, गजानन्द माधव, *नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध*, नागपुर, विश्वभारती प्रकाशन, 1977

88. मुकर्जी, रविन्द्रनाथ, *भारतीय समाज व संस्कृति*, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1964

89. (डॉ.) दिवाकर, (सम्पा.), *गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह 'नेपाली' : संस्करण और श्रद्धांजलि*, नवादा, दिवम् प्रकाशन, 1987,

90. रंजन राकेश, *गोपाल सिंह नेपाली के गीतिकाव्य में गीति तत्त्व*, नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014

91. राय, मृगेन्द्र, *हिन्दी काव्य-नाटक और युगबोध,* जयपुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2008

92. राय, (डॉ.) लल्लन, *हिन्दी की प्रगतिशील कविता*, चंडीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989

93. राय, (डॉ.) सतीश कुमार, *पश्चिमी चम्पारन की हिन्दी- पत्रकारिता*, बेतिया, साहित्य कला संगम, 1994,

94. रेम (डॉ.) सत्या एम., *भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद,* दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006

95. लाल, सुन्दर, *भारत में ब्रिटिश राज,* कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1991

96. लूकाच, जार्ज, कर्णसिंह चौहान (अनु.), *समकालीन यथार्थवाद,* दिल्ली, स्वराज प्रकाशन, 2006

97. वंशी, बलदेव, *समकालीन कविता : वैचारिक आयाम*, दिल्ली, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, 1989

98. वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र (प्र, सम्पा.), *'हिन्दी साहित्य कोश' खण्ड-2*, वाराणसी, ज्ञानमंडल प्रकाशन, 2000

99. वर्मा, निर्मल, *दूसरे शब्दों में*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2008

100. वर्मा, निर्मल, *ढलान से उतरते हुए*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2011

101. वर्मा, निर्मल, *साहित्य का आत्म सत्य*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2010

102. वर्मा, निर्मल, *आदि, अन्त और आरम्भ*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2010

103. वर्मा, निर्मल, *शब्द और स्मृति*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2011

104. वर्मा, निर्मल, *कला का जोखिम*, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2001

105. वर्मा, निर्मल, *मेरे साक्षात्कार*, नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 1999

106. वर्मा, भगवतीचरण, *साहित्य के सिद्धांत और रूप,* नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1976

107. वर्मा, लक्ष्मीकान्त, *नई कविता के प्रतिमान*, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहबाद

108. वर्मा, वी.पी., *आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार*, लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा, 1974

109. विधार्थी, (डॉ.) बलराम, (सम्पा.), *गोपाल सिंह 'नेपाली' : जीवन और साहित्य*, बेतिया, साहित्य संगम, 1983

110. सदायत, चंद्रा (सम्पा.), *सुभद्राकुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ*, दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2008

111. सहाय, रघुवीर, *यथार्थ यथास्थिति नहीं*, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1984

112. सांचीहर, द्वारकाप्रसाद बलदेवप्रसाद, छायावादोत्तर हिन्दी कविता, पिलानी, चिन्ता प्रकाशन, 1990

113. सिंह, अजब, *यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन,* वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1998

114. सिंह, जसवंत, *जिन्ना भारत-विभाजन के आइने में*, नई दिल्ली, राजपाल एंड सन्स, 2009

115. सिंह, (डॉ.) तिर्थेश्वर, समकालीन हिन्दी कविता की यथार्थवादी चेतना, दिल्ली, मानसी पब्लिकेशन, 2006

116. सिंह, नामवर, *इतिहास और आलोचना,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2011

117. सिंह, नामवर, *कविता की जमीन और जमीन की कविता,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2006

118. सिंह, नामवर, *कविता के नए प्रतिमान*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1982

119. सिंह, नामवर, *छायावाद*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1979

120. सिंह, बच्चन, *आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द,* वाणी प्रकाशन, 2010

121. सिंह, त्रिभुवन, *हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद*, वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लि., वि. सं. 2054

122. सिंह, त्रिभुवन, डॉ. विजय बहादूर सिंह (सम्पा.), *साहित्यिक निबन्ध,* वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2008

123. सिंह (डॉ.) शम्भुनाथ, *प्रयोगवाद और नई कविता,* वाराणस, समकालीन प्रकाशन, 1966

124. सुन्दरम्, रूद्रदत्त्, *भारतीय अर्थव्यवस्था*, नई दिल्ली, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा.लि., 1990

125. सोलजी, *समाज के सरोकार*, दिल्ली, शिल्पायन, 2004

126. सैनी, राजकुमार, *यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र*, दिल्ली, राजधानी प्रकाशन, 1998

127. शर्मा, रमाकान्त, *समाजोन्मुख यथार्थवादी काव्य*, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1984

128. शर्मा, रामविलास, *भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश: भाग -1 व 2,* नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2006

129. शर्मा, रामविलास, *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2010

130. शर्मा, रामविलास, *भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्या,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2004

131. शर्मा, रामविलास, *भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद- खण्ड-1,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1982

132. शर्मा, रामविलास, *भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद- खण्ड-2,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1982

133. शर्मा, रामविलास, *नई कविता और अस्तित्ववाद,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2003

134. शर्मा, रामविलास, भाषा साहित्य और संस्कृति, इलाहाबाद, किताब महल, 1954

135. शर्मा, रामविलास, भाषा युगबोध और कविता, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1981

136. शाह, घनश्याम, हरिकृष्ण रावत (अनु.), *भारत में सामाजिक आन्दोलन,* जयपुर, रावत पब्लिकेशन, 2009

137. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान

138. शुक्ल, (सम्पा.) रामलखन, *आधुनिक भारत का इतिहास*, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006

139. श्रीवास्तव, ओंकारनाथ, *हिन्दी साहित्य : परिवर्तन के सौ वर्ष*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1979

140. श्रीवास्तव, रवि, *उत्तर आधुनिकता : विभ्रम और यथार्थ*, जयपुर, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 2006

141. श्रीवास्तव रविन्द्रनाथ, *भाषाई अस्मिता और हिन्दी,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2008

पत्र –पत्रिकाएँ

1. अवस्थी, राजेन्द्र (सम्पा.), *कादम्बिनी*, मासिक, दिल्ली 1986,

2. अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, *सर्जना और सन्दर्भ*, दिल्ली, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 2002

3. ओझा, सीमा (सम्पा.), *आजकल*, पूर्णांक 805, नवम्बर 2011,

4. केसरी, डॉ. सुरेन्द्र (सम्पा.), *बूंद-बूंद सागर*, रक्सौल, 2002 -2003

5. कृषक, रामकुमार, (सम्पा.), *अलाव (गोपाल सिंह 'नेपाली' विशेषांक)*, नई दिल्ली, मार्च-अप्रैल 2012

6. गुप्त, ईश्वरी प्रसाद (सम्पा.), *चम्पारन अंक -1-2*, सितम्बर-दिसम्बर, अधर्य, हिन्दी त्रैमासिक, मोतिहारी, 1962

7. चतुर्वेदी, त्रिलोकी नाथ (सम्पा.), *साहित्य अमृत*, जन्मशती अंक, मासिक, नई दिल्ली, फरवरी 2011

8. चौहान, प्रणवीर, (सम्पा.), *युवक*, वर्ष -13, अंक -08, मासिक, आगरा, अगस्त 1963

9. डॉ. दिवाकर, (सम्पा.), *दृष्टि,* अंक -30-32 त्रैमासिक, नवादा, 1986

10. दिवाकर, डॉ. रामधारी सिंह, मिश्र, डॉ. मिथिलेश कुमारी, (सम्पा.), *परिषद् पत्रिका*, वर्ष -39, अंक -1-4, अप्रैल 1999-मार्च 2000,

11. पाण्डेय, गणेश, (सम्पा.), यात्रा, अंक-04, गोरखपुर, दिसम्बर 2010,

12. पाण्डेय, नर्मदेश्वर सहाय, (सम्पा.), *अँजोर*, भोजपुरी त्रैमासिक, पटना, जुलाई 1963,

13. भारती, धर्मवीर (सम्पा.), *धर्मयुग*, बम्बई, मई, 1963

14. भारती, आलोक, *आभा,* रजत जयंती अंक, बेतिया, 1992

15. 'मुकुर', शर्मा लक्ष्मी, (सम्पा.), *चन्दन* -वर्ष -1, अंक -1, त्रैमासिक, भागलपुर 1966

16. हरवंश (सम्पा.), *प्रभात खबर*, प्रवेशांक, राँची

17. शैलेन्द्र (सम्पा.), *जुल्म का प्रतिकार*, चम्पारन विशेषांक, बेतिया, 1984-1985,

18. सुधाकर, सलिल, *साहिती सारिका*, प्रवेशांक, पटना, 2008

English Book

1. Guha Ramchandra, *India After Gandhi : the history of world's largest democracy*, Pan Macmillan, 2011

2. Pal, Satya and Probodh Chandra, Sixty Years of Congress: India Lost: India Regained (A detailed record of its struggle for freedom), The Lion Press, Lahor, 1946

3. Kumar, Ravundra, *champaran to quit India Movement,* New Delhi Mittal Publication, 2002

4. Prasad, Dr. Rajendra, *Satyagrah in Champaran,* New Delhi Occan Book (P) Ltd, 2013

5. Sayer, Andrew, *Realism and Social Science,* New Delhi Saga Publication Ltd. 2006

6. Villanueva, Dario, (translated By Mihai I. Spariosu), *Theory of Literary Realism,* Albany, State University of New York Press, 1992

7. *Industrial Commission Report*-1916-18.

Website

1. www.arvindguptatoys.com/arvindgupta/phule.pdf
2. https://www.britannica.com/art/realism-art
3. www.bharatdiscovery.org/india/सविनय_अवज्ञा_आन्दोलन
4. https://www.britannica.com/art/realism-art#ref248693
5. http://hi.drikpanchang.com/panchang/month-panchang.html?date=12/03/1930
6. http://www.hindi.mkgandhi.org/brahmacharya.htm
7. http://kavitakosh.org/kk/द्रुत_झरो_जगत_के_जीर्ण_पत्र_/_सुमित्रानंदन_पन्त
8. https://satyagrah.scroll.in/article/27133/26-january-1965-hindi-official-language-south-india-protests
9. https://hi.wikipedia.org/wiki/भारत_की_राजभाषा_के_रूप_में_हिन्दी
10. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF
11. https://en.wikipedia.org/wiki/Mercure_du_XIXe_si%C3%A8cle

परिशिष्ट

गोपाल सिंह नेपाली के अप्रकाशित गीत

गोपाल सिंह नेपाली हिन्दी के महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने कई विधाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को अपना अमूल्य योगदान दिया है। उन्हें सर्वाधिक प्रतिष्ठा गीतों के लिए मिली है। उन्होंने फिल्मों में भी लगभग 300 गीत लिखे हैं। यहाँ कुछ चुने हुए गीतों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। गीत में सुर ताल व लय को ध्यान में रखकर एक ही पंक्ति की आवृति बार-बार होती है। यहाँ आवृति वाली पंक्तियों को सिर्फ एक बार ही लिखा गया है। कुछ शब्द जो वर्तमान समय में नए रूप में प्रचलित हैं उनकी वर्तनी नेपाली के काव्य-संकलन में प्रयोग किए गए शब्दों के रूप में रखी गई है।

■ शोधार्थी

मजदूर (1945)

1.

छाये हैं काले मेघ तो बौछार भी होगी
कभी तो अपने बाग में बहार भी होगी
छाये हैं काले मेघ तो बौछार भी होगी

ओ रोने वाले रात में तू सुकून जाना
आएगा जहाँ पोर में हँसने का जमाना
कभी खुशी में ये गली इन्तजार भी होगी
कभी तो अपने बाग में बहार भी होगी

हम से बिछड़ के सजना परदेश गए हैं
तुमसे बिछड़ के आज हम खामोश हुए हैं
यूँ खामोशी बाद ये बहार भी होगी
कभी तो अपने बाग में बहार भी होगी

रूप का फिर लहरा के पैमानों
जो सबका बड़ा है
बड़ा वो लम्हा सुधारो
मजधार में फैला नैया भी होगी
कभी तो अपने बाग में बहार भी होगी

2.

ये रंग बिरंगी डोर रे ये रंग बिरंगी डोर
इन धागो से खेल खेल कर मैं आनन्द विभोर
ये रंग बिरंगी डोर रे ये रंग बिरंगी डोर

कोई नीली कोई पीली दुनिया मेरी रंग रंगीली
इन्द्र-धनुष नैनों में छाया मन में नाचे मोर
ये रंग बिरंगी डोर रे ये रंग बिरंगी डोर

सरसों फूली देश सुहाना है
मुझे किसी से प्रेम निभाना है
दुनिया मुझको कुछ समझाए मैं समझू कुछ और
दिल बढ़ चल उनकी ओर दिल बढ़ चल उनकी ओर
ये रंग बिरंगी डोर ये रंग बिरंगी डोर

वो दिन भी आएँगे हम दुनिया बसाएँगे
एक डाल के दो फूलों से हम खिल जाएँगे
मैं बन जाऊँ चाँद सलोना मैं बन जाऊँ चकोर
ये रंग बिरंगी डोर रे ये रंग बिरंगी डोर

सफ़र (1946)

1.

दिल जो दिया कहने लगे
आज न मुझसे मिलके गए
भोले भाले सजना ओ मेरे सजना सजना

डाल मिली डाल से फूल मिला
फूल से हम भी मिल गए
कहीं पे रास्ते की भूल से
कहने लगे मान जाओ एक महीना

मैं कह न सकी
ना तार मेरे दिल के उठे झनझना
ना मुझसे मिल के गए सजना

मेरे प्रेम के कुमकुम
और खिलो तुम और हँसो तुम
ऐसे ही मेरे बाग में उस रोज भी खिलना
जिस रोज हमारा हो किसी कुंज में मिलना
नैन मिले जिनसे हमारे
अब उन की याद में है जगना
ना मुझसे मिल के गए सजना

2.

मैं तो करूँ प्यार पिया मैं तो करूँ प्यार
दूर से भरमाये
मेरी मुलाकात की रात बीती जाए
मैं तो करूँ प्यार पिया मैं तो करूँ प्यार

उड़ते हुए आए दो पंक्षी
दो पंक्षी बसे बस
उनको लगी नींद यहाँ
हमको लगी प्यास
प्यास जागी प्रीत की चैन नहीं आए
मेरी मुलाकात की रात बीती जाए
मैं तो करूँ प्यार पिया मैं तो करूँ प्यार

जी तो करे चल के मना लूँ
आज उन्हें अपना बना लूँ
दिल किसी को पास बुलाते हुए शरमाये
रात बीती जाए
मैं तो करूँ प्यार पिया मैं तो करूँ प्यार

मेरी नई दुनिया में जब से वो आए
तब से मैंने आँगन में
दीप जलाए दो नैन बिछाए
इन्तजार ही में कहीं इन्तजार में
भोर न हो जाए
मेरी मुलाकात की रात बीती जाए
मैं तो करूँ प्यार पिया मैं तो करूँ प्यार

3.

छोटी सेठानी जी
बोलो लाला हजारी जी
सुनो छोटी सेठानी जी
तेरे बाजार में हम तो हो गए बदनाम
लाला हजारी जी तेरे बाजार में मैं भी बिक
गई बिन दाम

मुखड़ा दिखाके
आँखें चुराके
बचके न जाना
गोरी हो गोरी
मेंहदी रचाके
बिंदिया लगाके
आई हूँ तेरी गली
जब राजी हो तुम तो
झगड़े का क्या काम
छोटी सेठानी जी
बोलो लाला हजारी जी
सुनो छोटी सेठानी जी
तेरे बाजार में
हम तो हो गए बदनाम

वादों की शाम है
होठों पे जाम है
अब तो आराम है
तेरी जुदाई के दिन
अँखियाँ भिगोएगी
मैं तो दुल्हन
तुम हो छैला

4.

कभी याद कर के
गली पकड़ के
चली आना हमारे अंगना
राजा मेरे मन के
तेरी रानी बन के
चली आऊँ तुम्हारे अंगना

नाता लगा के अब मुँह न मोड़ना
चढ़ती जवानी में वादा न तोड़ना
कभी रो-धो के रानी
चली आना हमारे अंगना
कभी याद करके...

तेरी ही खातिर तो निकली हूँ घर से
और दूर न होना मेरी नजर से
अपना घर जान के
बन-ठन के चली आऊँ तुम्हारे अंगना
राजा मेरे मान के
तेरी रानी बन के
चली आऊँ तुम्हारे अंगना

अन्धियारी रात में मैं हूँ किनारे
घर मेरा सुना तुमको पुकारे
घड़ी गिन गिन के
जरा बन-ठन के
चली आना हमारे अंगना
कभी याद कर के गली पार कर के
चली आना हमारे अंगना

आऊँगी रास्ते में देर न करुँगी
माला पहनाउँगी पिहु भरुँगी
देर न करुँगी
बढ़ दिन ठान के
तुम्हें सँइया मान के
चली आऊँ तुम्हारे अंगना
राजा मेरे मन के तेरी रानी बन के
चली आऊँ तुम्हारे अंगना

5.

अब वो हमारे हो गए
इकरार करे या न करे
हमको उन्हीं से प्यार है
वो प्यार करे या न करे

हमको मोहब्बत आप से
हमको जरूरत आप की
आप हमारी जिन्दगी
दिलदार करे या न करे

हम सोचते है प्यार का
बदला मिलेगा प्यार से
वो सोचते है प्यार से
इनकार करे या न करे

दिल तो दिया है
जान भी उनपे
निछावर कर चुके
आप हमारी बात का
ऐतबार करे या न करे
अब वो हमारे हो गए
इकरार करे या न करे

6.

कह के भी न आए तुम अब छुपने लगे तारे
दिल ले के तुम्हीं जीते दिल दे के हमीं हारे

हम आस किए जाते तुम पास नहीं आते
जाना था चले जाते मिलने तो चले आते
कह के भी न आए तुम अब छुपने लगे तारे
दिल ले के तुम्हीं जीते दिल दे के हमीं हारे

हमने था तुम्हें माना तुमने ही न पहचाना
जब होना था बेगाना तब क्यों किया दीवाना
कह के भी न आए तुम अब छुपने लगे तारे
दिल ले के तुम्हीं जीते दिल दे के हमीं हारे

सुनसान हुई गलियाँ सब सुख गई कलियाँ
अब बीत चली घड़ियाँ पर जाग रहीं अँखियाँ
कह के भी न आए तुम अब छुपने लगे तारे
दिल ले के तुम्हीं जीते दिल दे के हमीं हारे

शिकारी (1946)

1.

तेरे बिना सूनी सूनी है मेरी फूलवारी रे
आजा मेरा भँवरा शिकारी

जाती रहीं रातें और आते रहे दिन
आस लिए बैठी रही वफ़ा की
आजा मेरा भँवरा शिकारी

आई है बहार मगर सूख रही क्यारी
आजा आ आजा मेरा भँवरा शिकारी
तेरी बिना सूनी सूनी है मेरी फूलवारी रे

मेरे जन्मों के साथी तेरी प्रीत रूलाती
सहती रही दुख बराबर और सहूँगी
अकेले तेरे बिना कैसे रहूँगी
तेरी जुदाई में आए बने आँसू भी चिंगारी
आजा आजा मेरा भँवरा शिकारी
तेरे बिना सूनी सूनी है मेरी फूलवारी रे

2.

दुनिया ने हमें दो दिन रहने न दिया मिल के
देने को सजा दे दी सहने न दिया मिल के
दुनिया ने हमें दो दिन रहने न दिया मिल के

किस्मत के इशारे पर इक रोज मिले दोनों
अरमान लिए दिल में इक साथ खिले दोनों
पर प्यार की लहरों में बहने न दिया मिल के
सहने न दिया मिल के
दुनिया ने हमें दो दिन रहने न दिया मिल के

बेदर्द है दुनिया बड़ी बेदर्द है दुनिया
क़ानून भी माना है कहीं रो के मनाने से
इंसाफ़ भी सुनता है कहीं शोर मचाने से
अब कौन सुने दुखड़े इस दर्द भरे दिल के
दुनिया ने हमें दो दिन रहने न दिया मिल के

3.

हर दिन है नया हर रात निराली है
तू है दिल में तो हर रोज दीवाली है

सुनसान घना जंगल
मन है डर से चंचल
ओ चंचल नदिया
तू प्यासे के पास कहाँ आई
नदिया को प्यासे पिया की
प्रीत बुला लाई
जंगल की डगरिया काँटों वाली है
तू है दिल में तो हर रोज दीवाली है
हर दिन है नया हर रात निराली है

याद तेरी थी चाँद से सुन्दर प्यार भरी तुम कौन
मैं तेरी दीवानी भेद भरे तुम कौन
मैं राजा तुम रानी
तुम रानी भरपूर चमन है रुत मतवाली है
तू है दिल में तो रोज दीवाली है

हो पास पिया तो क्या रातें काली
तुम हो मेरी आँखों की उजियाली
चुपके-चुपके बातें होतीं चुपके होता प्यार
इसी तरह अनजाने में बनता है नया संसार
हम तो पंछी पक्के सर डाली है
तू है दिल में तो हर रोज दीवाली है
हर दिन है नया हर रात निराली है

4.

जब घर में लगी आग तभी बंसी बजाए
इस देश की सन्तान को भगवान बचाए

आँखों की ज़ुबानी सुनो लाखों की कहानी
हर दिल में दबी आग है होठों पर हँसी है
संवाद की छाया में यहाँ दुनिया बसी है

ज़ुर्म के दरबार के दुखियों का द्वार क्या
बादल के गरजने से पंछी का शोर क्या
लाचार ग़रीबो को ही दिन रात सताए

इस देश की सन्तान को भगवान बचाए
जब घर लगी आग तभी बंसी बजाए

हम आज हैं भिखारी बने झोली है खाली
इक याद बनके बुझ गई घर-घर की दिवाली
हमको रुला के आई उनकी बहार है
घर हमारा उजड़े उनका त्यौहार है
जब औरतों की आबरू की होली मनाए
इस देश की सन्तान को भगवान बचाए

आठ दिन (1946)

1.
उम्मीद भरा पंक्षी था खोज रहा सजनी
कहता था यही पंक्षी हाए बिछुड़ गई सजनी

तारों भरी रजनी आँचल को पसारे
थी पूछ रही हँस के तू किस को पुकारे
नैनन में नीर भरे दर्द सम्भाले
कहता था यही पंक्षी हाए बिछुड़ गई सजनी

उम्मीद भरा पंक्षी था खोज रहा सजनी
कहता था यही पंक्षी हाए बिछुड़ गई सजनी

रजनी मोहे न सता दिल न जला
इतना बता कहाँ गई सजनी
वो कहाँ गई सजनी

आँसू हैं मेरे नैनों के
न ओस की बूँदें
दिल में लगी आग
लगन मन में मिलन की
हाल पे मेरे तुझे
क्यूँ तरस न आए
कहता था यही पंक्षी हाए बिछुड़ गई सजनी

उम्मीद भरा पंक्षी था खोज रहा सजनी
कहता था यही पंक्षी हाए बिछुड़ गई सजनी

2.
हाय किसी से मेरी प्रीत लगी अब क्या करूँ
किसी से मेरी प्रीत लगी अब क्या करूँ

पास-पड़ोस में बाजा बजे रे
दूल्हा के संग नई दुल्हन सजे रे
मैं तो बड़ी-बड़ी आँखों वाली देखा करूँ
किसी से मेरी प्रीत लगी अब क्या करूँ

सोलह बरस की मैं तो खुश्बू हूँ खास की
मैं तो बांकी-मतवाली मैं तो प्याली हूँ रस की
चढ़ती उमर नहीं बात मेरे बस की
जवानी मेरे बस की नहीं जी मेरे बस की
अकेली यहाँ पड़ी-पड़ी आहें भरूँ
किसी से मेरी प्रीत लगी अब क्या करूँ

अब न रुकूँगी किसी के रोके
पीहर से चलूँगी मैं पिया की हो के
डोलिया हीले-डोले मैं तो बैठी रहूँ
किसी से मेरी प्रीत लगी अब क्या करूँ

3.
इक नई कली ससुराल चली दुबली-सी दुल्हन बन के
भूली थी ये भूल समझ गई
प्यार जान गई हार मान गई रे
प्रीत जीत गई भोली थी ये
पतली पतली चंचल तितली निकली है बन ठन के
इक नई कली ससुराल चली दुबली-सी दुल्हन बन के

एक छैल छबीला मस्त चला दुल्हन का सजन बन के
दर-दर फिरता प्यार का मारा आफ़त टल गई
किस्मत खुल गई दुल्हन मिल गई रे
पगड़ी बाँधे तलवार लिए बैठा है बलम तन के
एक छैल छबीला मस्त चला दुल्हन का सजन बन के

दूल्हा आगे दुल्हन पीछे साँवरिया लाल चुनर खींचे
शरमाओ न भरमाओ न साँवरिया तेरे मन के

इक नई कली ससुराल चली दुबली-सी दुल्हन
बन के

लीला (1947)

1.

ओ राजा रे ओ राजा रे
ओ राजा मुझे अपनी बना ले
बना ले रे ओ राजा रे ओ राजा रे

तेरे महल के आगे खड़ी हूँ
कुटिया की ईंट हूँ गली में पड़ी हूँ
मुझको गली से उठाके मोरे राजा
अपने महल में बसा ले बसा ले रे
ओ राजा मुझे अपनी बना ले रे
बना ले रे ओ राजा रे

देखो जी देखो बहार आ गई है
देखो जी देखो ज़ुल्फों पे काली घटा
छा गई है
देखो छा गई है
ओ राजा ज़ुल्फों की छाया में आकर
राजा रे मोरे राजा
ओ राजा मेरी ज़ुल्फो की छाया में आकर
दिल की तू आग बुझा ले रे
ओ राजा मुझे अपनी बना ले रे
बना ले रे ओ राजा रे.

2.

मैंने लाखों के बोल सहे साँवरिया तेरे लिए

दुनिया दुश्मन होले मैं तो तुझको जानूँ जी
सुनती जाऊँ सबके सारे एक भी न मानूँ जी
कोई हजार कहे
साँवरिया तेरे लिए मैंने लाखों के बोल सहे

तू आँखों से दूर हुआ आँख मिचोली खेल के
जीती हूँ मैं तेरी खातिर अपनी पीड़ा झेल के
मैंने लाखों के बोल सहे साँवरिया तेरे लिए

3.

ओ प्रीतम प्यारे
छोड़ चली घर बार
तुझसे दूर तुझसे दूर

भर आए नैना
नैन-नैन का प्यार
जब से दूर जब से दूर

क्यूँ आफ़त सर पे मोल ले तू मेरे वास्ते
तू अपने महल में राज कर मैं अपने रास्ते
तुझ को सुख हो तो
मुझको पिया परदेस भी मंज़ूर है मंज़ूर

करती थी तुझको प्यार मैं बदनामी ले चली
चोरी-चोरी का खेल था जुर्माना दे चली
एक दिल था मेरा
वो भी ठोकर खा के चकनाचूर-चकनाचूर

फागुन में होली खेलना सावन में झूलना
जब जब चमकेगा चाँद तू मुझको न भूलना
मेरे टूटे मन में
अब भी तुम्हारा प्यार है भरपूर है भरपूर

ओ प्रीतम प्यारे
छोड़ चली घर बार
तुझसे दूर तुझसे दूर

4 .

मैं जानती हूँ तुम न आओगे कभी पिया
फिर भी तुम्हारी राह में जला रही दिया
हो पिया हो पिया

ले कर फूलों की रात में तारों की आरती
हो देवता हो देवता मैं देर से रास्ता निहारती
मालूम है मुझे कि मिल न पाएगा जिया
फिर भी तुम्हारी राह में जला रही दिया
हो पिया हो पिया

मैं मानती हूँ तुम न पहनोगे कभी ये हार
आँचल में सुख जाएँगे आँसू के हरसिंगार
किसने है टूटे हार को गले लगा लिया
फिर भी तुम्हारी राह में जला रही दिया
हो पिया हो पिया

पूरे बरस में एक दिन आने की बात थी
इस पार आके दिल मिल जाने की बात थी
आने की बात थी
वादा किया तुम्हीं ने तुम्हीं ने भुला दिया
फिर भी तुम्हारी राह में जला रही दिया
हो पिया हो पिया

मैं जानती हूँ तुम न आओगे कभी पिया
फिर भी तुम्हारी राह में जला रही दिया
हो पिया हो पिया

नजराना (1948)

1.
प्यासी ही रह गई पिया मिलन को अँखियाँ राम जी
क्या सोच के बनाई तुमने दुनिया राम जी

तुम छुपे-छुपे क्या लिख देते हो सब के भाग्य में
पैदा करते हो तुम जिसको जलता है आग में
मन ही में रह जाती हैं मन की बतियाँ राम जी
क्या सोच के बनाई तुमने दुनिया राम जी

जाने क्या सुख देता तुम को बातों का टूटना
जाने कब छोड़ोगे अपने प्यारों को लूटना
इस आग में कभी तो डालो पनिया राम जी
क्या सोच के बनाई तुमने दुनिया राम जी

2.
फागुन का मस्त महीना है मौसम है अलबेला
इतनी बड़ी दुनिया में मैं लाचार हूँ अकेला

इन महलों बंगलों बाग में गुलजार है जमाना
पर मेरा तो मुश्किल से किसी कोने में है ठिकाना
मेरी गलियाँ सुनसान हैं औरों का लगा मेला
इतनी बड़ी दुनिया में मैं लाचार हूँ अकेला

बचपन तो बिता खेल में घर छुटा जवानी में
दुख सहते चले हम बहते चले दुनिया की रवानी में
मरने पर अपना बस नहीं जीने में है झमेला
इतनी बड़ी दुनिया में मैं लाचार हूँ अकेला

दुनिया में जो दिल रखते हैं दौलत भी उन्हीं से दूर है
दुनिया बनाई जिस ने वो अपने नशे में चूर है
बस देखने को सब दिया रखने न दिया ढेला
इतनी बड़ी दुनिया में मैं लाचार हूँ अकेला

3.
इक थी जवानी इक जवान था जहाँ में
रहते थे कुछ दिनों से एक ही मकान में
फिर साथ-साथ रहते-रहते प्यार हो गया
दो दिल मिले तो दुश्मन संसार हो गया

हाय हाय फिर क्या हुआ
इक रात को पकड़े गए दोनों
ज़ंजीर से जकड़े गए दोनों

अन्दर वो अपने कमरे में चुपचाप पड़े थे
बाहर लिए लाठी मुहल्ले वाले खड़े थे
कहते थे उम्र चढ़ गई अब प्यार न करो
शादी से पहले इस गली को पार न करो

हाय हाय फिर क्या हुआ
एक रात को पकड़े गए दोनों
ज़ंजीर से जकड़े गए दोनों

चुपचाप घर से चल दिया वो आधी रात को
वो भोर को तड़पने लगी मुलाक़ात को
कहती थी मिला दे हमें इक बार जमाना
लेकिन हजार कह गई बेदर्द न माना

हाय-हाय फिर क्या हुआ
एक रात को पकड़ गए दोनों
ज़ंजीर से जकड़े गए दोनों

हम भी इंसान हैं (1948)

1.
नाचो नाचो रे
खुशी की घड़ी आई
रे खुशी की घड़ी आई
बिल्ली बिल्ला बिल्ली बिल्ला

बिल्ली ने दिए देखो छोटे-छोटे बच्चे
खेलने में चंचल और देखने में अच्छे
बेचारी शरमाई रे बेचारी शरमाई
नाचो नाचो रे खुशी की घड़ी आई

2.
मैं तो राजा बना हूँ आज हटो हटो राही
सारे जहाँ में मेरी बादशाही
हटो हटो राही

मेरी साहबजादी हा हा मेरी साहबजादी
मैं जाऊँ दिल्ली ले आऊँ शहजादी
करूँगा उससे शादी

मैं भी किसी की बन्दी नहीं हूँ
मैं भी तो हूँ शहजादी
तेरे जैसे कितने मेरे है सिपाही

मैं तो राजा
बना हूँ आज हटो हटो राही

मैं हूँ सरायवाली
मेरी सराय में हरदम दीवाली
मेरे चने खाए
वो दुनिया को जीत जाए
मुझको न समझो तुम गोंचवा
मैं भीम बलवान
मैं मारू सन्तान

3.
कोई मुझसे भी तो बोले
पिया होके के पिया होले

राजा के बाग की मैं फूल चमेली हूँ जी
दुनिया को दुनिया माने मैं ही अकेली हूँ जी
आए हवा में हिचकोले कोई मुझसे भी तो
बोले
पिया होके के पिया होले

दिल में अरमान है आँखों में प्यार है
सपनों के जैसा सुन्दर मेरा संसार है
गली-गली जिया डोले कोई मुझसे भी तो
बोले
पिया होके के पिया होले

दर्द सभी के दिल में गा के जगाऊँ रे
दर्द सभी के दिल में सावन मेघ जैसी आमू
आमू जाऊँ रे
चलती जाऊँ हौले-हौले कोई मुझसे भी तो
बोले
पिया होके के पिया होले

4.
हम तो मोटर खरीद के ले आएँगे
मोटर की टोपी हटा के हटा के
मुंशी को सामने बिठा के
मोटर की टोपी हटा के हटा के
सेठजी को सामने बिठा के
हम चुपके से बैठ और निकल जाएँगे
हम तो मोटर खरीद के ले आएँगे

रास्ते में रोकेगा हमको पुलिसवा
पो-पो बजा देंगे कह देंगे
कह देंगे हट जा
जो आएँगे आगे कुचले जाएँगे
हम तो मोटर खरीद के ले आएँगे

हम तो हवाई जहाज में उड़ जाएँगे
बत्ती जला के जी पंखा चला के जी
लंबी-सी धूम को ऊपर उठा के की
हम तो बादल के सर पे चढ़ जाएँगे
हम तो हवाई जहाज में उड़ जाएँगे

ऊपर कटेगी रातें हमारी
तारों से होगी बातें हमारी
फिर चुपके से भोर में चले आएँगे
हम तो हवाई जहाज में उड़ जाएँगे

5.

हम तेरे हैं हमको न ठुकराना
ओ भारत के भगवान चले आना
गंगा भी वही जमुना भी वही
पर गाओ सफ़र गुलजार नहीं गुलजार नहीं

हम दुखियों के दर्द मिटा जाना
ओ भारत के भगवान चले आना
तू हरी भारी आबादी दे
जब जन्म दिया तो आजादी दे
आजाद नहीं तो घर भी वीराना
ओ भारत के भगवान चले आना

6.

ओ घर घर के दिये बुझाकर बने हुए धनवान
तुम्हीं नहीं हो इस दुनिया में हम भी तो
इंसान

यहाँ तुम्हारा रंग महल है
रंग महल में चहल-पहल है
और हमारे लिए नहीं क्या ये जमीन आसमान
तुम्हीं नहीं हो इस दुनिया में हम भी तो
इंसान

खेत हमारा फसल तुम्हारी ऐसा क्यूं होगा
जिसने मेहनत की न उसका पैसा क्यूं होगा
दिल है तुम्हारा और न होती क्या ग़रीब की
जान
तुम्हीं नहीं हो इस दुनिया में हम भी तो
इंसान

हमको भी तो भूख सताती है
हमको भी तो प्यास जलाती है
और दूध के लिए हमारी रोती है सन्तान
तुम्हीं नहीं हो इस दुनिया में हम भी तो
इंसान

ओ घर के दिये बुझाकर बने हुए धनवान
तुम्हीं नहीं हो इस दुनिया में हम भी तो
इंसान

गजरे (1948)

1.

कब तक कटेगी जिन्दगी किनारे-किनारे
ओ मांझी आके नाव मेरी लहरों में ले जा रे

जमाना कहते हैं जिसे वो तो है जवानी
जवानी की रवानी है बहता हुआ पानी
मुझको भी तो दिखा दे रे मौजों के नजारे
ओ मांझी आके नाव मेरी लहरों में ले जा रे

यूँ खेल के कब तक कागज की नाव बहाऊँ
तुम आजा तो मैं प्रेम की गंगा में नहाऊँ
ये लहरें नन्हें हाथों से करती है इशारे
ओ मांझी आके नाव मेरी लहरों में ले जा रे

चल रे गहरी मंझधार से आया है बुलावा
खेता जाए मेरी नाव तू देता जाए भुलावा
रहने दे सारी दुनिया को साहिल के सहारे
ओ मांझी आके नाव मेरी लहरों में ले जा रे

2.

अब न किसी से कहिएगा दावा ए इश्क़ है
गलत
हमने तुम्हारे इश्क़ में मर के तुम्हें दिखा दिया
अब न किसी से कहिएगा दावा ए इश्क़ है
गलत

बैठे हैं सर झुकाए क्यूँ आके अब मजार पर वो
अब
खाक़ से फिर ही क्या खाक़ में जब मिला
दिया
हमने तुम्हारे इश्क़ में मर के तुम्हें दिखा दिया

तू रहे तेरा गम रहे मैं रहूँ मेरा गम रहे
कौन तुझे भुला सका किसने तुझे भुला दिया
हमने तुम्हारे इश्क़ में मर के तुम्हें दिखा दिया
अब न किसी से कहिएगा दावा ए इश्क़ है
गलत

3.

चली दुल्हन बारातियों के पीछे-पीछे
आँखें बिछाए के
ससुराल बुलाए रे
पलकें झुकाए के
गोरी चली जाए रे
पलकें झुकाए के
लेकिन नैहर का प्यार उससे पीछे छूटे
चली दुल्हन बारातियों के पीछे-पीछे

रास्ते में प्यास लगे
पानी न माँगे
दूल्हा तो चला जाए आगे ही आगे
घूँघट गोरी घूँघट आई नीचे नीचे
चली दुल्हन बारातियों के पीछे-पीछे

साजन मिले तो गईं सखियाँ
डोली चली तो भर आईं अँखियाँ
फिर भी बन-ठन के सोचे
पिया कैसे रीझे
चली दुल्हन बारातियों के पीछे-पीछे

बचपन बीता है जहाँ
उसे कैसे भूलना
रह-रह के याद आए
बागों में झूलना
लेके डोली कहार चले ऊँचे-ऊँचे
चली दुल्हन बारातियों केपीछे पीछे

4.

जलने के सिवा और क्या है यहाँ
चाहे दिल हो किसी का या हो दिया
हर रात दिया
जल-जल के बुझे
दिल रोज पुकारे पिया पिया पिया पिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ

बचपन से तुम्हीं से प्रीत लगी
अब अलग जवानी बीत रही
जब पास थे तुमको प्यार किया
अब दूर हुए तो तरसे जिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ

है रैन घिरी पर चैन नहीं
ये मन है कहीं और नैन कहीं
जबसे तुम बिछड़ गए
हमने फागुन में मचलना छोड़ दिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ

5.

रह रह के तेरा ध्यान रुलाता है क्या करूँ
हर दिन मुझको तू नजर आता है क्या करूँ
रह रह के तेरा ध्यान...

तेरी समझ में भी नहीं आता है मेरा हाल
मेरी जबान पे भी नहीं आता है क्या करूँ
रह रह के तेरा ध्यान...

ये मुझको क्या हुआ है मुझे खुद खबर नहीं
हर वक़्त कोई याद ही आता है क्या करूँ
रह रह के तेरा ध्यान...

हैरान हूँ जब भी आँख से आँसू टपकता है
दिल की लगी को और बढ़ता है क्या करूँ
रह रह के तेरा ध्यान...

6.

प्रियतमा, प्रियतमा हो प्रियतमा
प्रियतम तेरा मेरा प्यार गुपचुप क्या जाने
संसार
लाखों के पर्दे के अन्दर जलता है अंगार
चुप-चुप क्या जाने क्या जाने
क्या जाने संसार प्रियतम तेरा मेरा प्यार

घड़ी-घड़ी जपती हूँ आधी रात को
पड़ी-पड़ी तड़पूँ मैं मुलाकात को
खड़ी-खड़ी खिड़की के सहारे करती हूँ सिंगार
गुप-चुप क्या जाने क्या जाने
क्या जाने संसार प्रियतम तेरा मेरा प्यार

इन तारों में गजरे बिखरे साँवरे
इस पगडण्डी की है ठण्डी छाँव रे
प्रेम नगर की राहों में तो बाहों का बलहार
गुप-चुप क्या जाने क्या जाने संसार
प्रियतम तेरा मेरा प्यार

उड़ जाता है पिया पपीहा बोल के
हो जाती हूँ खड़ी किवाड़िया खोल के
आधी रात दिया बुझते ही हो जाना इस पार
गुप-चुप क्या जाने क्या जाने संसार
प्रियतम तेरा मेरा प्यार

7.

ओ दुपट्टा रंग दे मेरा
रंगरेज हो गई सरसों पीली-पीली
आज हरी कल लाल चदरिया
परसों ओढूँ नीली

ओ दुपट्टा रंग दे मेरा
रंगरेज हो गई सरसों पीली-पीली

सुबह को पहनूँ तो सजनवा
आस-पास मण्डराए
शाम को पहनूँ तो बलम
घर छोड़ कहीं न जाए
रात अन्धेरी हो तो हो जाऊँ
जुगनू-सी चमकीली
ओ दुपट्टा रंग दे मेरा
रंगरेज हो गई सरसों पीली-पीली

मन में नई उमंग
अंग में चुनरी ढीली-ढीली
अपने पिया से कुछ न सीखूँ
जब न मुझे तन ढीली पड़ गई
होंठ रंगूँ मैं लाल गुलाबी
आँखों से शर्मीली
ओ दुपट्टा रंग दे मेरा
रंगरेज हो गई सरसों पीली-पीली

8.

कब आओगे कब आओगे
कब आओगे बालमा

बरस-बरस बदली भी बिखर गई
अब कब आओगे बालमा

पश्चिम से पूरब आके मेघ गए झूम के
तुम नहीं आए पापी परदेस घूम के
मेघ गए झूम के
तरस-तरस अँखियाँ भी निखर गई
अब कब आओगे बालमा

तुम को बेदर्द बालम मुझसे जी चुराना है
मेरी उमंगे नई दर्द पुराना है
मुझसे भी पुराना है
उभर-उभर मेंहदी भी उतर गई
अब कब आओगे बालमा
बरस-बरस बदली भी बिखर गई

9.

घर यहाँ बसाने आए थे हम घर ही छोड़ चले
अपना था जिन्हें समझा हमने वो भी दिल तोड़ चले
घर यहाँ बसाने आए थे हम घर ही छोड़ चले

सोचा था साजन आएँगे बहारें लाएँगे
हम एक चमन के दो पंक्षी बन जाएँगे
संध्या की बेला द्वार पे आ कर वो मुँह मोड़ चले
घर यहाँ बसाने आए थे हम घर ही छोड़ चले

जीवन में कभी एक प्यार का दीपक जलता था
मिलने के लिए दिल घुल-घुल के मचलता था
जब साथ पतंगा छोड़ दिया तो दिया अकेले जले
घर यहाँ बसाने आए थे हम घर ही छोड़ चले

10.

दूर पपीहा बोला रात आधी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाक़ात बाक़ी रह गई

मेरा दिल है उदास जिया मन्द-मन्द है
बादलों के घेरे में चाँद नजरबन्द है
बादल आए पर बरसात बाक़ी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाक़ात बाक़ी रह गई

आँख मिचौली खेली झूला झूल के झूले
बन में चमेली फूली हम बहार में भूले
पर देनी थी जो सौगात बाक़ी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाक़ात बाक़ी रह गई
दूर पपीहा बोला रात आधी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाक़ात बाक़ी रह गई

अनोखा प्यार (1948)

1.
घड़ी-घड़ी पुछो न जी
किनसे मेरी प्रीत है
घड़ी-घड़ी पुछो न

नैनों में वो हैं ऐसे
सावन में रिमझिम जैसे
रिमझिम रिमझिम
नैनों में वो हैं ऐसे
आँखों-आँखों में समझो
कौन मेरा मीत है
घड़ी-घड़ी पुछो न जी
किनसे मेरी प्रीत है
घड़ी-घड़ी पुछो न

जब तक बलम न बोले
आके न घूँघट खोले
बालमा कमाल
कहने को है तैयार
मगर कैसे कहें हम
करते है तुम्हें प्यार
मगर कैसे कहें हम

दो दिन की अभी बात मुलाकात हमारी
आँखों में छा के रहे गई तस्वीर तुम्हारी
तुमको दिया दिल दर्द भी चुपचाप सहे हम
करते है तुम्हें प्यार मगर कैसे कहे हम

कई बार लगे कहने तो शरमा के रहे गए
कहना था हमें और भी कुछ और कह गए
कहना यही है मौज में एक साथ बहे हम
करते है तुम्हें प्यार मगर कैसे कहे हम

रहते है आस-पास फिर भी आस अधूरी
हम सोचते है कब मिटे यह पास की दूरी
दो दिल है मिले क्यूँ नहीं एक होके रहे हम
करते है तुम्हें प्यार मगर कैसे कहें हम

नाग पंचमी (1953)

1.

ना जाने कैसी बुरी घड़ी में दुल्हन बनी एक अभागनी
पिया की आरती ले के चली सती होने चली वो सुहागन

अर्थी नहीं नारी का संसार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है

बजता था जीवन-गीत दो सांसो के तानों में
टूटा है जिसका तार वो सितार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है

जलना था जब तन को जलती रही चिनगरी
बुझने को अब जीवन का अंगार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है

बिछड़े ऐसे दो साथी भाव सागर की लहरों में
सजनी इस पार साजन उस पार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है

2.

मेरी चुनरी उड़ाय लिए जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा

ठण्डी हवा जो चुनरी उड़ाय
गौरी ये मुखड़ा कहाँ छुपाए
भँवरों की टोली नजर लगाए
ओ नजर सबकी बचाए लिए जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा
मेरी चुनरी उड़ाय लिए जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा

ओ ठण्डी हवा मन मेरा चंचल
बहियाँ पकड़ के
हवा कहे चल चल
चलोगी कैसे बजेगी पायल
ओ मेरी पायल बजा लियो जाए
मेरी चुनरी उड़ाय लिए जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा

ओ जब मेरे मन चमेली फूले
फागुन में खेले सावन में झूले
भादो में रानी रास्ता न भूले
ओ मेरे मन को भुलाए लियो जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा
मेरी चुनरी उड़ाय लिए जाए
फुलवारी की ठण्डी हवा

3.

मेरे अंगना में आए जब से सजन
मेरे नैनों में दीप जले प्यार के

चन्दा क्या देखूँ तारे क्या देखूँ
गोरे सजन को निहार के
मेरे अंगना में आए जब से सजन
मेरे नैनों में दीप जले प्यार के

पिहर के पिंजरे में मन मेरा पंछी
दुनिया को खिड़की से देखे
लेकिन जो प्रियतम को देखा तो
आ गई अंगना में मुखड़ा सिंगार के
मेरे अंगना में आए जब से साजन
मेरे नैनों में दीप जले प्यार के

सावन में बदरा को देखे पपीहरा
मुख से पिया पिया बोले
अपने सजन के आगे झूमकर

नाचूँ मैं पिया पुकार के

मेरे अंगना में आए जब से साजन
मेरे नैनों में दीप जले प्यार के

4.

नारी के सात परताप को देवों ने जब माना
क्यूँ न गलेगा फिर पल भर ये लोहे का दाना

मेरा जन्म किसी को रुलाए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना
भगवान अभी मैं तेरी हूँ
और माता-पिता की प्यारी हूँ
कोई उनपर आँच लगाए ना
मेरा जन्म किसी को रुलाए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना

जब जन्म दिया तो हँसने दो
मुझको भी जग में बसने दो
मन जिसका पछताए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना
मेरा जन्म किसी को रुलाए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना

मन में आग लगी
नैनों से आँसू छल-छल जा
लोहा गल-गल जा
मेरी हार मुझे तड़पाए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना
मेरा जन्म किसी को रुलाए ना
मेरी लाज को आज बचा लेना

5.

दसों-दिशाओं मुझसे न छुपाओ
सुनो देवताओं मुझे बताओ
मेरे पिया गए तो कहाँ गए
धरती से गगन तक ढूँढूँ रे
मेरे पिया गए तो कहाँ गए
मैं रो-रो उन्हें पुकारे
मुझे रुला गए तो कहाँ गए
धरती से गगन तक ढूँढूँ रे
मेरे पिया गए तो कहाँ गए

ओ चाँद सितारों तुम बोलो
ओ मेघ बयारों तुम बोलो
आशा का दिया जलाकर
फिर बुझा गए तो कहाँ गए
धरती से गगन तक ढूँढूँ रे
मेरे पिया गए तो कहाँ गए

मैं दुल्हन बनी पिया की थी
अभी रात मिलन की बाकी थी
सर फिर सिंदूर लगाकर मिटा गए
तो वो कहाँ गए
धरती से गगन तक ढूँढूँ रे
मेरे पिया गए तो कहाँ गए

हो जन्म मरण देने वाले
मौतों से मन बहलाले
पर इतना जो जीते थे
घर बुझा गए तो कहाँ गए
धरती से गगन तक ढूँढूँ रे
मेरे पिया गए तो कहाँ गए

6.

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय
आरती करो हरी हर की करो
नटवर की भोले शंकर की
आरती करो शंकर की

सिर पर शशि का मुकुट सँवारे
तारों की पायल झंकारे
धरती अम्बर डोले तांडव लीला से नटवर की
आरती करो शंकर की
कणिका हार पहनने वाले
शम्भु हैं जग के रखवाले
सकल चराचर अग-जग नाती
ऊँगली पर विषधर की
आरती करो शंकर की

महादेव जय जय जय शिव शंकर
जय गंगाधर जय डमरूधर
हे देव के देव मिटा दो
तुम विपदा घर-घर की
आरती करो हरी हर की करो
नटवर की भोले शंकर की
आरती करो शंकर की

7.
वहीं पर तुम रुक जाना अब आगे मत आओ
ओ नाग कहीं जा बसियो रे मेरे पिया को न
डसियो रे
नीले गगन में तारे तो ये यहाँ नयन मतवारे
अब तो जन्म जन्म भर मेरे दो नैना रखवारे
ओ नाग कहीं जा बसियो रे मेरे पिया को न
डसियो रे

मधुर रात को विष भरने क्यूँ आया ये पाप
करने आया रे
ओ नाग कहीं जा बसियो रे मेरे पिया को न
डसियो रे

आज हमारी सुहाग रात है हँस कर भोर करेंगे
डसना है तो डंस दो हम तो साथ मरेंगे
ओ चैन से जा के बसियो रे मेरे पिया को न
डसियो रे
ओ नाग कहीं जा बसियो रे मेरे पिया को न
डसियो रे

शिव रात्रि (1954)

1.
आ गई महाशिवरात्रि पधारो शंकर जी
आरती उतारें पार उतारो शंकर जी हो
पधारो शंकर जी

तुम नैन नैन में हो मन मन में धाम तेरा
हे नीलकण्ठ है कण्ठ, कण्ठ में नाम तेरा
हे देवों के देव जगत के प्यारो शंकर जी
पधारो शंकर जी...

तुम राज महल में तुम ही भिखारी के घर में
धरती पर तेरे चरण, मुकुट है अम्बर में
संसार तुम्हारो एक हमारो शंकर जी
पधारो शंकर जी...

तुम दुनिया बसाकर भस्म रमाने वाले हो
पापी के भी रखवाले भोले-भाले हो
दुखियों में भी दो दिन तो गुजारो शंकर जी
पधारो शंकर जी...

2.
अजी बे पिए मैं मस्त चलूँ झूम-झूम के
नाचूँ घूम-घूम के
जिन्दगी को मौत करूँ चूम-चूम के
हो चलूँ झूम-झूम के

हो तन में भेष की लचल
हो मेरे रैन बे पलक
मैं हू मौत की झलक छूपे मुझसे कब तलक़
अजी बे पिए मैं मस्त चलूँ झूम-झूम के
नाचूँ घूम-घूम के
जिन्दगी को मौत करूँ चूम-चूम के
हो चलूँ झूम-झूम के

हो मेरी चाल में लहर, पूरी देह है कमर
मेरी साँस में जहर, कौन मुझे देखकर
अजी बे पिए मैं मस्त चालूँ झूम-झूम के
नाचूँ घूम-घूम के
जिन्दगी को मौत करूँ चूम-चूम के
हो चलूँ झूम-झूम के

हो इस तरह झूम-झूम सदा घूमती हूँ मैं
जिसकी मौत आती हैं, उसे चूमती हूँ मैं
अजी बे पिए मैं मस्त चालूँ झूम-झूम के
नाचूँ घूम-घूम के
जिन्दगी को मौत करूँ चूम-चूम के
हो चलूँ झूम-झूम के

खुशबू (1954)

1.

औरत की जिन्दगानी दुनिया तेरी नादानी

रातों को जले दीपक जुगनू
और जीवन भर दिन-रात जले
बिरहन रातों की रानी
औरत की जिन्दगानी दुनिया तेरी नादानी

चन्दा जैसे गोरे चेहरे पर हिरनी की है रानी
और लाल गुलाबी गाल पर काली आँखों का पानी
औरत की जिन्दगानी दुनिया तेरी नादानी

घूँघट पे पलकें, पलकों में शर्मीली मेहरबानी
मन लेकर जग बदनाम करे तन लेकर बेईमानी
औरत की जिन्दगानी दुनिया तेरी नादानी

जब रूप जवानी जाती है रह जाती यही निशानी
टूटी चूड़ी सरहाने पायदानी सुरमेदानी
औरत की जिन्दगानी दुनिया तेरी नादानी

2.

एक लड़का एक लड़की
एक लड़का घर से निकल गया एक लड़की घर से निकल गई
दुनिया से दोनों दूर चले दोनों की दुनिया बदल गई

दोनों उमर के कच्चे थे दिल उनका बिल्कुल बच्चा था
वो लाख बहाने करते थे पर प्यार उनका सच्चा था
दिल उनका बिल्कुल बच्चा था

आ गई जवानी की आँधी बुलबुल-बुलबुल फिसल गई
दुनिया से दोनों दूर चले दोनों की दुनिया बदल गई
एक लड़का एक लड़की...

अरमानों की रंगिनी में वो हँसने हँसाने को निकले
दिल में प्रियतम का प्यार बसा संसार बसाने को निकले
फुलों पर तितली उड़ती थी उनकी भी तबीयत मचल गई
दुनिया से दोनों दूर चले दोनों की दुनिया बदल गई

जब कभी बहार आएँगी देखेगा जमाना खिड़की से
लड़की मानेगी लड़के से लड़का मानेगा लड़की से
दुनिया में प्रीत ऐसी जोड़ी एक ओर और निकल गई
दुनिया से दोनों दूर चले दोनों की दुनिया बदल गई

3.

कानी आँखों की इज्जत है और तिरछी नजर बदनाम है
इन लाखों आँखों वालों में एक मीठी नजर बदनाम है
अरे! वाह रे बुड्ढे...

इन मोटे-मोटे सेठों में बस पतली कमर बदनाम है

अरे! वाह रे बुड्ढ़े...

जब दुनिया फूल बनती कहते बहारें आ गई
लेकिन हम जैसी हसीनों की पतझड़ सी उमर
बदनाम है
अरे! वाह रे बुड्ढ़े...

जो गली-गली दिल फेंका है उसको कहते हैं
आशना
जो एक जगह दिल देता वो दुनिया भर
बदनाम है
अरे! वाह रे बुड्ढ़े...

बोलो देखें हम किधर-किधर किस-किस का
कहना माने
वो इश्क उधर ये हुस्न इधर बदनाम है
इन लाखों आँखों वालों में

4.
कहते हैं ज्ञानी देख ले दुनिया, दुनिया बनाई
राम ने
लेकिन यहाँ हर आदमी भूखा पड़ा है सामने
नंगा पड़ा सामने
जीने की मुसीबत है यहाँ
मरने का इत्मिनान है
धुँधला-धुँधला आसमान है

नीला-नीला है तमाशा धरती पर छाया
कुहासा
क्या इसी कुहासे के अन्दर हम दुखियों का
भगवान है
धुँधला-धुँधला आसमान है

रातों को इसके घूमे रे चमकीले लाखों तारें
लेकिन जब दिन को देखूँ तो तारों की गली
सुनसान है
धुँधला-धुँधला आसमान है

भगवान को पुछो रहते हो कहाँ
तू दुनिया बनाकर छूपा कहाँ
जब से दिन-रात बनी तबसे तुझे ढूँढ़ रहा
इन्सान है
कहते तू रखवाला है, तू सबसे ताकतवाला है

5.
औरत मरी तो मर्द को बीबी नई मिल जाएगी
पर जो जन्म देकर मरी वो माँ कहाँ से
आएगी
दुनिया में किसका बाप है जो घर की बर्बादी
करे
दो-दो बेटियाँ जवान हुईं वो अपनी ही शादी
करे
हमारा ऐसा बाप है...

आखिर तक न शादी करने का बापूजी ने
वादा किया
लेकिन माँ के मरते ही, बापू ने हमको धोखा
दिया
है कौन वह बेदर्दी हरदम हमदर्दी का दम भरे
दो-दो बेटियाँ जवान हुईं वो अपनी ही शादी
करे

भूखे तड़पते हम रहें और आहें भर के माँ मरीं
सूखे भींगते आँसू के बापू जी लाए दूसरी
है कौन है जो बुढ़ापे में मुहब्बत करने को मरे
दो-दो बेटियाँ जवान हुईं वो अपनी ही शादी
करे

अब क्या करें हम लडकियाँ जवानी में जाएँ
कहाँ
जब बाप ही बैरी हो तो हौसला पाएँ कहाँ
है कौन वो शैतान जो भगवान से भी न डरे
दो-दो बेटियाँ जवान हुईं वो अपनी ही शादी
करे

तिलोत्तमा 1954

1.

उल्लू अकल के वो अकल झाँके रात दिन
ओ ठोकर मिले तो कर दे
चक्कर ही काँटे रात दिन
जो फूल खिलते है उन्हे
भँवरे ही चूमे रात दिन
अजी बगिया है अपने बाप की
हम क्यूँ न घूमे रात-दिन
दुनिया न तेरे बाप की न मेरे बाप की
अच्छा नहीं होगा जो हमसे टिप-टाप की

भगवान ने हिसाब देखा जोड़ी मिलाई
हर मर्द के लिए यहाँ एक औरत बनाई
औरत को मिला रूप उसने रंग जमाया
और मर्द को अन्दर ही अन्दर बन्दर बनाया

दुनिया न तेरे बाप की न मेरे बाप की
पर भँवरे के लिए खिली कलियाँ गुलाब की
दुनिया न तेरे बाप की न मेरे बाप की
अच्छा नहीं होगा जो हमसे टिप-टाप की

दिल तुमने दिया हमने लिया खता क्या हुआ
तेरे नैन मिले मेरे नैन मिले नाता क्या हुआ
नाता क्या हुआ मुझसे भी नादानी हो गई
तू गोरी बनी काले की पटरानी हो गई

दुनिया न तेरे बाप की न मेरे बाप की
मैं काहे की रानी बनूँ काले साँप की
दुनिया न तेरे बाप की न मेरे बाप की
अच्छा नहीं होगा जो हमसे टिप-टाप की

2.

जब जब निकलेगा चाँद मैं आऊँगी तेरे सामने
मैं सोलह बरस की चाँदनी चमकुँगी तेरे
सामने

बादल दल में बिजली नाचे मन, फुलों में
तितली नाचे
मैं चुनरी वाली कामिनी नाचूँगी तेरे सामने
मैं सोलह बरस की चाँदनी चमकुँगी तेरे
सामने

तुमसे उलझे मेरे नैना, मैं तेरे पिंजरे की मैना
मैं चाँद सुबह की रागिनी, आऊँगी तेरे सामने
मैं सोलह बरस की चाँदनी चमकुँगी तेरे
सामने

मैं याद मधुर बरसातों की निन्दिया हूँ ठण्डी
रातों की
पूनम हूँ घूँघट पे चली, छाउँगी तेरे सामने
मैं सोलह बरस की चाँदनी चमकुँगी तेरे
सामने

3.

मैनें पायल बजाई जब झन-झन झन,
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन

देखा हमारा यूँ आना जाना
फिर भी किसी ने नहीं पहचाना,
मैनें चूड़ियाँ बजाई जब ख़न ख़न ख़न,
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन
मैने पायल बजाई जब झन झन झन,

मैं देखूँ दर्पण रूप निहारूँ
कोई न आए लाख पुकारूँ,
मैने आँचल उड़ाया जब संग संग संग,
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन

मैनें पायल बजाई जब झन झन झन
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन

मोती की माला, सोने के गहने,
काजल लगाया कंगना भी पहने
मेरा बिछुवा जो बोला छन छन छन
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन
मैनें पायल बजाई जब झन झन झन
अजी डोलने लगा सुनने वालों का मन

4.
नई रानी जी का राज हो गया
सिर पे ताज हो गया
अजी बरसों का सोचा हुआ आज हो गया

राजा जी के पिंजरे में तुम सोने की चिड़िया
इतनी बड़ी हवेली में तुम छोटी-मोटी गुड़िया
गुड़िया भी रानी बन जाए माने जो सांवरिया
नई रानी जी का राज हो गया
ये अंदाज हो गया
अजी बरसों का सोचा हुआ आज हो गया
नई रानी जी का राज हो गया
सिर पे ताज हो गया

इतना इतराना न जी हमसे शरमाना ना
सखियों की अँखियों से जिया भरमाना न
तू चाहे जो बोले मैं कहूँगी न ना ना
नई रानी जी का राज हो गया
ये मिजाज हो गया
नई रानी जी का राज हो गया
अजी बरसों का सोचा हुआ आज हो गया
सिर पे ताज हो गया
नई रानी जी का राज हो गया

तुलसीदास (1954)

1.
राधा जी के कुँवर कन्हैया हो
मेरी नैया का कौन खेवैया हो
तेरी नैया के राम खेवैया

अच्छा बता दो चाँद गगन का, किस दुल्हन का टीका है
संध्या ने सिन्दूर उड़ाया, फिर क्यूँ फीका-फीका है
ओ रानी चाँद उसी का टीका है
जल दर्पण में देख के तुझको, चन्दा फीका-फीका है
तेरे चाँद के रास-रचइया हो
मेरी नैया का कौन खेवैया
तेरी नैया के राम खेवैया

अच्छा बता दो लहरें उठकर, लहरों से क्यूँ टकराएँ
किसको देख शराबी जैसे उठ आएँ गिर-गिर जाएँ
एक चाँद तुम लाखों लहरें, आपस में लड़ती आएँ
तुझे पकड़ने को लहरों के, कन्धों पर चढ़ती जाएँ
खेलूँ लहरों से मैं ता-था-थैइया हो,
मेरी नैया का कौन खेवैया
तेरी नैया के राम खेवैया
राधा जी के कुँवर कन्हैया हो,
मेरी नैया का कौन खेवैया
हो तेरी नैया के राम खेवैया

2
मुझे अपनी शरण में ले लो राम
मुझे अपनी शरण में ले लो राम
लोचन मन में जगह न हो तो
जुगल चरण में ले लो राम

जीवन देकर जाल बिछाया
रच के माया नाच नचाया
चिन्ता मेरी तभी रुकेगी
जब चिन्तन में ले लो राम

तूने लाखों पापी तारे, मेरी बारी बाजी हारे
मेरे पास न पुण्य की पूँजी
पादपूजन में ले लो राम

दर-दर भटकूँ घर-घर अटकूँ
कहाँ कहाँ अपना सर पटकूँ
इस जीवन में मिलो न तुम तो
मुझे मरण में ले लो राम
मुझे अपनी शरण में ले लो राम

3
मेरी लाज रहे तेरा राज रहे
हे महादेव मेरी लाज रहे

जहर कण्ठ में नाग गले में आग नयन में
फिर भी अमृत तुम्हीं लूटते इस त्रिभुवन में
आज भक्त पर भीर पड़ी है
फिर तुम कहाँ बिराज रहे
मेरी लाज रहे तेरा राज रहे
हे महादेव मेरी लाज रहे

नाथ बता दो इस मन्दिर में विश्वनाथ हो
आज दिखा दो कोई न जिसका उसके साथ हो
रही ग़रीबी भक्तों की
फिर कैसे ग़रीब निवाज रहे
मेरी लाज रहे तेरा राज रहे

हे महादेव मेरी लाज रहे

भेंट धरूँ क्या राम भक्त से रामायण लो
नारायणा की अमर कथा को नारायण लो
राम सखा तुम रामदास मैं
कुछ तो नाथ लिहाज रहे
मेरी लाज रहे तेरा राज रहे
हे महादेव मेरी लाज रहे

4
रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना
मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना

जाऊँ कहीं भी तो मन यहीं छूट जाए
अँखियों से अँखियों का तार टूट जाए
मैं तो बना पपीहा तेरे प्यार में
जियूँ कैसे मैं तुमको पुकारे बिना
रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना
मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना

आके बसन्त नई कलियों से खेले
चन्दा के घर में लगे सितारों के मेले
कैसे देखेंगे नैना नई चाँदनी
नई चुनरी में तुमको शृंगारे बिना
रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना
मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना

5
नाम तुम्हारा हम रटते हैं
मान भक्त का तुम रखते हो
आज बचा के सुहाग सती का
मेरा वचन निभा सकते हो
कहाँ छूपे हो राजा राम आजा राम
दीपक बुझा जला जा राम

नर नारी से है संसार एक बिना दूजा बेकार
पति उस पार सती इस पार कैसे पार करे
मझधार
छुटता साथ मिला जा राम
दीपक बुझा जला जा राम

रोको इन्हें नहीं जाने दो अपने घर को फिर
आने दो
दो दिन तो तुम इठलाने दो तेरी दया पर
इतराने दो
मेरा वचन निभा जा राम आजा राम
दीपक बुझा जला जा राम
कहाँ छूपे हो राजा राम आजा राम
दीपक बुझा जला जा राम

6
है धन्य सुहागन वो जिसने
भारत को तुलसीदास दिया
मेंहदी महावर रच कर भी
सुख सपनों से सन्यास लिया
है धन्य सुहागन वो जिसने
भारत को तुलसीदास दिया

तुमने भी कंगन पहने थे
तुमने भी बजाई थी पायल
तुमने भी किया था नैनों से
कुछ दिन तो सँवारिया को घायल
मिलने आए तुमसे प्रियतम
तो भेज राम के पास दिया
है धन्य सुहागन वो जिसने
भारत को तुलसीदास दिया

सच मानों तुलसी न होते
तो हिन्दी कहीं पड़ी होती
उसके माथे पर रामायण की
बिंदी नहीं जड़ी होती

बीसों बसन्त देकर जिसने
बदले में बस चौमास लिया
है धन्य सुहागन वो जिसने
भारत को तुलसीदास दिया

जाओ कवि जब तक राम अमर
दुनिया में तेरा नाम अमर
दुनिया पूजेगी रघुवर को
गूँजेगा तेरा सर घर-घर
जीवन तो दिया हरि को
हमको हरि-लीला का इतिहास दिया
है धन्य सुहागन वो जिसने
भारत को तुलसीदास दिया

7
नैया जल्दी ले चलो मुझे सैया के अंगना
मेरे लिए आज वो ले आए होंगे कंगना

सोने के हो कंगना चाँदी की हो बाली
मखमल की चोली रेशम की हो जाली
सारा गाँव देखेगा मेरा चुनरी को रंगना
मेरे लिए आज वो ले आए होंगे कंगना

आए होंगे बलमा झुमकी लाए होंगे
धरके सिरहाने वो मुस्कुराए होंगे
कंगना बोले हाथों में तो बोले अंग-अंग ना
मेरे लिए आज वो ले आए होंगे कंगना

कंगना बजाऊँगी अंगना सजाऊँगी
अँखियों से आरती करूँगी लजाऊँगी
मैं हँसूँगी लजाऊँगी
साँस रहते छोड़ूँगी मैं सजना का संग न
मेरे लिए आज वो ले आए होंगे कंगना
नैया जल्दी ले चलो मुझे सैया के अंगना
मेरे लिए आज वो ले आए होंगे कंगना

8
अखियाँ प्यासी की प्यासी
जीवन भर आँसू में डूबी
साजन के बिना मेरा जीवन
है चाँद बिना पूरनमासी
जीवन भर आँसू में डूबी

होती मन में आहट तेरे आने की
पर तुमने ठानी दूर चले जाने की
तेरे चरणों को तरस रही
तेरे ही चरणों की दासी
जीवन भर आँसू में डूबी

जीवन न सही दो दिन के लिए तो आओ
दो दिन न सही पलछिन के लिए मिल जाओ
मेरा एक जन्म तो बना जाओ
फिर अपना बनाओ चौरासी
जीवन भर आँसू में डूबी
पर अखियाँ प्यासी की प्यासी

सल्तनत (1954)

1.

हम थे इन्तजार में घायल तेरे प्यार में
बिछड़े हुए बालमा मिल गए बहार में
हम थे इन्तजार में. . .

मौसम मज़ेदार था तबीयत बेक़रार थी
तुम नहीं थे साथ में चाँदनी बेकार थी
था असर पपीहे की प्यार की पुकार में
बिछड़े हुए बालमा मिल गए बहार में
हम थे इन्तजार में. . .

दो दिलों के साज पे एक राग छेड़ दो
ज़िन्दगी हसीन हो वो बिहाग छेड़ दो
जीत है सितार में दर्द तार-तार में
बिछड़े हुए बालमा मिल गए बहार में
हम थे इन्तजार में. . .

मैं सोलह सिंगार में तारों भरी रात हूँ
खुश्बू में डूबी हुई प्यार की सौगात हूँ
झूमती हूँ रात भर तारों की कतार में
बिछड़े हुए बालमा मिल गए बहार में
हम थे इन्तजार में. . .

श्री कृष्ण भक्त 1955

1.
कोई भोर को जाए रे कोई शाम को
जब तक सांस है सुमीर ले राधे श्याम को
कोई भोर को जाए रे कोई शाम को

मिट्टी में मिट्टी मिले न रहे नाम भी
पाँचो पाण्डव न रहे चल दिए राम भी
चलो कोई भी रास्ता
सब रास्ते जाए परम धाम को
कोई भोर को जाए रे कोई शाम को

मेरे मरने से अगर कोई बचे पाप से
मुझको फिर ममता होगी क्यों अपने आप से
आए हो जिसके लिए
पूरा तो कर लो उसी काम को
कोई भोर को जाए रे कोई शाम को

जिसने दिया है जन्म हमें वही मारे
मरते किसी से नहीं उसके दुलारे
जब तक है प्राण तन में
मैं तो पुकारूँ राधे श्याम को
राधे श्याम राधे श्याम राधे श्याम

2.
रिमझिम बरसात रही अन्धियारी रात रही
आए अवतार ले के कृष्ण-कन्हैया
जग के रचइया
रिमझिम बरसात रही अन्धियारी रात रही

कंस के अत्याचारों से मचा हाहाकार था
नाम ले भगवान का वो होता गुनेहगार था
होता गुनेहगार था, मिलता कारागार था
अपने से खुले ताले, सो रहे पहरे वाले
आए अवतार ले के कृष्ण-कन्हैया जग के रचइया
रिमझिम बरसात रही अन्धियारी रात रही

घोर पानी बरसा तो पुकारा बाल ग्वाल ने
ऊँगली पे पर्वत उठा के रोका नन्दलाल ने
रोका नन्दलाल ने, गोकुल के गोपाल ने
करते थे ज़ुल्म पापी पापों से धरती काँपी
आए अवतार ले के कृष्ण-कन्हैया जग के रचइया
रिमझिम बरसात रही अन्धियारी रात रही

द्रौपदी के लाज रखे लाज के बचइया
सारथि अर्जुन के बने बाँसुरी बजइया
बाँसुरी बजइया, सैयाँ के जगइया
जब जब मुसीबत बढ़ी, जनता पे भीड़ पड़ी
आए अवतार लेके कृष्ण-कन्हैया जग के रचइया
रिमझिम बरसात रही अन्धियारी रात रही

3.
तुम आँख मिचौली खेल रहे
मैं सबके ताने झेल रहा
ओ स्वामी होकर न मानो तो
हम में तुम में क्या मेल रहा
तरसते हैं कब से नैन भोले-भाले
जरा हँस के दर्शन दे-दे मुरली वाले

बिना देवता के बुझी आरती है
तेरी लाज तुझको ही ललकारती है
मेरी लाज न रख तो अपनी बचा ले
जरा हँस के दर्शन दे-दे मुरली वाले

तुम्हारा है छुपने का धन्धा पुराना

नया कब से सीखा ये मूरत चुराना
तेरा आसरा हैं रुला दे हँसा ले
जरा हँस के दर्शन दे-दे मुरली वाले

करोगे कन्हैया दया में जो देरी
सचाई रहेगी न मेरी न तेरी
कसम तुझको हैं अबकी निभा ले
जरा हँस के दर्शन दे-दे मुरली वाले

वामन अवतार 1955

1.
जल जल जल जल रे दीपक जल
काली-काली रात निराली
आज दीवाली मतवाली
अँधियारों का काला परदा ज्ञान के दीपक
चिर निकल महलों से लेकर कुटियों तक
आशा के दीपक मचल-मचल
जल जल जल जल रे दीपक जल

टिम टिम टिमा टिम टिम टिम टिमा टिम
टिम
देख तारों का चन्दा पर झूला झूलो
पल में हँसीले पल में लजीले तेरे दो नैना
चमकीले
खिल-खिल के रंग बदल
जल जल जल जल रे दीपक जल

तुमसे मिलकर सुर मेरा पंचम
नाचे मन का मोर खुशी में छम छम छमा
छम
छेड़ो सरगम तुम्हारी हो छेड़ूँ सरगम तुम्हारे
हम
ओ मधुर-मधुर सुर की सरगम हर पल जन्मी
उछल-उछल
जल जल जल जल रे दीपक जल

काली-काली रात निराली आज दीवाली
मतवाली
जल रे दीपक जल जल जल रे दीपक जल
जब से हुई है झतम दीवाली गाओ बजाओ दे
दो ताली

2.
आजा रे आजा रे आजा रे
भगवान तेरी दुनिया तुझको दिन-रात पुकारे
आजा
सागर के किनारे आजा
भगवान तेरे बिन कौन हमें फिर पार उतारे
आजा
सब के रखवारे आजा

तेरी दुनिया में देव-दुखी है
राज निशाचर करते हैं
ये एक पिता की संताने आपस मे लड़ते-मरते
हैं आजा
भगवान तेरे बिन कौन हमें फिर पार उतारे
आजा
सब के रखवारे आजा

है धर्म इधर महापाप उधर
ओ नाथ रहोगे कहो किधर
है शान्ति इधर संग्राम उधर
है भक्ति जिधर भगवान उधर आजा
भगवान तेरे बिन कौन हमें फिर पार उतारे
आजा
सब के रखवारे आजा

उठो समर को कमर कसो देव का राज नहीं
जाए
भाई-भाई में मेल करा दो घर की लाज नहीं
जाए आजा
भगवान तेरे बिन कौन हमें फिर पार उतारे
आजा
सब के रखवारे आजा

3.
मैं हूँ तारों की रानी नाम है मेरा चमक
चाँदनी

चमक चमक छम चमक चाँदनी

देख मेरे नयन निराले लगे झूमने सब मतवाले
हूँ मैं करूँ सदा मनमानी नाम है मेरा चमक
चाँदनी
चमक चमक छम चमक चाँदनी

रूम झूम झूम झूम रूम झूम
झांझर बजा दूँ झंकार के ऐसी नचूँ
मैं हूँ मन की मस्तानी नाम है मेरा चमक
चाँदनी
चमक चमक छम चमक चाँदनी

ओ राग निराला रंग निराला चाल मेरी
नादानी
पाँव पे मेरे चाँद टीका चाल में है नादानी
नाम है मेरा चमक चाँदनी
चमक चमक छम चमक चाँदनी

4.
धरती के कोने-कोने से नित आवाज यही आए
मेरे घर पर भी तो सोने-चाँदी वर्षा हो जाए

झनन-झनन झन करके
दर पर तेरा पूजन धन बरसता
करो धनी निर्धन की झोली
घर-घर बरसो लक्ष्मी माता
झनन-झनन झन करके
दर पर तेरा पूजन धन बरसता

भूखे को भर-भर अनाज दो
नंगे की तुम कृपा लाज दो
बेघर को धरती का राज दो
दुख में सुख का साज दो

ओ सावन भादो के दिन फिर से
घर-घर बरसो लक्ष्मी माता
करो धनी निर्धन की झोली
घर घर बरसो लक्ष्मी माता

जो जन-जन में प्रीत निभाते
न्याय नीति की रीत निभाते
सुख में भी सच्चे रह जाते
मुझ से वही सदा धन पाते
ओ इतना कर लो तो बन जाए
भीख माँगा भी दानी दाता

मानेंगे हम बात तुम्हारी करो चाँदनी रात
हमारी
चाँदी की पूनम में बनके तारे जैसे सब नर-
नारी
ओ आँगन-आँगन नाचूँ छप्पर
सर पर बरसो लक्ष्मी माता
करो धनी निर्धन की झोली
घर घर बरसो लक्ष्मी माता
घर घर बरसो लक्ष्मी माता

5.
लगा कौन-सा नशा जी नस-नस में नहीं
अजी आज मेरा मन मेरे बस में नहीं

मैने देखा ही नहीं कब सवेरा हो गया
मेरे कानों ने सुना कोई मेरा हो गया
हुआ आज जो सोलह बरस में नहीं
अजी आज मेरा मन मेरे बस में नहीं
लगा कौन-सा नशा जी नस-नस में नहीं

मिला चाँद मुझे सितारों के पिछे क्यों पड़ूँ
लगा एक से दिल हजारो के पिछे क्यों पड़ूँ
तुम लाखों में एक पाँच दस में नहीं

अजी आज मेरा मन मेरे बस में नहीं
लगा कौन-सा नशा जी नस-नस में नहीं

चलो चाँदनी में हम आँख मिचौली खेलेंगे
आँखो से मन में उतरे घर से जाने न देंगे
होगी बात कौन-सी आपस में नहीं
अजी आज मेरा मन मेरे बस में नहीं
लगा कौन-सा नशा जी नस-नस में नहीं

6.
मेरी सूरत भोली-भाली रे
मैं चालू रे चाल मतवाली रे
भर आई अमृत प्याली
पी लो पी लो पी लो सुधा रस प्याली

मैं सबकी हूँ मेरे सारे
मेरे नैना करे रे इशारे
इनमें अमृत की लाली रे
प्याली से प्याली ढली रे
अजी पीलो मैं जाने वाली
पी लो पी लो पी लो सुधा रस प्याली

जितना चाहो उतना पी लो
जितना चाहो उतना जी लो
रोतो को हँसने वाली रे
मरतों को जीलाने वाली रे
मैं आई पीलाने वाली
पी लो पी लो पी लो सुधा रस प्याली

महासती शिवरात्रि (1955)

1.

जग की रखवाली करने वाली जगदम्बे मैया
महिमा तुम्हारी है निराली जगदम्बे मैया
जग की रखवाली करने वाली जगदम्बे मैया

तेरी दया से जीते है मैया तेरी
तेरे भरोसे चलती है नैया
घर-घर में तुझसे है दीवाली जगदम्बे मैया
महिमा तुम्हारी है निराली जगदम्बे मैया
जग की रखवाली करने वाली जगदम्बे मैया

दुखियों के घर में सुख बरसा दे
अँधियारे घर में दीये जला दे
सबकी मिटा दे राते काली जगदम्बे मैया
महिमा तुम्हारी है निराली जगदम्बे मैया
जग की रखवाली करने वाली जगदम्बे मैया

चरणों में बैठे आस लगाए
विनती हमारी खाली न जाए
ले लो ये आरती की थाली जगदम्बे मैया
महिमा तुम्हारी है निराली जगदम्बे मैया
जग की रखवाली करने वाली जगदम्बे मैया

2.

चोरी-चोरी चाँदनी में चकोरी चली आए
गोरा-गोरा रंग वाला चाँद ही बुला लाए

कहते हैं प्यार जिसको, मन की लगन है जी
मीठी-सी जलन है
अनजाने राहियों का होता मिलन हैं
ऐसा चलन हैं
ओ तारों भरी रात मन के तारों को मिला
जाए
चोरी-चोरी चाँदनी में

ओ बहती हैं प्रेम गंगा
तुम भी किनारा जी मैं भी किनारा
लहरें लगाती नाता
तुमसे हमारा ओ हमसे तुम्हारा
ओ प्यार है तो किसी को भी
कोई न छुड़ा न पाए
चोरी-चोरी चाँदनी में

नवरात्रि (1955)

1.

बहारें आएँगी होटों पे फूल खिलेंगे
सितारों को मालूम था हम दोनों मिलेंगे
बहारें आएँगी

सितारों को मालूम था चिटकेगी चाँदनी
सजेगा साज प्यार का बजेगी पैंजनी
बसोगे मन में तुम तो मन के तार बजेंगे
सितारों को मालूम था हम दोनों मिलेंगे
बहारें आएँगी

मिला के नैन हम-तुम दो से एक हो गए
अजी हम पलकें तुमपे उठाते ही खो गए
दो से एक हो गए
नैना झुकाएँगे जिया निछावर करेंगे
सितारों को मालूम था हम दोनों मिलेंगे
बहारें आएँगी

कली जैसा कच्चा मन कहीं तोड़ न देना
बहारों के जाने पे कहीं छोड़ न देना
बिछड़ने से पहले हम अपनी जान दे देंगे
सितारों को मालूम था हम दोनों मिलेंगे
बहारें आएँगी

श्री गणेश विवाह (1955)

1.

भगवान तुमने क्या किया
यह कौन-सा बदला लिया
जिसको दिया तुमने जन्म
उसका ही जीवन ले लिया
भगवान तुमने क्या किया

माना की तेरा अब जग सारा
चन्दा सूरज से उजियारा
पर जिसे तुम्हीं ने बुझा दिया
तेरे ही घर का था दीया
भगवान तुमने क्या किया

तुम खेल मरण का यूँ खेलो
जब उमर ढले तब तन लेलो
पर भोलेनाथ कहाँ तुमने
एक भोला बचपन ले लिया
भगवान तुमने क्या किया

कहते हैं तुम रखवाले हो
जो माँगो देने वाले हो
पर सदा चरण जो धोती रही
उस नारी का धन ले लिया
भगवान तुमने क्या किया

सती मदालसा (1955)

1.
कमजोर समझ के गईया पे हाथ न उठाओ
गईया लाखों की है मईया
भईया दूर हट जाओ सामने न आओ
कमजोर समझ के गईया पे हाथ न उठाओ रे
गईया लाखों की है मईया भईया दूर हट
जाओ रे

गईया वो माता है जिसके तन में देवता रहे
इसकी सेवा से घर-घर में गंगा दूध की बहे
ऐसी माता को सता के माँ का दूध न लजाओ
रे
गईया लाखों की है मईया भईया दूर हाथ
जाओ रे

तेरी दीवाली में जलते घी के दीये
घर की लाजमी को क्यूँ मरे पापी पेट के लिए
अपना मूँह काला करके औरों के दीयों को न
भुजाओ रे
गईया लाखों की है मईया भईया दूर हाथ
जाओ रे

पनघट पे जिंदा रह के ये दुनिया को जिलाती
अपने बछड़े का हक छीन तुमको दूध पिलाती
जिसका मक्खन खाते तुम उसपे तलवार न
चलाओ
गईया लाखों की है मईया भईया दूर हाथ
जाओ रे
सामने न आओ रे

2.
राजाजी जरा समझो पायल की बोली
चितवन की बानी उतनी न जानी
पर खोई मेरी जानी काजल की बोली
राजाजी जरा समझो पायल की बोली

पायल की बोली समझे सुनने वाला
छम-छम के फेर में मन मतवाला
तुम भी तो सुनो मन की कोयल की बोली
जी राजाजी जरा समझो पायल की बोली

गाए जो तेरी मन की कोयलिया
उसको बजाए मेरी पायलिया
समझेगी मोरी मीठी बादल की बोली
राजाजी जरा समझो पायल की बोली

अँखियो को अँखिया समझे उलझ के
दिल का दर्द जानो तुम भी समझ के
बोली ही नहीं जाए घायल की बोली
राजाजी जरा समझो पायल की बोली

राज कन्या (1955)

1.

चाँदी लूटा ले चाहे सोना बहा ले
किस्मत का लिखा हुआ टले न टाले

वो है खिलाड़ी तू है खिलौना
जीवन है तेरा होनी का होना
हँसना और रोना
तिलक लगाले चाहे गंगा नहाले
किस्मत का लिखा हुआ टले न टाले
चाँदी लूटा ले चाहे सोना बहा ले

फसलों की बाली फूली की प्याली
करता वही है भर-भर के खाली
चाँदी की थाली
काग़ज लिखा ले चाहे पोती पढ़ा ले
किस्मत का लिखा हुआ टले न टाले
चाँदी लूटा ले चाहे सोना बहा ले

मतलब के फेरे में मैं-मैं न करना
ना जाने कब हो तुझको गुजरना
जीते जी मारना
जन्तर जगा ले चाहे मन्तर पढ़ले
किस्मत का लिखा हुआ टले न टाले
चाँदी लूटा ले चाहे सोना बहा ले

2

तस्वीर नयन में थी जिनकी वो आंसू बनकर बिखर गए
पहचान हुई अनजानों में जब प्यार हुआ तो बिछड़ गए

छेड़ा आकर के बहारों ने जो गीत गया वो गीत कहाँ
संगीत बनी नस-नस में बजी जो प्रीत यहाँ वो प्रीत वहाँ
उलफत ने हमें हँसने को कहा जब हँसने लगे तो उजड़ गए
पहचान हुई अनजानों में जब प्यार हुआ तो बिछड़ गए

कल का सिंदूर अभी सर पर पर सँवारिया का पता नहीं
लाखों तारों की दुनिया में अपनी दुनिया का पता नहीं
नजरो में जिनको बाँधा था भीगी पलकों से उतर गए
पहचान हुई अनजानों में जब प्यार हुआ तो बिछड़ गए

मौजों में मचलते खुशियों का रंगीन बुलबुला फुट गया
सामने रहे दो दिल मचले वो आज सिलसिला टूट गया
तुम आसूँ लिए इधर आए वो सर्वस्व लेकर उधर गए

3

हाथों से दिल थाम के पायल झंकार दी
हमने जिन्दगानी सारी नाच के गुजार दी

अपनी दुनिया छुपी रही अपने दिल के राज में
साँझ भरा दौर चला साज की आवाज में
देखा जिसने घूम के तो झूम के बहार दी
हमने जिन्दगानी सारी नाच के गुजार दी

महफिल सजा है तो लब पे हँसी आ गई
घुंघट को हटा के देखा तो चाँदनी छा गयी

ऐसे बहारों की नजर देख के उतार दी
हमने जिन्दगानी सारी नाच के गुजार दी

आँसुओ में हँसते आए बढ़ते आए गीत में
जीत मिली हार में तो हार मिली जीत में
किस्मत ने हमें हमने किस्मत को ठोकर मार दी
हमने जिन्दगानी सारी नाच के गुजार दी

4

इस दो रंगी दुनिया में कहीं तो धोखा खाए
अरे प्यार करके अजनबी से अलबेली पछताए ना
हाए राम ये न कहो हमसे सुना जाए ना

फूल जैसा रूप तेरा प्यार की उमर है
लेकिन तेरे दूल्हे का घर है न दर है
जहाँ पिया मेरा वही पे बसेरा
कौन दुल्हन होगी जो बलम का घर बसाए ना
अरे प्यार करके अजनबी से अलबेली पछताए ना
हाए राम ये न कहो हमसे सुना जाए ना

जब तुझे देखूँ रानी मैं तो पड़ूँ सोच में
कब का अंगूर कहाँ इस कौवे की चोंच में
जिसने सिंदूर दिया वही मेरा प्राण पिया
नाता लगा तुमसे तो जमाना मुझे भाए ना
अरे प्यार करके अजनबी से अलबेली पछताए ना
हाए राम ये न कहो हमसे सुना जाए ना

नारी के लिए तो उसका पति भगवान है
तेरे पति देव की तो दुनिया ही मैदान है
सुख चाहे दुख हो पास तेरा मुख हो
ठीक है पर माथे का लिखा कोई मिटाए ना
हाए राम ये न कहो हमसे सुना जाए ना
अरे प्यार करके अजनबी से अलबेली पछताए ना

राज दरबार 1955

1.

उजड़े चमन के हाल पर तोता लगा रोने
अरे कहने लगा कब जाएगी शैतान की टोली
आँसू परों में पोंछ के मैना यही बोली
मिर्ची नारंगी लेना, लेना अनार दाना
मेरे घर के पिछवाड़े आना जरूर आना
आना हुज़ूर आना

मजा तो ये है राजा दरिया किनारे डेरा
हम अपने करवाँ में घर-घर लगाएँ फेरा
बंजारे हुए तो क्या हमको ख्याल तेरा
तुम भी तो आके कभी इसे जरूर खाना
मेरे घर के पिछवाड़े आना जरूर आना
आना हुज़ूर आना

मतलब तो ये है राजा दावत जमेगी अपनी
मिलके पड़ोसियों से झाँकी तनेगी अपनी
जमके तनेगी अपनी किस्मत बनेगी अपनी
अपने आना तो आना औरों को साथ लाना
मेरे घर के पिछवाड़े आना जरूर आना
आना हुज़ूर आना

मनसा तो ये राजा बिगड़ी बनाए जमके
चिड़ियों की टोलियों पे गोली चलाए जमके
दरिया में जाल डाले और मछली फसाए
जमके
अजी तरकारी काटने को चाकू कटार लाना
मेरे घर के पिछवाड़े आना जरूर आना
आना हुज़ूर आना

2.

बुलबुल का चहचहाना फुलों का मुस्कुराना
कहते हैं प्यार जिसको इतना-सा है फसाना
है नींद में सितारे और रात सो चुकी है
नजरें उठा के देखो सपनों में खो चुकी है
चन्दा की चाँदनी में डूबा हुआ जमाना
कहते हैं प्यार जिसको इतना-सा है फसाना
बुलबुल का चहचहाना फुलों का मुस्कुराना

मस्ती में हैं बहारें मौसम गुरूर का है
मैं भी इन्हीं में आई सब कुछ हुज़ूर का है
गुलशन लूटा रहा है कलियों भरा खजना
कहते हैं प्यार जिसको इतना-सा है फसाना
बुलबुल का चहचहाना फुलों का मुस्कुराना

3.

गज भर का घूँघट निकाल मेरी रानी
जमाना बुरा है
आँखों को अपनी सम्भाल मेरे राजा
जमाना बुरा है

प्रेमी के दिल को तुम जो खरीदो
बोलूँ मैं इस की नीलामी
आशिक़ बने हो इतना तो सोचो सबसे बुरी है
गुलामी
बदलो जरा अपनी चाल मेरे राजा
जमाना बुरा है
गज भर का घूँघट निकाल मेरी रानी
जमाना बुरा है

तुमको जो छोडूं मुँह को जो मोड़ूँ
क्या हाल होगा तुम्हारा
हम तो हैं साधु दिल पर है काबू
कर लेंगे तुम बिन गुजारा
भूलेंगे तेरा ख्याल मेरी रानी
जमाना बुरा है
आँखों को अपनी सम्भाल मेरे राजा
जमाना बुरा है

दुनिया में ऐसा देखा तमाशा
बिल्ली को चूहे डराएँ
कलयुग की सारी बातें हैं न्यारी
शेरों को गीदड़ सताएँ
ये है जमाने का हाल मेरे राजा
जमाना बुरा है

शिव भक्त (1955)

1.

भगवान मिल जाए सामने हमको कभी जो राह में
तुझको मिटा दें फिर हमीं या तू मिटा जा हमें

जिसे बनाना उसे मिटाना काम तेरा
मिटने वाले फिर क्यूँ लेंगे नाम तेरा

जिसे मिटाना उसे बनाना काम तेरा
सबर करेंगे हम ले लेकर नाम तेरा

धरती का घर भरा फूल से
तारों से आसमान का
सागर भर गए भर न सका तू
पेट एक इंसान का
जब हो जाए सारा खेल तमाम तेरा
मिटने वाले फिर क्यूँ लेंगे नाम तेरा

इंसानो के लिए उजाला करता घर आसमान का
सुख देकर मुख देखे तू ही दुख देखे इंसान का
भरा हुआ मतलब से खेल तमाम तेरा
सबर करेंगे हम ले लेकर नाम तेरा
जिसे मिटाना उसे बनाना कम तेरा

चाँद दिखा कर तूने समझा
दुनिया सारी बन गई
पर झोपड़ियो में तेरी पूनो
क्यूँ अंधियारी बन गई
इंसानो के घर से दूर मकाम तेरा
मिटने वाले फिर क्यूँ लेंगे नाम तेरा

तू जो कुछ भी लिख देता है बन जाती तकदीर है
तेरी दया हो तो दुनिया में फिर काहे की पीर है
क्यूँ रो रोके नाम करें बदनाम तेरा
सबर करेंगे हम ले लेकर नाम तेरा

2

संसार तुम्हारा यहाँ-वहाँ
अवतार तुम्हारा कहीं-कहीं
प्रभु तेरे चरण पड़े जहाँ-जहाँ
है गीत हमारा वहीं-वहीं

जग में सबसे न्यारी काशी
हैं विश्वनाथ जिसके वासी
जिसके सर से निकली गंगा
अब तक उसके धो चरण रही
प्रभु तेरे चरण पड़े जहाँ-जहाँ
है गीत हमारा वहीं-वहीं

सदियों से अमर उज्जैन यहाँ
है महाकाल को चैन जहाँ
जो काल बलि का भी स्वामी
उस महाकाल का भी धाम यही
प्रभु तेरे चरण पड़े जहाँ-जहाँ
है गीत हमारा वहीं-वहीं

तीर्थों का राजा रामेश्वर
शंकर को जहाँ पूजे रघुवर
भगवान भक्त भगवान देव
धरती पर ऐसा कहीं नहीं
प्रभु तेरे चरण पड़े जहाँ-जहाँ
है गीत हमारा वहीं-वहीं

ये काल हस्ती निर्मल नगरी
हरिहर के कारण हरी-भरी

नित जहाँ शम्भु की गाथाएँ
भक्तों ने सुनी कवियों ने कही
प्रभु तेरे चरण पड़े जहाँ-जहाँ
है गीत हमारा वहीं-वहीं

3

मुझे तो शिवशंकर मिल गए

किया न जप-तप, तीर्थ न घुमा
अपने ही घर मिल गए
मुझे तो शिवशंकर मिल गए

मैं हूँ जन्म का पापी शिकारी
अपने करम से बना भिखारी
मैंने प्रभु से माँगी थी रोटी
पर परमेश्वर मिल गए
मुझे तो शिवशंकर मिल गए

पातें हैं मुनि इन्हें करके तपस्या
बातों में सुलझी मेरी समस्या
मूर्ख समझ के मुझे दयालु
बन पत्थर मिल गए
मुझे तो शिवशंकर मिल गए

4

मैं तो बार बार नाची
रहे वही जन्म भर दूर-दूर
मैं तो करके प्यार नाची
मैं तो बार-बार नाची

चाँद गगन में मैं बैठी आस में
चन्द्र मुकुट वाले आएँगे पास में
तेरी आस में सारी रात जागी
कर सिंगार नाची
मैं तो बार-बार नाची

मैं खड़ी द्वार पे दीपक जलाए
सारी उमारिया तुम नहीं आए
सारी उमारिया तुम नहीं आए
तुम ही बीच में रहे सदा
मैं तो हार-हार नाची
मैं तो बार-बार नाची

ऐसे में कब तक नाचती जाऊँ
गाके अकेले प्रभु किसको सुनाऊँ
नाचना मेरे साथ कभी तुम
मैं हजार नाची
मैं तो बार-बार नाची

5

जो नारी तुझे भक्ति से पुकारती
माँ गौरी उसे पार तू उतारती

कुछ न कामना हो कुछ न माँगना
जग में मेरा फल है मइया तेरी प्रार्थना

जो नारी तुझे मन में नित निहारती
माँ गौरी उसे पार तू उतारती

दुनिया तुम्हारी तुम हो हमारी
खुशी है तेरे राज में, राजा भिखारी

जो नारी तुम्हारे चरण पखारती
माँ गौरी उसे पार तू उतारती

फूल चढाऊँ दीप जलाऊँ
भक्ति भरी आरती तुझको दिखाऊँ
जो नारी तेरी आरती उतारती
माँ गौरी उसे पार तू उतारती

6

ओम नमः शिवाय
भगवान तुम्हें दुनिया माने करुणा सागर
अन्तर्यामी
कुछ खाने को दो तो
मैं जानूँ तुम हो दुनिया भर के स्वामी

ओ दुनिया के मालिक कहलाने वाले
भूखे तो जिया न जाए तेरी दुनिया में

धरम न समझूँ पाप न जानूँ
पेट भरन को जीवन मानूँ
ये सब खेल तुम्हारा है तो
तुम्हें खिलौना प्यारा है तो
फिर क्यूँ ओ जन्म-मरण का खेल रचने वाले
जीने न दिया जाए तेरी दुनिया में
ओ दुनिया के मालिक कहलाने वाले
भूखे तो जिया न जाए तेरी दुनिया में

सुख से बैठी दुनिया सारी
मरे भूख से एक शिकारी
ये दरबार तुम्हारा है तो
हर कोई तुमको प्यारा है तो
फिर क्यूँ सर से गंगा की धार बहाने वाले
आसूँ भी पिया न जाए तेरी दुनिया में
ओ दुनिया के मलिक कहलाने वाले
भूखे तो जिया न जाए तेरी दुनिया में

जग ने तुमको शंकर माना
मैंने तुमको पत्थर जाना
दो शिकार तो तुमको शंकर मानूँ

7

कहाँ जाके ये नैना लड़े
हम तो रह गए खड़े के खड़े

मुख से तो बोले न अँखियों से बात की
पलकों से बुला-बुला चितवन से बात की
जिया लेके वो आगे बढ़े
हम तो रह गए खड़े के खड़े

देखा न लौट के पूछा न हाल भी
आए न सामने कर गए बहाल भी
पिया निकले बेदर्दी बड़े
हम तो रह गए खड़े के खड़े

हम उनके पास हैं हमसे हैं दूर वो
दिल जब लूटाते, करते गुरूर वो
कैसे जालिम से पाले पड़े
हम तो रह गए खड़े के खड़े

8

लाज लगे घूँघट न खोल बालमा

मुख से जो बोलोगे सुन लेगी सखियाँ
अँखियों की बोली में बोल बालमा
लाज लगे घूँघट न खोल बालमा

मेरे सपनों की परी
क्यूँ मुझको देख डरी
शादी की रंग भरी रात है
हाए छेड़ो मुझको न सनम
पूरी होने दो रस्म
दिल तुझसे तेरी कसम मात है
देदे मेरे मुखड़े का मोल बालमा
लाज लगे घूँघट न खोल बालमा

उँची नीची है डगर
देखो लचके न कमर
मेरा तुम्हारा सफ़र दूर का
कानों में बात करो
हाथों पे हाथ धरो
तब जाके साथ करो दूर का
तू भी जरा दिल को टटोल बालमा
लाज लगे घूँघट न खोल बालमा

9.
देखो जी मेरी ओर मुस्कुरा भी तो दो
दिल चुरा भी तो लो
बुलाने से न आओ तो बुला भी तो लो
देखो जी मेरी ओर मुस्कुरा भी तो दो
दिल चुरा भी तो लो

मधुर मिलन का दिन ये हमारा, की रतिया
हमारी
आए हो तुम जो घर ये तुम्हारा, जी मैं भी
तुम्हारी
बाँधे नैनों की डोर
मुस्कुरा भी तो दो दिल चुरा भी तो लो
बुलाने से न आओ तो बुला भी तो लो

तुमको रिझाउँगी अँखिया बिछाके, की पायल
बजाके
दिल मे उतारुँ नजरें झुकाके, जी देखूँ न जाके
बढ़ा धड़कन का ज़ोर
मुस्कुरा भी तो दो दिल चुरा भी तो लो
बुलाने से न आओ तो बुला भी तो लो

दिल के दर्द का नुस्ख़ा पुराना, की नैना
मिलाना
नैना मिलाके की हमको सुनाना, जी अपना
तराना
अजी निन्दिया के चोर
मुस्कुरा भी तो दो दिल चुरा भी तो लो
बुलाने से न आओ तो बुला भी तो लो

वीर राजपूतानी (1955)

1.
राजा हवेली की खिड़की जरा खोलना रे
खिड़की खोलना रे

तारों भरी रातें होगी धीरे-धीरे बातें होगी
सुनले न सबकी राजा नहीं बोलना रे
खिड़की खोलना रे
राजा हवेली की खिड़की जरा खोलना रे

मैं तेरी बगियाँ में बहारों के पीछे आई
बहारों के पीछे जाना इशारों के पीछे जाना
बागबाँ को छोड़ कहीं नहीं डोलना रे
खिड़की खोलना रे
राजा हवेली की खिड़की जरा खोलना रे

2.
नंगी तलवारें क्या चमकी
चमके चमके चमके जो जवानियाँ
अंगारों से खेल-खेले बाँका राजपुतानियाँ

जिस वतन में मेंहदी वाले हाथों में मसाल है
काली-काली रात का सवेरा लाल-लाल है

एक यहाँ बुझे दिया दूसरा जले यहाँ
दूसरा बुझे तो फिर से तीसरा जले यहाँ
बनके रहे इस तरह दुनिया में जिन्दगानियाँ
अंगारों से खेल-खेले बाँका राजपुतानियाँ

दिल में जलती आग है, चेहरे पे पसीना है
बुझना ही तो मौत है, जलना ही तो जीना है
रौशनी नहीं होती तो होगी न रवानियाँ
अंगारों से खेल-खेले बाँका राजपुतानियाँ

सुलगी है चिंगारिया, अब कौन बुझा पाएँगे
जलती रहेंगी मसालें, हाथ बदल जाएँगे
ये जलते अंगार अमरता की है निशानियाँ
अंगारों से खेल-खेले बाँका राजपुतानियाँ

3
सिर पे मनोहर मुकुट सजईयो
कमर कटार लगइयो
सुन्दर जीवन-सा धन पाकर
निर्धन प्रीत निभइयो
मने भूल मत जइयो राजा जी

मेरा है रूप तेरा, तेरा है प्यार मेरा
एक तेरे ही लिए, सोलह सिंगार मेरा
राजा जी यहीं बसेरा लगइयो
मने भूल मत जइयो राजा जी

पतंगें जिया में जले, जुगनू जिया में जले
जलन से जलने वाला, सारी दुनिया पे जले
ऐसे में रास रचइयो राजा जी
मने भूल मत जइयो राजा जी

4
म्हारो छैल भँवर हँस के ताके
मैं घायल हो गई रे

भोलेपन में प्रीत लगाई, इन्तजार में खो गई रे
घायल हो गई रे

छलिया रसिया नजर तुम्हारी सबको चकमा दे गई रे
मेरी नजर जो तुमसे मिल गई जिया चुरा कर ले गई रे

घायल हो गई रे

नजर डगर की दुनिया भर की मैं तो राही हो गई रे
दो नैनों की नई गली में रास्ता खो गई रे
घायल हो गई रे

5

कलियों का रूप मिला,मिट्टी की तक़दीर
मेरे प्यार के सावन में बदरवा बिन नीर

तरसे जिया बरसे पिया, नैन बारह मास रे
रुत बसन्त आई नहीं जाए न चौमास रे

जो है मेरे दिल में बसा, चाहता वो ही न मुझे
आसरा कोई न मेरा, चैन है कहीं न मुझे
शाम ढले, दिया बुझे, बुझ न सकी प्यास रे
रुत बसन्त आई नहीं जाए न चौमास रे

प्यार करूँ जियूँ मरूँ मैं किसी के वास्ते
ज़िंदगी में मिल न सके हुस्न मेरे रात से
काट चले बाली उमर आँसुओं के आसरे
रुत बसन्त आई नहीं जाए न चौमास रे

6

मैदान बुलाते जान लड़ाते चले चलो
इंसान बनो इंसान बनाते चले चलो

जन्म लिया जिस धरती पर
वो मरते दम तक अपनी है
वीरों की जो पगड़ी है
वो गद्दारों की कफनी है
तन देदे मन देदे
वतन पे अर्पण करता जा
मैदान बुलाते जान लड़ाते चले चलो

जन्म भूमि की आन-बान और शान बुलाती है हमको
रणवीर है, रन चण्डी की ललकार दिलाती है हमको
तन देदे मन देदे
वतन पे अर्पण करता जा
मैदान बुलाते जान लड़ाते चले चलो

जब जागे राजस्थान जवानी झूम चले
जब जागे हिन्दुस्तान जवानी झूम चले
सर लेले सर देदे वतन की मिट्टी झूम चले
तन देदे मन देदे
वतन पे अर्पण करता जा
मैदान बुलाते जान लड़ाते चले चलो

7

राधा द्वार खड़ी रास्ता निहारती
साथ में पपीहे के पिया पुकारती
मोहन ने मुखड़ा दिखाया रे
ओ मेरी बगिया में पंछी लौट आया रे

बाद इन्तजार के प्यार का मजा है
सजना हो पास तो दीदार का मजा है
घूँघट से प्यार मुस्कुराया रे
ओ मेरी बगिया में पंछी लौट आया रे

फूल बनी कलियाँ मस्ती में झूम के
गोरी और गोरी बनी शबनम को चूम के
बन बन बसन्त रंग लाया रे
बन बन बसन्त रंग लाया रे
ओ मेरी बगिया में पंछी लौट आया रे

8

मुलाक़ातो की उम्मीदें पुरानी हो रही होगी
गिरा कर नींद में पलकें वहाँ तुम सो रही होगी
अब देख के क्या करें तारों की बारात को
चन्दा से चकोरी जुड़ा है चाँद रात को

दुनिया ने कहीं जिन्दगी में मिलने न दिया
गुलशन ने दो नन्हें फुलों को खिलने न दिया
चिंगारी लगा देंगे सारी कायनात को
चन्दा से चकोरी जुड़ा है चाँद रात को

दो दिलवालों के बीच में दुनिया दीवार है
परवाना नजरबन्द, शमा गिरफ्तार है
आँधी का मगर कौन उड़ती ख्यालात को
चन्दा से चकोरी जुड़ा है चाँद रात को

9.

पश्चिम से निकल कर सूरज भी पूरब में ढल जाए
ना-मुमकिन है राणा प्रताप प्रतिज्ञा से टल जाए
जो आजादी के लिए लड़ा है वो रणधीर कहाँ
जो जीवन भर जिन्दा शहीद है वो रणबीर कहाँ
जो खून बहाए उसे भला क्या तू छल पाए
ना-मुमकिन है राणा प्रताप प्रतिज्ञा से टल जाए

आजादी का झण्डा जिसने जीवन भर लहराया
और मेवाड़ के संकट को जिसने हँसते मुँख अपनाया
जो सर न झुकना जाने उसको कौन कुचल पाए
ना-मुमकिन है राणा प्रताप प्रतिज्ञा से टल जाए

जनता के मन में बसा हुआ जँगल में वास करे
जागो जागो शेर मेवाड़ी धरती तेरी आस करे
मौसम बदले शासन बदले संसार बदल जाए
ना-मुमकिन है राणा प्रताप प्रतिज्ञा से टल जाए

जयश्री 1956

1.
मौसम है ताजा ताजा राजा तू बोल दे
ठण्डी हवाएँ आई खिड़कियाँ खोल दे

मौसम बुलाए तुझे कलियाँ खिला के
तुम से जवाब माँगे अँखियाँ मिला के
नजरों में रंग जितने नैनों में घोल दे
ठण्डी हवाएँ आई खिड़कियाँ खोल दे

उलफत गुनाह है तो मैं गुनेहगार हूँ
दिल जो हो बेचना हो तो मैं खरीददार हूँ
मीठी मुस्कान जरा होठों पे तोल दे
ठण्डी हवाएँ आई खिड़कियाँ खोल दे

मिल जा तू ऐसे जैसे तेरा पता न चले
जमाना लाख ढूँढे तेरा पता न चले
यह सारी दुनियादारी दिल अनमोल दे
ठण्डी हवाएँ आई खिड़कियाँ खोल दे

2.
तुम नहीं आए वादा कर के साँवरिया
शादी की रात रहीं सुनी सेजरिया
तुम नहीं आए

बरसों की आस लेके बाजी शहनाई
लाख इन्तजार किया डोली न आई
जी भी न पाती ली नहीं खबरिया
शादी की रात रही सुनी सेजरिया

क्या क्या अरमान रहे तुमसे बेदर्दी
दुल्हन की झोली तुमने आँसू से भर दी
आना था फिर के मगर फेरी नजरिया
शादी की रात रही सुनी सेजरिया

मेरी मझधार के थे तुम ही खिवइया
चल दिये कहाँ लेके जीवन की नइया
किसके सहारे बीते सारी उमरिया
शादी की रात रही सुनी सेजरिया

3.
श्याम नहीं बोले राधा भी नहीं बोली
बाँसुरी बोली तो राधा ठुमक ठुमक डोली

फोड़ दी कन्हैया ने राधा की गगरिया
छिन ली राधा ने मुरारी की मुरलिया
विनती करे मोहन वो बनती रही भोली
बाँसुरी बोली तो राधा ठुमक-ठुमक डोली

पास आए कान्हा राधा जी रहीं रूठी
प्रीत लगी सच्ची, ठिठोली करे झूठी
मन की कली डोले पर मुँह से नहीं बोली
बाँसुरी बोली तो राधा ठुमक-ठुमक डोली

रास रचें जमुना किनारे सारी सखियाँ
बैठ गई राधा जी बन्द किए अँखियाँ
हार गए मोहन पर आँख नहीं खोली
बाँसुरी बोली तो राधा ठुमक-ठुमक डोली

4.
काहे को परदेसिया से आँख तू लड़ाए
उड़ता हुआ पंछी कभी हाथ नहीं आए

उड़ता हुआ पंछी जाने अपना ठिकाना
झूम उठी मैं सुनके उसका तराना
झूम झूम के जी कहीं सर न घूम जाए
उड़ता हुआ पंछी कभी हाथ नहीं आए

मैने तो देखा था जरा यू ही मचल के
नजरों के साथ गया दिल भी उछल के
कसती नहीं जब कमान तीर क्यूँ चलाए
उड़ता हुआ पंछी कभी हाथ नहीं आए

देखते ही ऐसा लगा मिल चुके हैं ख्वाब में
कुछ नहीं सूझा तो सखी उठ पड़े जवाब में
प्यार तो पहले हँसाए फिर हँसी उड़ाए
उड़ता हुआ पंछी कभी हाथ नहीं आए

5.
बादरवा चले झूम के
बीजूरिया का मुँह चूम के
साँवरिया तुम नहीं आए अभी घूम के

ओ सारी उमरिया मेरी झूमें झूले पे चढ़के
उतरे घूँघटवा उड़े रे दुपटवा
आ मुख पे घेरा कर के
हाए राम हाए राम
पुरवईया आए झूम के
जाए तो गेसू चूम के
साँवरिया तुम नहीं आए अभी घूम के

ओ बादरवा तान मारे
छम-छम बूँदो की बोली
बादरवा बाहर में रिमझिम फुवार में
भीगे हमारी चोली
हाए राम हाए राम
हरियाली डोले झूम के
मासूम कली चूम के
साँवरिया तुम नहीं आए अभी घूम के

ओ जमुना की धार सखी
काया में रूप न दे
मछलियाँ बनके पानी में छमके
मौजों में रूप नाचे
हाए राम हाए राम
मौजों ने छेड़ा झूम के
साँवरिया तुम नहीं आए अभी घूम के

नरसिंह भगत 1957

1.

सबकी नइया पार लगइया
कृष्णा कन्हईया साँवरे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

जो शाम चराए बिन बजाए बिन रचाए रास रे
प्यास नैन में सभी जिया में लगी उठी थी आस रे
उसी की धुन में फिरूँ रात दिन दिन मिले या शाम रे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

किस्मत से मिला नर जन्म छोड़ दे भरम
भजन कर श्याम का राज रंग सिंगार श्याम से
प्यार नहीं कुछ काम का
राम नाम पतवार बना ले
पार लगेगी नाव रे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

अनमोल धन मिले बिना किसी मोल के
आगे बढ़े चलो राम नाम बोल के
सच्ची है जो लगन तुम्हारी
कभी रुके न बाँवरे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

युग युग की यही पुकार
चले संसार धरम के रास्ते
पन्थ भूमि इंसान बना शैतान पेट के वास्ते
एक जन्म में हार न भाई जन्म जन्म का दाँव रे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

दुनिया के जाल में प्रभु को न भूल रे
है सोना माटी चाँदी है धूल रे
धन धरती में उपज न मनवा, दो दिन पड़ाव रे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

कुछ जात भेद न किया दिया जन्म हमें भगवान ने
भाई-भाई को अलग किया अब तलक इंसान ने
मिले डगर-डगर से दूर नगर के गाँव रे
राम धुन लगी गोपाल धुन लगी

2

दर्शन दो घनश्याम नाथ मोरी अँखियाँ प्यासी रे
मन मन्दिर की ज्योति जगा दो, घाट-घाट बसी रे
दर्शन दो घनश्याम...

मन्दिर-मन्दिर मूरत तेरी फिर भी न दिखे सूरत तेरी
युग बीते न आई मिलन की पुरनमसी रे
दर्शन दो घनश्याम...

द्वार दया का जब तू खोले, पंचम सुर में गूँगा बोले
अँधा देखे लंगड़ा चल कर पहुँचे काशी रे
दर्शन दो घनश्याम...

पानी पी कर प्यास बूझाऊँ, नैनन को कैसे समझाऊँ
आँख मिचौली छोड़ो अब तो मन के बासी रे
दर्शन दो घनश्याम...

3.

लो बाजी श्याम की बाँसुरिया
सुनके राधा बाँवरिया
आई है पिय की नगरिया

मेंहदी रचाऊँ मैं गजरा लगाऊँ
बाजे मुरलिया तो पायल बजाऊँ
श्याम सलोने से नैना मिलाके
नाचूँ तो खाए जिया ठुमक-ठुम चित खोले
ओ राधा के रसिया गोकुल के बसिया
जादू की मुरली बजा के, सुन-सुन मन डोले

पवन पुत्र हनुमान 1957

1.

मेरे राम कहाँ हो तुम
बिरह का दुख न सहा जाए
मेरे राम कहाँ हो तुम

मेरे प्राण कहाँ हो तुम
कि तुम बिन अब न रहा जाए
मेरे प्राण कहाँ हो तुम

चाँद तुम्हें मेरी धरती टल में
कली कमल की फूँक के जल में
आज छूपी किस बादल दल में
मुख न दिखलाए
मेरे प्राण कहाँ हो तुम
कि तुम बिन अब न रहा जाए

चरण तुम्हारे मुझसे छुके
आस न टूटी न आँसू रुके
तुम तो हमसे उतना रूठे
दुख में नहीं आए
बिरहा का दुख न सहा जाए
मेरे राम कहाँ हो तुम

चाँद सिया से मुझको मिलाए
राह में मेघ लगा है दीप बुझा जाए
मेरे राम कहाँ हो तुम
मेरे प्राण कहाँ हो तुम
कि तुम बिन अब न रहा जाए

2.

जय रघुनन्दन जय सिया राम
जानकी वल्लभ सीता राम

सबसे निराली महिमा है भाई
दो अक्षर के नाम की
जय बोलो सियावर राम की

दो अक्षर का जादू है न्यारा
राम राम जय राम राम
भवसागर से तारणहार
राम राम जय राम राम
प्रभु जबी अपना खेवन हार
फिर है कितनी दूर किनारा

मेरे राम रखते हैं खबरिया
पल छिन चारों धाम की
जय बोलो सियावर राम की

पानी में तैरे पत्थर की नैया
राम राम जय राम राम
राम की नैया है राम खिवैया
राम राम जय राम राम
सागर से अब क्या डरना है भैया
साथी है जब राम रमैया

बादल दल-सी निकली है टोली
पवन पुत्र हनुमान की
जय बोलो सियावर राम की

अब न रहेगी सोने की लंका
नाम मिटेगा अब रावण का
भार हटेगा धरती गगन का
राम नाम का गूँजेगा डंका

बरसों के बिछड़े फिर से मिलेंगे
रामचन्द्र और जानकी
जय बोलो सियावर राम की

3.

पिया पिया पिया तू बोल रे पपीहा
मैं तो पिया के नाम की दीवानी

तन-मन लगा के उनको मैं पूजती हूँ
दिल में बसाके
उनकी ही धुन में तन-मन लगा के
प्रीत की रीत मैंने जानी है
मैं तो पिया के नाम की दीवानी

महलों के बदले कुटिया का अंगना
गहनों के बदले में फूलों की माला

फूलो के रंग हो उत्तम
दुनिया है मेरी सुहानी
हो मैं तो पिया के नाम की दीवानी

4.
कोई कह दे रे कोई कह दे
क्यूँ छोटी पड़ गई बालियाँ

अंग-अंग में रंग बसन्ती
पर गालों में लालियाँ
कोई कह दे रे कोई कह दे
क्यूँ छोटी पड़ गई बालियाँ

मौसम है निराला फूल नए
भौरे भी रास्ता भूल गए
मैं भी वन-वन में घूमूँ
तो क्यूँ कोयल देती गालियाँ
कोई कह दे रे कोई कह दे
क्यूँ छोटी पड़ गई बालियाँ

पायल बजती रुनझुन रे
उड़ती फर-फर मेरी चुनरी
चलता हैं पवन तो पत्ते-पत्ते
क्यूँ देते हैं गालियाँ
कोई कह दे रे कोई कह दे
क्यूँ छोटी पड़ गई बालियाँ

जो फूल खिलाए वन-वन में
क्या वही बसन्त मेरे तन में
मैं इधर झूकूँ वो नजर-उधर
क्यूँ झुक-झुक आई डालियाँ
कोई कह दे रे कोई कह दे
क्यूँ छोटी पड़ गई बालियाँ

नागचम्पा (1958)

1.

छोड़ अटरिया गए सांवरिया
सारी उमरिया ढूँढूँ तुझे
देश फिरी परदेश फिरी
अब कौन नगरिया ढूँढूँ तुझे
छोड़ अटरिया गए सांवरिया

बिरहन हूँ बैरागन हूँ मैं
सुखी कली अभागन हूँ मैं
जहर भी जिसका अमृत मुझको
उसी नाग की नागन हूँ मैं
पनघट मरघट घट-घट घूमूँ

बीच बजरिया ढूँढूँ रे
देश फिरी परदेश फिरी
छोड़ अटरिया गए सांवरिया

रुक जाओ तूफान बलि रे
मैं तो पिया के गाँव चली रे
रुक न सको तो मुझे उड़ाकर
पहुँचा दो साजन की गली रे
पी दर्शन की आस लगाए
अब कौन नगरिया ढूँढूँ तुझे
छोड़ अटरिया गए सांवरिया

माया बाजार (1958)

1.
कैसे चलूँगी मैं अकेली
अभी तो मैं शर्मीली
मिलने को मन ललचाए
चलने में जिया घबराए
बहियाँ न छोड़ो रे सहेली
अभी तो मैं शर्मीली
कैसे चलूँगी मैं अकेली

मौसम ने ली अंगड़ाई बजने लगी शहनाई
कहे जवानी आई बचपन में
आँखे मुस्काने लगीं मैं गुनगुनाने लगी
खुद ही शरमाने लगी दर्पण में
घूँघट न खोलूँ सबसे न बोलूँ
मैं बन जाऊँगी पहेली
अभी तो मैं शर्मीली
कैसे चलूँगी मैं अकेली

होंठों पे हल्की लाली
नैनों में छलकी प्याली
मुख पे रेश्म की जाली रहने दो
चितवन जलाने वाली
दिल को भूलने वाली
आँखो को काली-काली रहने दो
पायल बजाऊँगी दिल को रिझाऊँगी
दुल्हन बनूँगी मैं नवेली
अभी तो मैं शर्मीली
कैसे चलूँगी मैं अकेली

3
हर फूल में मस्ती है रंगीन है मौसम
दिल मेरा तेरे प्यार में नाचे रे छमा-छम

छलका-सा आज मौसम फूलों की पायलियाँ
भँवरे को देख तितली देती हैं तालियाँ
हर गूँज में गुंजन है, हर बोल में पंचम
दिल मेरा तेरे प्यार में नाचे रे छमा-छम

बजती है प्यार बन के जीवन की रागिनी
चन्दा के संग चलती चन्दा की चाँदनी
आँखो में झूमती है ये प्रीत की पूनम
दिल मेरा तेरे प्यार में नाचे रे छमा-छम

4
गोरा हो चाहे काला अलबेला है दिलवाला
दिल लेले या देदे ये तेरी मर्ज़ी
गोरा हो चाहे कला

कोई देख रूप तो निहारे कोई रंग
दिल तो चला जाए रे नजरिया के संग
चंचल या भोला-भाला अलबेला है दिलवाला
दिल लेले या देदे ये तेरी मर्ज़ी
गोरा हो चाहे कला

लाली वाले होंठ या गुलाल वाले गाल
चोरी-चोरी नैन यूँ मिलें तो रहे लाल
शर्मिला या मतवाला अलबेला है दिलवाला
दिल लेले या देदे ये तेरी मर्ज़ी
गोरा हो चाहे कला

माया के बाजार में हजारों खरीददार
दिल से दिल जो मान ले उसी को मिले प्यार
दुनिया से तो निराला अलबेला है दिलवाला
गोरा हो चाहे कला

5
अँखियों में समाते हो दिल न चुरा लेना
ये प्यार की चोरी है दिल में छूपा लेना

ना चोरों को हम जाने न चोरी को भी
पहचाने
मिलते है जब भी अंजाने बन जाते है वो
पहचाने
पहचान तो आज हुई कल न भुला देना
अँखियों में समाते हो दिल न चुरा लेना

जबसे ये नजर शरमाई मन लेने लगा अंगड़ाई
मेरे नैनों में तुम छाई, फिर प्रीत मेरी मुस्काई
मुस्काते हुए दिल को अपना बना लेना
अँखियों में समाते हो दिल न चुरा लेना

तुम जब से हो मिली मन चंचल
तन मन में मची है हलचल
तुम चंचल हम भी चंचल
कहती है हवा चल उड़ चल
चलती हो मेरे साथ तो हाथ मिला लेना
अँखियों में समाते हो दिल न चुरा लेना

नई राहें (1959)

1.

कहाँ तेरी मंज़िल कहाँ है ठिकाना
मुसाफिर बता दे कहाँ तुझको जाना
कहाँ तेरी मंज़िल कहाँ है ठिकाना

गगन में उड़ने वालों का भी गुलशन रैन
बसेरा है
घर की ओर चले राही तो धुंधली शाम सवेरा
है
सूरज, चाँद, सितारे हैं तो उनकी भी मंज़िल
है
मंज़िल है तो जहाँ भी जाएँ राह तेरी
झिलमिल है
बिन मंज़िल बेकार है गाफील कदम भी
उठाना
मुसाफिर बता दे कहा तुझको जाना

अप्सरा (1961)

1.

छूप-छूप के चले आओ कभी चाँद हो न हो
दिल हमने दे दिया है तुम्हें याद हो न हो

पूनम की धूली रात है, दिल बेकरार है
बेचैन सितारों को तेरा इंतेजार है
फिर प्यार से यह चाँदनी आबाद हो न हो
दिल हमने दे दिया है तुम्हें याद हो न हो

आजाद हवाओं मे पली फूल की कली
आकर बसी है आज तेरे प्यार की गली
मिल जाओगे कि फिर जिन्दगी आजाद हो न
हो
दिल हमने दे दिया है तुम्हें याद हो न हो

लगता है कि बस आ रहे हो तुम
राहों के हर चिराग को चमका रहे हो तुम
ये ख्वाब मजेदार है तुम्हें याद हो न हो
दिल हमने दे दिया है तुम्हें याद हो न हो

जय भवानी (1961)

1.
शमा से कोई कह दे की तेरे रहते-रहते
अन्धेरा हो रहा
की तुम हो वहाँ तो मिलने को यहाँ पतंगा रो
रहा

सितारों उनसे कहना नजारों उनसे कहना
सजा ये हो रही
की तुम हो वहाँ तो मिलने को यहाँ शमां भी
रो रही

तड़पता प्यार कि हो दीदार मगर दीवार हमें
रोके
शमां ऐसे कोई जले जैसे पतंगे से जुदा हो के
दुहाई देते देते जुदाई सहते सहते अंधेरा हो
रहा
की तुम हो वहाँ तो मिलने को यहाँ पतंगा रो
रहा

रुलाते हैं, जलाते हैं, मिटाते हैं यहाँ अपने
मिटाने से नहीं मिटते मोहब्बत के अमर सपने
जुदाई हँसके कहना कि मेरे हो के रहना सजा
ये हो रही
की तुम हो वहाँ तो मिलने को यहाँ शमां भी
रो रही

बँधी ज़ंजीर मगर बे पीर तेरी तस्वीर नहीं
जाती
सितम की बात सही पर मिलन की रात नहीं
आती
कि आहें भरते भरते अंधेरा हो रहा
की तुम हो वहाँ तो मिलने को यहाँ पतंगा रो
रहा

2.
झूम के पिया की गली
झूम के खुशी में चली आ रही हूँ
आज मैं हवा में उड़ी जा रही हूँ

उड़-उड़ जाए दुपटवा मोरा मुड़-मुड़ जाए
नजरिया
बढ़ती जाए तमन्ना मेरी चढ़ती जाए उमरिया
प्यार हो गया है ऐसा रंग मैं फुलों के जैसा ला
रही हूँ
आज मैं हवा में उड़ी जा रही हूँ

गुनगुन गाये रंगीला भँवर सुन सुन मैं तो
लजाई
कदम कदम पर पायल बजे कानो में शहनाई
बाग में चमेली फूली गीत में मस्ती में भूली
गा रही हूँ
आज मैं हवा में उड़ी जा रही हूँ

3
बावरा लामा सुनो सुनो
बावरा लामा समां है निराला
दिल को लिया हाथ में और झूम के उछाला
बावरा लामा सुनो सुनो
बावरा लामा समां है निराला

चाँद के साँचे में ढली हाँ जी
रूप कली खिलती चली हाँ जी
यह तो बता नाज़ो पली क्या जी
जाना तुझे कौन गली वाह जी
मिल गया दिलदार एक प्यार करने वाला
बावरा लामा सुनो सुनो
बावरा लामा समां है निराला

जब से पिया मन में बसे हाँ जी
चाँदनी घूँघट में हँसे हाँ जी
जाल में पंछी न फँसे हाँ जी
देखना दुनिया न हँसे वाह जी

छलके बिना रह न सके ज़िन्दगी का प्याला
बावरा लामा सुनो सुनो
बावरा लामा समा है निराला

4

यहाँ रात किसी की रोते कटे
या चैन से सोते सोते कटे

तक़दीर में कैसी रात मेरी
न सोते कटे न रोते कटे
यहाँ रात किसी की रोते कटे
या चैन से सोते सोते कटे

उलफत में है मिटना रीत मेरी
पिंजरे में तड़पती प्रीत मेरी
पनघट पे पहुँच कर प्यासा हूँ
क्या हार मेरी क्या जीत मेरी
तक़दीर में कैसी रात मेरी
न सोते कटे न रोते कटे

दिल भरा-भरा प्यासे हैं नयन
है पास मगर मुश्किल है मिलन
पंछी है अकेला सुना चमन
आँखों में नमीं है दिल में जलन
तक़दीर में कैसी रात मेरी
न सोते कटे न रोते कटे

5

ओम भगवती धर्म की सचाई है तो झूठ का न डर
सच्चा दिल इंसान का है घर
सच्चा दिल इंसान का भगवान का है घर
ओम भगवती
मैया तेरी आरती से अन्धेरा टले
भक्त के अन्धेर घर में रोशनी जले
जय जय भवानी...

आरती उतारूँ तेरी सुबह-शाम को
पा गए हम तुझमें मैया चारों धाम को
जो तुझे पुकारे उसे पाप क्या छले
भक्त के अन्धेर घर में रोशनी जले
जय जय भवानी...

राजा की हवेली या निर्धन की झोपड़ी
तेरी दया है तो वो धरती पे है खड़ी
कौन है यहाँ जो तेरा आसरा न ले
भक्त के अन्धेर घर में रोशनी जले
जय जय भवानी...

6

ओ मोहना न जा राधा को छोड़ के
के राधा कैसे जीये, जीये तो किसके लिए
ओ मोहना न जा राधा को छोड़ के

प्रीत है मेरी सइयाँ जमुना की धारा
तुम्हीं किनारा राजा तू ही सहारा
रुक जा रे लौट आ रे बंसी बजइया
प्रीत न होगी हमसे जग में दोबारा
के राधा कैसे जीये, जीये तो किसके लिए
ओ मोहना न जा राधा को छोड़ के

मैं बनी भोलेपन में तेरी दीवानी
तूने बेदर्दी सइयाँ एक न मानी
दिल दिया चुपके तुझको कह भी न पाई
होंठों पे आके रह गई दिल की कहानी
के राधा कैसे जीये, जीये तो किसके लिए
ओ मोहना न जा राधा को छोड़ के

जान तो लेना चाहूँ तुझको नजर है
दिल तो नटवर मेरा तेरा ही घर है
जाऊँ तो जाऊँ कहाँ ठहर कहाँ मैं
आँधी है पीछे-पीछे आगे भँवर है
के राधा कैसे जीये, जीये तो किसके लिए
ओ मोहना न जा राधा को छोड़ के

7

मौसम मचलता हुआ दिल है उछलता हुआ
लेके जिया मेरा पिया चुपके से चलता हुआ
मौसम मचलता हुआ दिल है उछलता हुआ

दिल ने दिल से प्यार किया उलफत का
इकरार किया
दिल बावला मिलने चला गिरता सम्भलता
हुआ
मौसम मचलता हुआ दिल है उछलता हुआ

आजा राजा छाई बहार दिल में तू है सुनले
पुकार
मौसम नहीं चल दे कहीं हम तुमको छलता
हुआ
मौसम मचलता हुआ दिल है उछलता हुआ

मुखड़ा तेरा श्याम सलोना, मेरा दिल है तेरा
खिलौना
आज सखी मेरी गली गलियाँ बदलता हुआ
मौसम मचलता हुआ दिल है उछलता हुआ